मुद्रक—
मूलचन्द किसनदास कापडिया,
'जैनविजय' प्रिन्टिंग प्रेस,
खपाटियाचकला, सूरत।

बिना मुहर पुस्तक चोरीकी समझी जावेगी।

प्रकाशक—
मूलचन्द जैन, सद्बोध रत्नाकर कार्यालय,
बड़बाजार, सागर सी. पी.

प्रस्तावना।

सज्जनो!

जैनसिद्धान्तसंग्रहकी दूसरी आवृत्ति आज आपके सन्मुख प्रस्तुत है। पहली आवृत्तिकी कुल प्रतियां इतने स्वल्प समयमें खप गईं, इससे स्पष्ट विदित होगा कि जैन समाजमें ऐसे ग्रन्थकी बहुत आवश्यकता थी। ऐसा होना ठीक ही है। जिस ग्रन्थ-संग्रहमें जैन बालकोंके पठन योग्य पाठोंसे लेकर नित्य नियमके उपयोगी सभी विषयोंका समावेश होकर पंडितों तकके स्वाध्याय योग्य ग्रन्थोंका सम्मेलन हो उस ग्रन्थरत्नका इतना आदर होना स्वाभाविक ही है। स्वल्प मूल्यमें प्रायः सभी उपयोगी विषय एकत्र मिल सकें यह प्रायः सब जैनी भाइयोंकी सदैव इच्छा रहती है। हमारे समाजमें इस ग्रन्थकी आज भी बड़ी आवश्यकता है यह जान यह द्वितीयावृत्ति पाठकोंके सन्मुख प्रेषित है।

प्रथमावृत्तिकी नाईं पुस्तककी छपाई सफाई और कागजकी ओर बहुत ध्यान रक्खा गया है। कई नवीन २ विषयोंका समावेश कर देनेके कारण ग्रन्थका आकार पहलेकी अपेक्षा कुछ बढ़ गया है। वर्तमानकी मंहगाईके कारण पुस्तकका मूल्य इसबार कच्ची जिल्द २) और पक्की जिल्द २।) रक्खा गया है। विषयोंके महत्वको देखकर आशा है कि पाठकोंको यह न खलेगा।

पुस्तकके विषय निमंत्रणमें अबकी बार कुछ परिवर्तन किया गया है। विषयोंकी गिन्तीकी ओर लक्ष्य न रख अबकी बार संग्रहके पांच भाग बना दिये गये हैं। इसमें विषयोंकी कोई कमती नहीं की गई है बल्कि कुछ नवीन पाठ जोड़ दिये गये हैं जिसे पाठक स्वतः स्वाध्याय कर देख सके हैं। उम्मेद है कि स्वाध्याय प्रेमी जैनी भाई इस संग्रहको पहलेकी नाई अपनावेंगे।

जखौरा जि० झांसी
कार्तिक शुक्ला १ सं० १९७७
वीर निर्वाण सं० २४४७.

जाति सेवक—
मूलचन्द बिलौवा जैन

यह पुस्तक मिलनेका पता—
मूलचन्द जैन मेनेजर,
सद्बोधरत्नाकरकार्यालय,
बड़ा बाजार—सागर (सी. पी.) SAUGOR.

धन्यवाद।

गोलालारीय जाति वडगांव (जबलपूर) निवासी श्रीमान् सेठ रघुनाथराम नेरायणदासजी अतीव धन्यवादके पात्र हैं कि आपने इस ग्रन्थसंग्रहकी १०० कापियां विना मूल्य वितरण करनेकी स्वीकारता की है।

आपने अपनी योग्य कमाईमेंसे १००००) गोलालारीय दि० जैन बालकोंके शिक्षा विभागमें तथा २०००) अन्य धार्मिक संस्थाओंको दे पुण्य लाभ किया है तथा आप हीके द्वारा श्रीमती गोलालारीय दि० जैन सभाकी स्थापना हुई है और उसमें आपने प्रथम २५१) दिये हैं।

आपसे हमें गोलालारीय जातिके उत्कर्षकी वहुत आशा है।

सेवक—

मूलचन्द जैन, मंत्री,

श्री गोलालारीय दि० जैन सभा कार्यालय—सागर।

विषय-सूची।

प्रथम खंड

द्वितीय खंड.

तृतीय खंड.

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

जैन सिद्धान्त संग्रह

(१) णमोकार मंत्र

गाथा ।

णमो अरहंताणं। णमो सिद्धाणं। णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।

इस णमोकार मंत्रमें पांच पद, पैंतीस अक्षर, अठावन मात्रा हैं ॥

(२) णमोकार मंत्रका माहात्म्य ।

महा मंत्रका जाप किये, नर सब सुख पावै ।
अतिशयोक्ति इसमें, रंच कभी नहीं दिखावै ॥
देखो ! शून्य विवेक सुभग ग्वाला भी आखिर ।
हुआ सुदर्शन कामदेव, इसके प्रभाव कर ॥

(३) पञ्च परमेष्ठियोंके नाम ।

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु ।
ॐ ह्रीं अ सि आ उ सा । ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

नोट—अ सि आ उ सा नाम पञ्च परमेष्ठीका है ।
ॐ में पञ्चपरमेष्ठीके नाम गर्भित हैं ।
ह्रीं में २४ तीर्थंकरोंके नाम गर्भित हैं ।

(४) चौवीस तीर्थंकरोंके नाम

१. ऋषभदेव, २. अजितनाथ, ३. संभवनाथ, ४ अभिनन्दननाथ, ५ सुमतिनाथ, ६ पद्मप्रभ, ७ सुपार्श्वनाथ, ८ चंद्रप्रभ, ९. पुष्पदन्त, १० शीतलनाथ, ११ श्रेयांसनाथ, १२ वासुपूज्य, १३ विमलनाथ, १४ अनन्तनाथ, १५ धर्मनाथ, १६ शान्तिनाथ, १७ कुन्थुनाथ, १८ अरनाथ, १९ मल्लिनाथ, २० मुनिसुव्रतनाथ, २१ नमिनाथ, २१ नेमिनाथ, २३ पार्श्वनाथ, २४ वर्द्धमान ॥
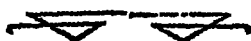
चौवीस तीर्थंकरोंके चिन्ह ॥

१—ऋषभदेवके बैलका चिन्ह ।

पहला भव सर्वार्थसिद्धि, जन्मनगरी अयोध्या, पिता नाभिराजा, माता मरुदेवी, गर्भतिथि आषाढ़ वदि २, जन्म तिथि चैत्र वदि ९, जन्म नक्षत्र उत्तराषाढ, काय ऊंची ५०० धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु ८४ लाख पूर्व, दीक्षा तिथि चैत्र वदि ९, दीक्षावृक्ष वड़ (वड़के नीचे दीक्षा ली,) केवलज्ञान तिथि फाल्गुण वदि ११, गणधर ८४, निर्वाण तिथि माघ वदि १४, निर्वाण आसन पद्मासन (बैठे हुए), निर्वाणस्थान कैलाश, अंतर-इनसे ५० लाख कोटि सागर गए पीछे अजितनाथ भए ।

२–अजितनाथके हाथीका चिन्ह ।

पहला भव वैजयन्त, जन्मनगरी अयोध्या, पिताका नाम जितशत्रु, माताका नाम विजयादेवी, गर्भतिथि ज्येष्ठ बदि अमावस्या, जन्मतिथि माघ शुदी १०, जन्मनक्षत्र रोहिणी, काय ऊंची ४५० धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु ७२ लाख पूर्व, दीक्षा तिथि माघ शुदी १०, दीक्षा वृक्ष सप्तछद (सतौना), केवलज्ञान तिथि पौष शुदी ११, गणधर ९०, निर्वाण तिथि चैत्र शुदि ५, निर्वाण आसन खड्गासन (खड़े हुए), निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर, अंतर–इनसे ३० लाख कोटि सागर गए पीछे संभवनाथ भए ।

३–संभवनाथके घोड़ेका चिन्ह ।

पहला भव ग्रैवेयक, जन्म नगरी श्रावस्ती, पिताका नाम जितारी, माताका नाम सेना, गर्भतिथि फाल्गुन शुदि ८, जन्मतिथि कार्तिक शुदि १५, जन्मनक्षत्र पूर्वाषाढ़ा, काय ऊंची ४०० धनुष, रंग पीला सुवर्ण समान, आयु ६० लाख पूर्व, दीक्षातिथि मार्गशिर शुदि १५, दीक्षावृक्ष शाल, केवलज्ञान तिथि कार्तिक वदि ४, गणधर १०५, निर्वाणतिथि चैत्र शुदि ६, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर, अंतर–इनसे १० लाख कोटि सागर गए पीछे अभिनन्दननाथ भए ।

४–अभिनन्दननाथके बन्दरका चिन्ह ।

पहला भव वैजयंत, जन्मनगरी अयोध्या, पिताका नाम संवर, माताका नाम सिद्धार्था, गर्भतिथि विन्द्रावन और बखतावर–

सिंहकृत पाठोंमें वैशाख शुदि ६, रामचंद्रकृतमें वैशाख शुदि ८, जन्मतिथि माघ शुदि १२, जन्मनक्षत्र पुनर्वसु, काय ऊंची ३५० धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु ५० लाख पूर्व, दीक्षातिथि माघ शुदि १२, दीक्षावृक्ष सरल, केवलज्ञान तिथि पोष शुदि १४; गणधर १०३, निर्वाणतिथि वैशाख शुदि ६, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अंतर—इनसे ९ लाख कोटी सागर गए पीछे सुमतिनाथ भए।

५—सुमतिनाथके चकवेका चिन्ह।

पहला भव उर्द्ध ग्रैवेयक, जन्मनगरी अयोध्या, पिताका नाम मेघप्रभ, माताका नाम सुमंगला, गर्भतिथि श्रावण शुदि २, जन्मतिथि चैत्र शुदि ११, जन्मनक्षत्र मघा, काय ऊंची ३०० धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु ४० लाख पूर्व, दीक्षातिथि वृन्दावन और बखतावरकृत पाठोंमें चैत्र शुदि ११, रामचंद्रकृतमें वैशाख शुदि ९, दीक्षावृक्ष प्रियंगु (कंगुनी), केवलज्ञान तिथि चैत्र शुदि ११, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर, अंतर—इनसे ९० हजार कोटि सागर गए पीछे पद्मप्रभ भए।

६—पद्मप्रभके कमलका चिन्ह।

पहला भव वैजयंत, जन्मनगरी कौशांबी, पिताका नाम धारण, माताका नाम सुसीमा, गर्भतिथि माघ वदि ६, जन्मतिथि कार्तिक शुदि १३, जन्मनक्षत्र चित्रा, काय ऊंची २५०

धनुष, रंग आरक्त (सुरख) कमलसमान, आयु ३० लाख पूर्व, दीक्षातिथि वृन्दावन और बखतावरकृत पाठोंमें कार्तिक शुदि १३, रामचंद्रकृतमें कार्तिक वदि १३; दीक्षावृक्ष प्रियंगु (कंगुनी), केवलज्ञान तिथि चैत्र शुदि १५, गणधर ११६, निर्वाणतिथि फाल्गुण बदि ४, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर, अंतर इनसे ९ हजार कोटी सागर गए पीछे सुपार्श्वनाथ भए।

७—सुपार्श्वनाथके सांथियेका चिन्ह।

पहला भव मध्यग्रैवेयक, जन्मनगरी काशी, पिताका नाम सुप्रतिष्ठ, माताका नाम पृथिवी, गर्भतिथि वृन्दावनकृत पाठोंमें भादों शुदि २, रामचंद्र और बखतावरकृत पाठोंमें भादों शुदि ६, जन्मतिथि ज्येष्ठ शुदि १२, जन्म नक्षत्र विशाखा, काय ऊंची २०० धनुष, रंग हरा प्रियंगु मञ्जरी समान, आयु २० लाख पूर्व, दीक्षातिथि ज्येष्ठ शुदि १२, दीक्षावृक्ष शिरीष (सिरस; केवलज्ञान तिथि फाल्गुण वदि ६, गणधर ९५, निर्वाण तिथि फाल्गुण वदि ७, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर, अंतर—इनसे ९ सौ कोटि सागर गए पीछे चन्द्रप्रभ भए।

८—चन्द्रप्रभके अर्ध चन्द्रका चिन्ह।

पहला भव वैजयंत, जन्मनगरी चन्द्रपुरी, पिताका नाम महासेन, माताका नाम लक्ष्मणा, गर्भतिथि चैत्र बदि ५, जन्मतिथि पौष बदि ११, जन्मनक्षत्र अनुराधा, काय ऊंची १५० धनुष,

रंग श्वेत (सुफेद), आयु १० लाख पूर्व, दीक्षा तिथि पौष वदि ११, दीक्षावृक्ष नाग, केवलज्ञान तिथि फाल्गुण वदी ७, गणधर ९३, निर्वाणतिथि वृंदावन और रामचन्द्रकृत पाठोंमें फाल्गुण शुदि ७, बखतावरकृतमें माघ वदि ७, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अंतर—इनसे ९० कोटि सागर गए पीछे पुष्पदन्त भए।

९—पुष्पदन्तके नाकूका चिन्ह।

पहला भव अपराजित, जन्मगरी काकन्दी, पिताका नाम सुग्रीव, माताका नाम रामा, गर्भतिथि फाल्गुण वदि ९, जन्मतिथि मार्गशिर शुदि १, जन्मनक्षत्र मूला, काय ऊंची १०० धनुष, रंग श्वेत (सुफेद), आयु २ लाख पूर्व, दीक्षातिथि मार्गशिर शुदि १, दीक्षावृक्ष शाल, केवलज्ञान तिथि कार्तिक शुदि २, गणधर ८८, निर्वाणतिथि वृन्दावनकृतमें कार्तिक शुदि २, बखतावरकृतमें आश्विन शुदि ८, रामचन्द्रकृतमें भादों शुदि ८, निर्वाण-आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अंतर—इनसे ९ कोटी सागर गए पीछे शीतलनाथ भए।

१०—शीतलनाथके कल्पवृक्षका चिन्ह।

पहला भव १९ वां आरणस्वर्ग, जन्मनगरी भद्रिकापुरी, पिताका नाम दृढरथ, माताका नाम सुनन्दा, गर्भतिथि चैत्र वदि ८, जन्मतिथि माघ वदि १२, जन्मनक्षत्र पूर्वाषाढ़ा, काय ऊंची ९० धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु १ लाख पूर्व, दीक्षातिथि माघ वदि १२, दीक्षावृक्ष प्लक्ष (पिलखन), केवलज्ञान तिथि

पौष वदि १४, गणधर ८१, निर्वाणतिथि आसोज शुदि ८, निर्वाणआसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अंतर—इनसे १०० सागर घाट कोटि सागर गए पीछे श्रेयांसनाथ भए।

११—श्रेयांसनाथके गेंडका चिन्ह।

पहला भव पुष्पोत्तर विमान, जन्मनगरी सिंहपुरी, पिताका नाम विष्णु, माताका नाम विष्णुश्री, गर्भतिथि वृन्दावन और बख्तावरकृत पाठोंमें ज्येष्ठ बदि ८, रामचन्द्रकृत पाठमें ज्येष्ठ शुदि ६, जन्मतिथि फाल्गुण वदि ११, जन्म नक्षत्र श्रवण, काय ऊंची ८० धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु ८४ लाख वर्ष, दीक्षातिथि फाल्गुण वदि ११, दीक्षावृक्ष तिंदुक, केवलज्ञान तिथि वृन्दावन—रामचन्द्रकृत पाठोंमें माघ वदि अमावास्या, बखतावरकृतमें माघ वदि १०, गणधर ७७, निर्वाण तिथि श्रावण शुदि १५, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाण स्थान सम्मेदशिखर, अन्तर—इनसे ५४ सागर गए पीछे वासुपूज्य भए।

१२—वासुपूज्यके भैंसेका चिन्ह।

पहला भव ८ वां कापिष्ट स्वर्ग, जन्मनगरी चंपापुरी, पिताका नाम वासुपूज्य, माताका नाम बिजया, गर्भतिथि आषाढ वदि ६, जन्मतिथि फाल्गुण वदि १४, जन्मनक्षत्र शतभिषा, काय ऊंची ७० धनुष, रंग आरक्त (सुरख) केसूके फूल समान, आयु ७२ लाख वर्ष, दीक्षातिथि फाल्गुण वदि १४, दीक्षावृक्ष पाटल, केवलज्ञान तिथि वृन्दावन—बखतावर कृत पाठोंमें भादवा

वदि २, रामचंद्रकृतमें माघ शुदि २, गणधर ६६, निर्वाण तिथि भादवा शुदि १४, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान चम्पापुरीका वन, अन्तर इनसे ३० सागर गए पीछे विमलनाथ भए। वासुपूज्य बालब्रह्मचारी भए, न विवाह किया न राज्य किया, कुमार अवस्थामें ही दीक्षा ली।

१३-विमलनाथके सूवरका चिन्ह।

पहला भव १.वां शुक्र स्वर्ग, जन्मनगरी कपिला, पिताका नाम कृतवर्मा, माताका नाम सुरम्या, गर्भतिथि ज्येष्ठ वदि १०, जन्मतिथि वृन्दावन–बखतावर पाठोंमें माघ शुदि ४, रामचंद्रकृतमें माघशुदि १४; जन्मनक्षत्र उत्तराषाढा, काय ६० धनुष ऊंची, रंग पीला सुवर्ण समान, आयु ६० लाख वर्ष, दीक्षातिथि माघ शुदि ४, दीक्षावृक्ष जंबू, केवलज्ञान तिथि माघ शुदि ६, गणधर ५५, निर्वाणतिथि आषाढ वदि ६, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अंतर इनके पीछे ९ सागर गए अनंतनाथ भए।

१४-अनंतनाथके सेहीका चिन्ह।

पहला भव १२वां सहस्रार स्वर्ग, जन्मनगरी अयोध्या, पिताका नाम सिंहसेन, माताका नाम सर्वयशा, गर्भतिथि कार्तिक वदि १, जन्मतिथि ज्येष्ठ वदि १२, जन्म नक्षत्र रेवती, काय ऊंची ५० धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु ३० लाख वर्ष, दीक्षातिथि ज्येष्ठ वदि १२, दीक्षावृक्ष पीपल, केवलज्ञान तिथि चैत्र वदि अमावस्या, गणधर ५०, निर्वाणतिथि वृन्दावन-

बखतावरकृत पाठोंमें चैत्र वदि ४, रामचन्द्रकृतमें चैत्र कृष्ण अमावास्या, निर्वाण आसन खड्गासन; निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अंतर–इनसे ४ सागर गए पीछे धर्मनाथ भए।

१५–धर्मनाथके वज्रदण्डका चिन्ह।

पहला भव पुष्पोत्तर विमान, जन्मनगरी रत्नपुरी, पिताका नाम भानु, माताका नाम सुव्रता, गर्भतिथि वृंदावन–बखतावरकृत पाठोंमें वैशाख शुदि ८, रामचन्द्रकृत, वैशाख शुदि १३, जन्मतिथि माघ शुदि १३, जन्मनक्षत्र पुष्य, काय ऊंची ४५ धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु १० लाख वर्ष; दीक्षातिथि माघ शुदि १३, दीक्षावृक्ष दधिपर्ण, केवलज्ञानतिथि पौष शुदि १५, गणधर ४३, निर्वाणतिथि ज्येष्ठ शुदि ४, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अंतर–इनसे पौण पल्य घाट तीन सागर गए पीछे शांतिनाथ भए।

१६–शांतिनाथके हिरणका चिन्ह।

पहला भव पुष्पोत्तर विमान, जन्मनगरी हस्तनागपुर, पिताका नाम विश्वसेन, माताका नाम ऐरा, गर्भतिथि भादवा वदि ७, जन्मतिथि ज्येष्ठ वदि १४, जन्मनक्षत्र भरणी, काय ऊंची ४० धनुष, रंग पीला सुवर्ण समान, आयु १ लाख वर्ष, दीक्षातिथि ज्येष्ठ वदि १४, दीक्षावृक्ष नंदो, केवलज्ञानतिथि वृंदावन बखतावरकृत पाठोंमें पौष शुदी १०, रामचंद्रकृतमें पौष शुदि ११, गणधर ३६, निर्वाणतिथि ज्येष्ठ वदी १४,

निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अंतर—इनसे आध पल्य गए पीछे कुन्थुनाथ भए।

शांतिनाथ तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती और कामदेव तीन पदवीके धारी भए।

१७—कुन्थुनाथके बकरेका चिन्ह।

पहला भव पुष्पोत्तरविमान, जन्मनगरी हस्तनागपुर, पिताका नाम सूर्य्य, माताका नाम श्रीदेवी, गर्भतिथि श्रावण वदि १०, जन्मतिथि वैशाख शुदि १, जन्मनक्षत्र कृतिका, काय ऊंची ३५ धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु ९५ हजार वर्ष, दीक्षा-तिथि वैशाख शुदि १, दीक्षावृक्ष तिलक, केवलज्ञान तिथि चैत्र शुदि ३, गणधर ३५, निर्वाणतिथि वैशाख शुदि १, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अंतर—इनसे छै हजार कोटि वर्ष घाट पाव पल्य गए पीछे अरनाथ भए। कुन्थु नाथ तीर्थंकर चक्रवर्त्ती और कामदेव तीन पदवीके धारी भए।

१८—अरनाथके मच्छीका चिन्ह।

पहला भव सर्वार्थसिद्धि, जन्मनगरी हस्तनागपुर, पिताका नाम सुदर्शन, माताका नाम मित्रा, गर्भतिथि फाल्गुण शुदि ३, जन्मतिथि मार्गशिर शुदि १४, जन्मनक्षत्र रोहिणी, काय ऊंची ३० धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु ८४ हजार वर्ष, दीक्षातिथि वृन्दावन बखतावरकृत पाठोंमें मार्गशिर शुदि १४, राम चन्द्रकृतमें मार्गशिर शुदि १०, दीक्षावृक्ष आम्र, केवलज्ञान

तिथि कार्तिक शुदि १२, गणधर ३०, निर्वाणतिथि वृन्दावन-बख्तावरकृत पाठोंमें चैत्र शुदि ११, रामचन्द्रकृतमें चैत्र वदि अमावस्या, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अंतर—इनसे पैंसठ लाख चौरासी हजार वर्ष घाट हजार कोटी वर्ष गए मल्लिनाथ भए।

अरनाथ तीर्थंकर चक्रवर्त्ती और कामदेव तीन पदवीके धारी भए।

१९–मल्लिनाथके कलशाका चिन्ह।

पहला भव विजय, जन्मनगरी मिथिलापुरी, पिताका नाम कुम्भ, माताका नाम रक्षता, गर्भतिथि चैत्र शुदि १, जन्मतिथि मार्गशिर शुदि ११, जन्मनक्षत्र अश्वनी, काय ऊंची २५ धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु ५५ हजार वर्ष, दीक्षातिथि मार्गशिर शुदि ११, दीक्षावृक्ष अशोक, केवलज्ञान तिथि पौष वदी २, गणधर २८, निर्वाणतिथि फाल्गुण शुदि ५, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अंतर—इनके पीछे ५४ लाख वर्ष गए श्रीमुनिसुव्रतनाथ भए।

मल्लिनाथ बालब्रह्मचारी भए, न विवाह किया न राज्य किया, कुमार अवस्थामें ही दीक्षा ली।

२०–मुनिसुव्रतनाथके कछवेका चिन्ह।

पहला भव अपराजित, जन्मनगरी कुशाग्रनगर अथवा राजग्रही, पिताका नाम सुमित्र, माताका नाम पद्मावती, गर्भ

तिथि श्रावण वदि २, जन्मतिथि वैशाख वदि १०, जन्म नक्षत्र श्रवण, काय ऊंची २० धनुष, रंग श्याम अंजनगिर समान, आयु ३० हजार वर्ष, दीक्षातिथि वैशाख वदि १०, दीक्षावृक्ष चंपक (चंवेली), केवलज्ञानतिथि वैशाख वदि ९, गणधर १८, निर्वाणतिथि फाल्गुण वदि १२, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अंतर—इनके पीछे ६ लाख वर्ष गए नमिनाथ भए ।

२१—नमिनाथके कमलका चिन्ह ।

पहला भव १४वां प्राणत स्वर्ग, जन्मनगरी मिथिलापुरी, पिताका नाम विजय, माताका नाम वप्रा, गर्भतिथि आसौज वदि २, जन्मतिथि आषाढ़ वदि १०, जन्मनक्षत्र अश्विनी, काय ऊंची १५ धनुष, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु १० हजार वर्ष, दीक्षातिथि आषाढ वदि १०, दीक्षावृक्ष बौलश्री, केवलज्ञानतिथि मार्गशिर शुदि ११, गणधर १७, निर्वाणतिथि वैशाख वदि १४, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अंतर—इनसे ५ लाख वर्ष गए पीछे नेमिनाथ भए ।

२२—नेमिनाथके शंखका चिन्ह ।

पहला भव वैजयंत, जन्मनगरी सौरीपुर वा द्वारिका, पिताका नाम समुद्रविजय, माताका नाम शिवादेवी, गर्भतिथि वृन्दावन—बख्तावरकृत पाठोंमें कार्तिक शुदि ६, रामचन्द्र कृतमें कार्तिक वदि ६, जन्मतिथि श्रावण शुदि ६, जन्मनक्षत्र चित्रा, काय ऊंची १० धनुष, रंग श्याम मोरके कंठ समान,

आयु १ हजार वर्ष, दीक्षातिथि श्रावण शुदि ६, दीक्षावृक्ष मेषशृंग, केवलज्ञानतिथि आसोज शुदि १, गणधर ११, निर्वाणतिथि वृन्दावन—बखतावरकृत पाठोंमें आषाढ़ शुदि ८, रामचन्द्रकृतमें आषाढ़ शुदि ७, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान गिरनार पर्वत, अंतर–इनसे पौने चौरासी हजार वर्ष गए पीछे पार्श्वनाथ भए।

नेमिनाथ बालब्रह्मचारी भए, न विवाह किया न राज्य, कुमार अवस्थामें ही दीक्षा ली।

२३–पार्श्वनाथके सर्पका चिन्ह।

पहला भव १३वां आनत स्वर्ग, जन्मनगरी काशीपुरी, पिताका नाम अश्वसेन, माताका नाम वामा, गर्भतिथि वैशाख वदि २, जन्मतिथि पौष वदि ११, जन्म नक्षत्र विशाखा, काय ऊंची ९ हाथ, रंग हरा कांचि शालि समान, आयु सौ वर्ष, दीक्षा तिथि पोष वदि ११, दीक्षावृक्ष धवल, केवलज्ञान तिथि चैत्र वदि ४, गणधर १०, निर्वाणतिथि श्रावण शुदि ७, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान सम्मेदशिखर, अंतर–इनसे अढाइसौ वर्ष गए पीछे वर्द्धमान भए।

पार्श्वनाथ बालब्रह्मचारी भए, न विवाह किया न राज्य, कुमार अवस्थामें ही दीक्षा ली।

२४–महावीरके शेरका चिन्ह।

पहला भव पुष्पोत्तर, जन्मनगरी कुण्डलपुर, पिताका नाम सिद्धार्थ, माताका नाम प्रियकारिणी (त्रिशला), गर्भतिथि आषाढ़

शुदि ६, जन्मतिथि चैत्र शुदि १३, जन्मनक्षत्र हस्त, काय ऊंची ७ हाथ, रंग सुवर्ण समान पीला, आयु ७२ वर्ष, दीक्षातिथि मार्गशिर वदि १०, दीक्षावृक्ष शाल, केवलज्ञान तिथि वैशाख शुदि १०, गणधर ११, निर्वाणतिथि कार्तिक वदि अमावस्या, निर्वाण आसन खड्गासन, निर्वाणस्थान पावापूर।

यह बालब्रह्मचारी भए, न विवाह किया न राज्य किया, कुमार अवस्थामें ही दीक्षा ली, जब ये मोक्ष गए चौथे कालके ३ वर्ष साढ़े आठ महीना बाकी रहे थे।

(५) बारह चक्रवर्त्ती।

१ भरतचक्री, २ सगरचक्री, ३ मघवाचक्री, ४ सनत्कुमारचक्री, ५ शान्तिनाथचक्री (तीर्थंकर), ६ कुन्थुनाथचक्री, (तीर्थंकर), ७ अरनाथचक्री (तीर्थंकर), ८ सुभूमचक्री, ९ पद्मचक्री वा महापद्म, १० हरिषेणचक्री, ११ जयचक्री, १२ ब्रह्मदत्तचक्री।

[६] नव नारायण।

१ त्रिपृष्ठ, २ द्विपृष्ठ, ३ स्वयंभू, ४ पुरुषोत्तम, ५ पुरुषसिंह, ६ पुण्डरीक, ७ दत्त, ८ लक्ष्मण, ९ कृष्ण।
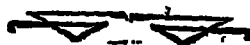
(७) नव प्रतिनारायण।

१ अश्वग्रीव, २ तारक, ३ मेरक, ४ मधु (मधुकैटभ) ५ निशुंभ, ६ वली, ७ प्रल्हाद, ८ रावण, ९ जरासंघ।

(८) बलभद्र।

१ अचल, २ विजय, ३ भद्र, ४ सुप्रभ ५ सुदर्शन, ६ आनंद, ७ नंदन (नंद), ८ पद्म (रामचन्द्र), ९ राम (बलभद्र)।

नोट—२४ तीर्थंकर; १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ बलभद्र यह मिलकर ६३ शलाकाके पुरुष कहलाते हैं।

(९) नव नारद।

१ भीम, २ महाभीम, ३ रुद्र, ४ महारुद्र, ५ काल, ६ महाकाल, ७ दुर्मुख, ८ नरकमुख, ९ अधोमुख।

(१०) ग्यारह रूद्र।

१ भीमबली, २ जितशत्रु, ३ रुद्र, ४ विश्वानल, ५ सुप्रतिष्ठ, ६ अचल, ७ पुण्डरीक, ८ अजितधर, ९ जितनाभि, १० पीठ, ११ सात्यकी।

(११) चौवीस कामदेव ।

१ बाहुबली, २ अमिततेज, ३ श्रीधर ४ दशभद्र, ५ प्रसेनजित्, ६ चंद्रवर्ण, ७ अग्निमुक्ति, सनत्कुमार (चक्रवर्त्ती); ९ वत्सराज, १० कनकप्रभ, ११ मेघवर्ण, १२ शांतिनाथ (तीर्थंकर), १३ कुंथुनाथ ((तीर्थंकर), १५ विजयराज, १६ श्रीचंद्र, १७ राजा नल, १८ हनुमान्, १९ बलराजा, २० वसुदेव, २१ प्रद्युम्न, २२नागकुमार, २३ श्रीपाल, २४जंबूस्वामी।

[१२] चौदह कुलकर ।

१ प्रतिश्रुति, २ सन्मति, ३ क्षेमंकर, ४ क्षेमंधर, ५ सीमंकर, ६ सीमंधर, ७ विमलवाहन, ८ चक्षुष्मान्, ९ यशस्वी, १० अभिचंद्र, ११ चंद्राभ, १२ मरुदेव, १३ प्रसेनजित्, १४ नाभिराजा ।

नोट—५८ तो यह और ६३ शलाका पुरुष इनमें चौवीस तीर्थंकरोंके ४८ माता पिता मिला कर यह सर्व १६९ पुण्य पुरुष कहलाते हैं अर्थात् जितने पुण्यवान् पुरुष हुए हैं उनमें यह मुख्य गिने जाते हैं ।

[१३] ग्यारह प्रसिद्ध पुरुषोंके नाम ।

१ नाभि, २ श्रेयांस, ३ बाहुबली, ४ भरत, ५ राम-

चन्द्र, ६ हनुमान्, ७ सीता, ८ रावण, ९ कृष्ण, १० महादेव, ११ भीम, १२ पार्श्वनाथ ।

नोट—कुलकरोंमें नाभिराजा, दान देनेमें श्रेयांस राजा, तप करनेमें बाहुबली एक साल तक कायोत्सर्ग खड़े रहे, भावकी शुद्धतामें भरत चक्रवर्त्तीको दीक्षा लेते ही केवलज्ञान हुवा, बलदेवोंमें रामचन्द्र, कामदेवोंमें हनुमान्, सतियोंमें सीता, मानियोंमें रावण, नारायणोंमें कृष्ण, रुद्रोंमें महादेव, बलवानोंमें भीम, तीर्थंकरोंमें पार्श्वनाथ, यह पुरुष जगत्में बहुत प्रसिद्ध हुए हैं ॥

(१४) दूसरे सिद्धक्षेत्रोंके नाम ।

१ मांगीतुंगी, २ मुक्तागिरि (मेढ़गिरी), ३ सिद्धवरकूट, ४ पावागिरि चेलनानदी के पास, ५ शेत्रुंजय, ६ बड़वानी, ७ सोनागिरि, ८ नैनागिरी (नैनानंद), ९ द्रोनागिरि, १० तारंगा, ११ कुंथुगिरि, १२ गजपंथ, १३ राजग्रही, १४ गुणावा, १५ पटना, १६ कोटिशिला ।

(१५) महाविदेहक्षेत्रके २० विद्यमान ।

१ सीमन्धर, २ युगमंधर, ३ बाहु, ४ सुबाहु, ५ सुजात, ६ स्वयंप्रभ, ७ वृषभानन, ८ अनन्तवीर्य, ९ सूरप्रभ, १० विशालकीर्त्ति, ११ वज्रधर, १२ चंद्रानन, १३ चन्द्रबाहु, १४ भुजंगम, १५ ईश्वर, १६ नेमप्रभ (नमि), १७ वीरसेन, १८ महाभद्र, १९ देवयश, २० अजितवीर्य ।

(१६) अतीत (पिछली) चौवीसी ।

१ श्रीनिर्वाण, २ सागर, ३ महासाधु, ४ विमलप्रभ, ५ श्रीधर, ६ सुदत्त, ७ अमलप्रभ, ८ उद्धर, ९ अंगिर, १० सन्मति, ११ सिंधुनाथ, १२ कुसुमांजलि, १३ शिवगण, १४ उत्साह, १५ ज्ञानेश्वर, १६ परमेश्वर, १७ विमलेश्वर १८ यशोधर, १९ कृष्णमति, २० ज्ञानमति, २१ शुद्धमति, २२ श्रीभद्र, २३ अतिक्रांत, २४ शांति ।

(१७) अनागत (आइन्दा) चौवीसी ।

१ श्रीमहापद्म, २ सुरदेव, ३ सुपार्श्व, ४ स्वयंप्रभ, ५ सर्वात्मभू, ६ श्रीदेव, ७ कुलपुत्रदेव, ८ उदंकदेव, ९ प्रोष्टिलदेव, १० जयकीर्ति, ११ मुनिसुव्रत, १२ अरह (अमम) १३ निष्पाप, १४ निःकषाय, १५ विपुल, १६ निर्मल, १७ चित्रगुप्त, १८ समाधिगुप्त, १९ स्वयंभू, २० अनिवृत्त, २१ जयनाथ, २२ श्रीविमल, २३ देवपाल, २४ अनन्तवीर्य ।

[१८] चौदह गुणस्थान ।

१ मिथ्यात्व, २ सासादन, ३ मिश्र, ४ अविरत सम्यक्त्व, ५ देशव्रत, ६ प्रमत्त, ७ अप्रमत्त, ८ अपूर्वकरण, ९ अनिवृत्तिकरण, १० सूक्ष्मसांपराय, ११ उपशांतकषाय वा उपशांतमोह, १२ क्षीणकषाय वा क्षीणमोह, १३ सयोगकेवली, १४ अयोगकेवली ।

(१९) सोलहकारण भावना ।

१ दर्शनविशुद्धि, २ विनयसंपन्नता, ३ शीलव्रतेष्वनतिचार, ४ अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, ५ संवेग, ६ शक्तितस्त्याग, ७ तप ८ साधु-समाधि, ९ वैय्यावृत्य, १० अर्हद्भक्ति, ११ आचार्यभक्ति, १२ बहुश्रुतभक्ति, १३ प्रवचनभक्ति, १४ आवश्यकपरिहाणी, १५ मार्गप्रभावना, १६ प्रवचनवात्सल्य ।

(२०) श्रावकोंके २१ उत्तरगुण ।

१ लज्जावंत, २ दयावंत, ३ प्रसन्नता, ४ प्रतीतिवन्त, ५ परदोषाच्छादन, ६ परोपकारी, ७ सौम्यदृष्टि, ८ गुणग्राही, ९ १० मिष्टवादी, ११ दीर्घविचारी, १२ दानवंत, १३ शीलवंत, १४ कृतज्ञ, १५ तत्वज्ञ, १६ धर्मज्ञ, १७ मिथ्यात्व रहित, १८ संतोषवंत, १९ स्याद्वाद भाषी, २० अमक्ष्यत्यागी, २१ षटकर्मप्रवीण।

(२१) श्रावककी ५३ क्रिया ।

८ मूलगुण, १२ व्रत, १२ तप, १ समताभाव, ११ प्रतिमा, ४ दान, ३ रत्नत्रय, १ जल छाणन क्रिया, १ रात्रिभोजनत्याग और दिनमें अन्नादिक भोजन सोधकर खाना अर्थात छानबीन कर देखभालकर खाना ।

श्रावकके ८ मूलगुण—५ उदंबर । ३ मकार ।

१२ व्रत—५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत, ४ शिक्षाव्रत ।

५ अणुव्रत—१ अहिंसा अणुव्रत, २ सत्याणुव्रत, ३ परस्त्री-

त्याग अणुव्रत, ४ (अचौर्य) चोरी त्याग अणुव्रत, ५ परिग्रह-प्रमाण अणुव्रत।

३ गुणव्रत—१ दिग्व्रत, २ देशव्रत, ३ अनर्थदंडत्याग।

४ शिक्षाव्रत—१ सामायिक, २ प्रोषधोपवास, ३ अतिथि-संविभाग, ४ भोगोपभोगपरिमाण।

१२ तप—

आचार्यके ३६ गुणोंमें लिखे हैं। इनके भी वही नाम। ज्यादे इतना है कि मुनियोंके महान् व्रत होते हैं, श्रावकोंके अणुव्रत यानि कम परीषहवाले।

११ प्रतिमा—१ दर्शनप्रतिमा, २ व्रत, ३ सामायिक, ४ प्रोषधोपवास, ५ सचित्तत्याग, ६ रात्रिभुक्ति त्याग, ७ ब्रह्मचर्य, ८ आरम्भ त्याग, ९ परिग्रहत्याग, १० अनुमति त्याग, ११ उद्दिष्ट त्याग।

चार दान—आहारदान, औषधदान, शास्त्रदान, अभयदान। यह ४ दान श्रावकको करने योग्य हैं।

३ रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। यह तीन रत्न श्रावकके धारने योग्य हैं। इनका खुलासा (अर्थ) जैन बाल गुटकेके दूसरे भागमें सम्यक्तके वर्णनमें लिखा है। इनका नाम रत्न इस कारणसे है कि जैसे सुवर्णादिक सर्व धनमें रत्न उत्तम यानि बेश कीमत होता है इसी प्रकार कुल नियम, व्रत, तपमें यह तीन सर्वमें उत्तम हैं जैसे कि विना अंक बिन्दियां किसी कामकी नहीं इसी प्रकार बगैर इन तीनोंके सारे व्रत नियम कुछ भी फलदायक नहीं हैं। सर्व नियम, व्रत मानिन्द

बिन्दी (शून्य)के हैं। यह तीनों मानिन्द शुरूके अंकके हैं इसलिये इन तीनोंको रत्न माना है ॥

दातारके २१ गुण—९ नवधाभक्ति, ७ गुण, ५ आभूषण।

यह २१ गुण दातारके हैं अर्थात् पात्रको दान देनेवाले दातामें यह २१ गुण होने चाहिये।

दातारकी नवधा भक्ति—पात्रको देख बुलाना, उच्चासन पर बैठाना, चरण धोना, चरणोदक मस्तक पर चढ़ाना, पूजा करना, मन शुद्ध रखना, वचन विनयरूप बोलना, शरीर शुद्ध रखना, शुद्ध आहार देना।

यह नव प्रकारकी भक्ति दातारकी है अर्थात् दातार कहिये दान देनेवालेको यह नव प्रकारकी नवधा भक्ति करनी चाहिये।

दातारके सात गुण—१ श्रद्धावान् होना, २ शक्तिवान् होना, ३ अलोभी होना, ४ दयावान् होना, ५ भक्तिवान् होना, ६ क्षमावान् होना, ७ विवेकवान् होना।

दातारमें यह सात गुण होते हैं अर्थात् जिसमें यह सात गुण हों वह सच्चा दातार है।

दाताके पांच भूषण—१ आनन्दपूर्वक देना, २ आदरपूर्वक देना, ३ प्रिय वचन कहकर देना, ४ निर्मल भाव रखना, ५ जन्म सुफल मानना।

दाताके पांच दूषण—विलम्बसे देना, विमुख होकर देना, दुर्वचन कहकर देना, निरादर करके देना, देकर पछताना।

यह दाताके पांच दूषण हैं अर्थात् दातारमें यह पांच बात नहीं होनी चाहिये।

[२२] ग्यारह प्रतिमाओंका सामान्य स्वरूप ।

दोहा ।

प्रणम पंच परमेष्ठि पद, जिन आगम अनुसार; श्रावकप्रतिमा एक दश, कहुं भविजन हितकार ॥ १ ॥ सवैया ३१ ॥ श्रद्धा कर व्रत पाले सामायक दोष टालें, पौसों माँड सचित कों त्यागें लों घटायकें । रात्रिभुक्त परिहरें, ब्रह्मचर्य नित धरें, आरम्भको त्याग करें मन वच कायकें ॥ परिग्रह काज टारें अघ अनुमत छारें, स्वनिमित कृत टारें असत वनायकें । सव एकादश येह प्रतिमा जु शर्म्म गेह, धारें देश प्रती उर हरष बढायकें ॥

दर्शन प्रतिमा स्वरूप—अष्ट मूलगुण संग्रह करें, विशुन अभक्ष्य सबै परिहरें, पुत अष्टांग शुद्ध सम्यक्त, धरहिं प्रतिज्ञा दरशन रक्त ॥ १ ॥

व्रत प्रतिमा स्वरूप—अणुव्रतपन अतिचार विहीन, धारह जो पुन गुणव्रत तीन, शिक्षाव्रत संजुत सोय; व्रत प्रतिमा धर श्रावक होय ॥ २ ॥

सामायक प्रतिमा स्वरूप—गीतका छंद-सव जियननैं समभाव धर शुभ भावना संयममहीं, दुरध्यान आरत रौद्र तज कर त्रिविध काल प्रमाणहीं । परमेष्टि पन जिन वचन जिन वृष बिंब जिन जिनग्रह तनी, वंदन त्रिकाल करह सुजानहु भव्य सामायक धनी ॥ ३ ॥

प्रोषध प्रतिमा स्वरूप—पद्धरी छंद—वर मध्यम जघन्य त्रिविध धरेय, प्रोषध विधि युत निजवल प्रमेय, प्रति मास चार पर्वी मझार, जानहु सो प्रोषध नियम धार ॥ ४ ॥

सचित्तत्याग प्रतिमा स्वरूप—चौपाई—जो परिहरै हरीं सब बीज, पत्र प्रवाल कंद फलबीज, अरु अप्रासुक जल भी सोय, सचित्त त्याग प्रतिमा धर होय ॥५॥

रात्रिभुक्तत्याग प्रतिमा स्वरूप-अडिल्ल छंद—मन वच तन कृत कारित अनुमोदै सही, नवविध मैथुन दिवस मांहि जो वर्जही, अरु चतुर्विध आहार निशामाही तजै, रात्रिभुक्ति परित्याग प्रतिमा सो सजै ॥ ६ ॥

ब्रह्मचर्यप्रतिमा स्वरूप—चौपाई—पूर्व उक्त मैथुन नव भेद, सर्व प्रकार तजै निरखेय, नारि कथादिक भी परिहरे, ब्रह्मचर्य प्रतिमा सो धरे ॥ ७ ॥

आरंभ त्याग प्रतिमा स्वरूप—चौपाई—जो कछु अल्प बहुत अघ काज, ग्रह संबंधी सो सब त्याज, निरारम्भ व्है वृष रत रहै, सो जिय अष्टमी प्रतिमा वहै ॥ ८ ॥

परिग्रहत्याग प्रतिमा स्वरूप-चौपाई—वस्त्र मात्र रख परिग्रह अन्य, त्याग करै जो व्रतसंपन्न, तामे पुनः मूर्छा परहरै, नवमी प्रतिमा सो भवि धरै ॥ ९ ॥

अनुमतत्याग प्रतिमा स्वरूप—चौपाई—जो प्रमाण अघमय उपदेश, देय नहीं परको लवलेश, अरु तसु अनुमोदन भी तजै, सोही दशमी प्रतिमा सजै ॥ १० ॥

उद्दिष्टत्याग प्रतिमा स्वरूप—चौपई—ग्यारम थांन भेद हैं दोय, इक छुल्लक इक ऐलक सोय, खंडवस्त्र धर प्रथम सुजान, युतकोपीन हि दुतिय प्रछान ॥ ११ ॥

ए ग्रह त्याग मुनिन ढिंग रहै, वा मठ, मंदिरमें निवसहैं, उत्तर उदंड उचित आहार; करहिं शुद्ध; अंत्रायन भार ॥ दोहा ॥ इम सब प्रतिमा एकदश दोल देशव्रत थान, ग्रहै अनुक्रम मूल सह, पालें भवि सुखदान॥

[२३] श्रावकके १७ नियम।

१ भोजन, २ अचित बस्तु, ३ गृह, ४ संग्राम, ५ दिशागमन, ६ औषधिविलेपन, ७ तांबूल, ८ पुष्पसुगंध, ९ नाच, १० गीतश्रवण, ११ स्नान, १२ ब्रह्मचर्य, १३ आभूषण, १४ वस्त्र, १५ शय्या, १६ औषध खाणी, १७ घोडा वैलादिककी स्वारी।

नोट—इनमेंसे हररोज जिस जिसकी जरूरत हो उसका प्रमाण रखे कि आज यह करूंगा, बाकीका प्रतिदिन त्याग किया करें।
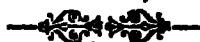
(२४) सात व्यसनका त्याग।

१ जूवा, २ मांस, ३ मदिरा, ४ गणिका (रंडी), ५ शिकार, ६ चोरी, ७ परस्त्री।
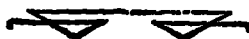
[२५] बावीस अभक्ष्यका त्याग।

पांच उदम्बर।

१ उदम्बर (गूलर), २ कठूम्बर, ३ बड़फल, ४ पीपलफल, ५ पाकरफल (पिलखन फल)।

तीन मकार ।

१ मांस, २ मधु, ३ मदिरा ।

नोट—इन तीनोंको तीन मकार इस कारणसे कहते हैं कि इन तीनों नामोंके शुरूमें ' म ' है ।

बाकी चौदह यह हैं ।

१ ओला, २ बिदल, ३ रात्रिभोजन, ४ बहुबीजा, ५ बैंगन, ६ अचार, ७ बिना चिन्हें फल (अनजान), ८ कन्दमूल, ९ माटी, १० विष, ११ तुच्छफल, १२ तुषार (बरफ), १३ चलितरस, १४ माखन ।

नोट—५ उदम्बर, ३ मकार १४ दूसरे बाईस अभक्ष्य कहाते हैं ।

[२६] श्रावकके नित्य षट्कर्म ।

षट् नाम छैका है । १ देवपूजा, २ गुरुसेवा, ३ स्वाध्याय, ४ संयम, ५ तप, ६ दान। यह छह कर्म श्रावकके नित्य करनेके हैं ।

द्वितीय खंड।

(१) इष्टछत्तीसी

अर्थात्

पंचपरमेष्ठीके १४३ मूलगुण।

सोरठा।

प्रणमूं श्री अरहंत, दयाकथित जिनधर्मको।
गुरु निरग्रंथ महंत, अवर न मानूं सर्वथा ॥ १ ॥
बिन गुणकी पहिचान, जानै वस्तु समानता।
तातें परम बखान, परमेष्ठी गुणको कहूं ॥ २ ॥
रागद्वेषयुत देव, मानै हिंसाधर्म पुनि।
सग्रंथगुरुकी सेव, सो मिथ्याती जग भ्रमै ॥ ३॥

अथ अरहंतके ४६ मूलगुण।

दोहा।

चौतीसों अतिशय सहित, प्रातिहार्य पुनि आठ।
अनँत चतुष्टय गुणसहित, छीयालीसों पाठ ॥ ४ ॥

अर्थ—३४ अतिशय, ८ प्रातिहार्य, ४ अनंतचतुष्टय ये अरहंतके ४६ मूलगुण होते हैं। अब इनका भिन्न २ वर्णन करते हैं।

जन्मके १० अतिशय।

अतिशय रूप सुगंध तन, नाहिं पसेव निहार।
प्रियहितवचन अतुल्य बल, रुधिर श्वेत आकार।
लच्छन सहसरु आठ तन, समचतुष्कसंठान।
वज्रवृषभनाराच जुत, ये जनमत दश जान॥ ६॥

अर्थ—१ अत्यन्त सुन्दर शरीर, २ अति सुगन्धमय शरीर, पसेवरहित शरीर, ४ मलमूत्ररहित शरीर, ५ हितमितप्रियवचन बोलना, ६ अतुल्य बल, ७ दुग्धवत् श्वेत रुधिर, ८ शरीरमें एक हजार आठ लक्षण, ९ समचतुरस्रसंस्थान, १० वज्रवृषभनाराचसंहनन। ये दश अतिशय अरहंत भगवानके जन्मसे ही उत्पन्न होते हैं।

केवलज्ञानके १० अतिशय।

योजन शत इकमें सुभिख, गगनगमन मुख चार।
नहिं अदया उपसर्ग नहिं, नाहीं कवलाहार॥
सब विद्या ईश्वरपनौं, नाहिं बढ़ै नखकेश।
अनिमिष दृग छायारहित, दश केवलके वेश॥ ८॥

अर्थ—१ एकसौ योजनमें सुभिक्षता, अर्थात् जिस स्थानमें केवली हों उनसे चारों तरफ सौ सौ कोशमें सुकाल होता है, २ आकाशमें गमन, ३ चार मुखोंका दीखना, ४ अदयाका अभाव, ५ उपसर्गरहित, ६ कवल (ग्रास) वर्जित आहार, ७ समस्त विद्याओंका स्वामीपना, ८ नखकेशोंका नहीं बढ़ना, ९ नेत्रोंकी पलकें नहीं झपकना, १० छाया रहित। ये १० अतिशय केवलज्ञान उत्पन्न होनेसे प्रगट होते हैं॥ ८॥

देवकृत १४ अतिशय।

देवरचित हैं चार दश, अर्द्धमागधी भाष।
आपसमाहीं मित्रता, निरमल दिश आकाश ॥ ९ ॥
होत फूल फल ऋतु सबै, पृथिवी काच समान।
चरणकमलतल कमल है, नमतैं जय जय बान ॥ १० ॥
मंद सुगंध बयारि पुनि, गंधोदककी वृष्टि।
भूमिविषै कंटक नहीं, हर्षमयी सब सृष्टि ॥ ११ ॥
धर्मचक्र आगे चले, पुनि वसु मंगल सार।
अतिशय श्रीअरहंतके, ये चौतीस प्रकार ॥ १२ ॥

अर्थ—१ भगवान्‌की अर्द्धमागधी भाषाका होना, २ समस्त जीवोंमें परस्पर मित्रताका होना, ३ दिशाओंका निर्मल होना, ४ आकाशका निर्मल होना, ५ सब ऋतुके फल पुष्प धान्यादिकका एक ही समय फलना, ६ एक योजनतककी पृथिवीका दर्पणवत् निर्मल होना, ७ चलते समय भगवान्‌के चरण कमलके तले सुवर्ण-कमलका होना, ८ आकाशमें जयजय ध्वनिका होना, ९ मंद-सुगंधित पवनका चलना, १० सुगंधमय जलकी वृष्टि होना, ११ पवनकुमार देवोंके द्वारा भूमिका कण्टकरहित होना, १२ समस्त जीवोंका आनन्दमय होना, १३ भगवान्‌के आगे धर्मचक्रका चलना, १४ छत्र, चमर, ध्वजा, घंटादि अष्ट मंगल द्रव्योंका साथ रहना। इसप्रकार सब मिलाकर ३४ अतिशय अरहंत भगवानके होते हैं ॥ १२ ॥

अष्ट प्रातिहार्य।

तरु अशोकके निकटमें, सिंहासन छविदार।
तीन छत्र सिरपर लसैं, भामंडल पिछवार ॥ १३ ॥
दिव्यध्वनि मुखतैं खिरै, पुष्पवृष्टि सुर होय।
ढौरैं चौसठि चमर जख, बाजैं दुंदुभि जोय ॥ १४ ॥

अर्थ—१ अशोकवृक्षका होना, २ रत्नमय सिंहासन, ३ भगवानके सिरपर तीन छत्रका फिरना, ४ भगवानके पीछे भामंडलका होना, ५ भगवानके मुखसे दिव्यध्वनिका होना, ६ देवोंके द्वारा पुष्पवृष्टिका होना, ७ यक्षदेवोंद्वारा चौसठ चँवरोंका ढुरना, दुंदुभि बाजोंका बजना; ये आठ प्रातिहार्य हैं।

अनन्तचतुष्टय।

ज्ञान अनंत अनंत सुख, दरस अनंत प्रमान।
बल अनंत अरहंत सो, इष्टदेव पहिचांन ॥ १५ ॥

अर्थ—१ अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, ३ अनन्तसुख, ४ अनन्तवीर्य। जिसमें इतने गुण हों, वह अरहन्त परमेष्ठी है।

अष्टादशदोषवर्जन।

जनम जरा तिरषा क्षुधा, विसमय आरत खेद।
रोग शोक मद मोह भय, निद्रा चिंता स्वेद ॥ १६ ॥
राग द्वेष अरु मरण जुत, ये अष्टादश दोष।
नाहिं होत अरहंतके, सो छवि लायक मोष ॥ १७ ॥

अर्थ—१ जन्म, २ जरा, ३ तृषा, ४ क्षुधा, ५ आश्चर्य, ६ अरति (पीडा), ७ खेद (दुःख), ८ रोग, ९ शोक, १० मद, ११ मोह, १२ भय, १३, निद्रा, १४ चिन्ता, १५ पसीना,

१६ राग, १७ द्वेष, १८ मरण, ये १८ दोष अरहंत भगवानमें नहीं होते ॥ १७ ॥

सिद्धोंके ८ गुण ।

सोरठा ।

समकित दरसन ज्ञान, अगुरुलघू अवगाहना ।
सूच्छम वीरजवान, निराबाध गुन सिद्धके ॥ १८ ॥

अर्थ—१ सम्यक्त्व, २ दर्शन, ३ ज्ञान, ४ अगुरुलघुत्व, ५ अवगाहनत्व, ६ सूक्ष्मत्व, ७ अनंतवीर्य्य, ८ अव्याबाधत्व, ये सिद्धोंके ८ मूलगुण होते हैं ॥ १८ ॥

आचार्यके ३६ गुण ।

द्वादश तप दश धर्मजुत, पालैं पंचाचार ।
षट् आवशिक त्रिगुप्ति गुन, आचारज पदसार ॥

अर्थ—तप १२, धर्म १०, आचार ५, आवश्यक ६, गुप्ति ३ । ये आचार्य महाराजके ३६ मूलगुण होते हैं । अब इनको भिन्न २ कहते हैं ॥ १९ ॥

द्वादश तप ।

अनशन ऊनोदर करैं, व्रतसंख्या रस छोर ।
विविक्तशयन आसन धरैं, कायकलेश सुठोर ॥
[प्रा]यश्चित धर विनयजुत, वैयाव्रत स्वाध्याय ।
[पु]नि, उत्सर्ग विचारकै, धरैं ध्यान मन लाय ॥ २१ ॥

अर्थ—१ अनशन, २ ऊनोदर, ३ व्रतपरिसंख्यान, ४ रस-परित्याग, ५ विविक्तशय्यासन, ६ कायक्लेश, ७ प्रायश्चित लेना, ८ पांच प्रकार विनय करना, ९ वैयाव्रत करना, १० स्वाध्याय करना, ११ व्युत्सर्ग (शरीरसे ममत्व छोड़ना), और १२ ध्यान करना, ये बारह प्रकारके तप हैं ॥ २१ ॥

दश धर्म।

छिमा मारदव आरजव, सत्यवचन चित पाग।
संजम तप त्यागी सरव, आकिंचन तियत्याग ॥

अर्थ—१ उत्तमक्षमा, २ मार्दव, ३ आर्जव, ४ सत्य, ५ शौच, ६ संयम, ७ तप, ८ त्याग, ९ आकिंचन्य, १० ब्रह्मचर्य ये दश प्रकारके धर्म हैं ॥ २२ ॥

आवश्यक।

समता धर वंदन करैं, नाना थुती बनाय।
प्रतिक्रमण स्वाध्यायजुत, कायोत्सर्ग लगाय ॥

अर्थ—१ समता (समस्त जीवोंसे समता भाव रखना) २, वंदना, ३ स्तुति (पंचपरमेष्ठीकी स्तुति) करना, ४ प्रतिक्रमण (लगे हुए दोषोंपर पश्चाताप)करना, ५ स्वाध्याय, और ६ कायोत्सर्ग (ध्यान) करना ये छह आवश्यक हैं ॥ २३ ॥

पंचाचार और तीन गुप्ति।

दर्शन ज्ञान चारित्र तप, वीरज पंचाचार।
गोपे मनवचकायको, गिन छतीस गुन सार ॥

अर्थ—१ दर्शनाचार, २ ज्ञानाचार, ३ चारित्राचार, ४ तपा-

चार, ५ वीर्य्याचार, १ मनोगुप्ति मनको वशमें करना, २ वचनगुप्ति वचनको वशमें करना, ३ कायगुप्ति शरीरको वशमें करना, इस प्रकार सब मिलाकर आचार्यके ३६ मूलगुण हैं ॥ २४ ॥

उपाध्यायके २५ गुण।

चौदह पूरवको धरें, ग्यारह अंग सुजान।
उपाध्याय पच्चीस गुण, पढ़ें पढ़ावें ज्ञान ॥ २५ ॥

अर्थ—११ अंग १४ पूर्वको आप पढ़ें और अन्यको पढ़ावें ये ही उपाध्यायके २५ गुण हैं ॥ ५ ॥

ग्यारह अंग।

प्रथम हि आचारांग गनि, दूजो सूत्रकृतांग।
ठाणअंग तीजो सुभग, चौथो समवायांग ॥ २६ ॥
व्याख्या पण्णति पंचमो, ज्ञातृ कथा षट आन।
पुनि उपासकाध्ययन है, अन्तःकृत दशठान ॥
अनुत्तरणउत्पाद दश, सूत्रविपाक पिछान।
बहुरि प्रश्नव्याकरणजुत, ग्यारह अंग प्रमान ॥

अर्थ—१ आचारांग, २ सूत्रकृतांग, ३ स्थानांग, ४ समवायांग, ५ व्याख्याप्रज्ञप्ति, ६ ज्ञातृकथांग, ७ उपासकाध्ययनांग, ८ अन्तकृद्दशांग, ९ अनुत्तरोत्पाददशांग, १० प्रश्नव्याकरणांग, ११ विपाकसूत्रांग, ये ग्यारह अंग हैं ॥ २८ ॥

चौदह पूर्व।

उत्पादपूर्व अग्रायणी, तीजो वीरजवाद।
अस्ति नास्ति परवाद पुनि, पंचम ज्ञानप्रवाद ॥

छट्ठो कर्मप्रवाद है, सतप्रवाद पहिचान।
अष्टम आत्मप्रवाद पुनि, नवमों प्रत्याख्यान ॥ १० ॥
विद्यानुवाद पूरव दशम, पूर्वकल्याण महंत।
प्राणवाद किरिया बहुल, लोकबिंदु है अंत ॥ ११ ॥

अर्थ—१ उत्पादपूर्व, २ अग्रायिणी पूर्व, ३ वीर्य्यानुवादपूर्व, ४ अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, ५ ज्ञानप्रवादपूर्व, ६ कर्मप्रवादपूर्व ७ सत्प्रवादपूर्व, ८ आत्मप्रवादपूर्व, ९ प्रत्याख्यानपूर्व, १० विद्यानुवादपूर्व, ११ कल्याणवादपूर्व, १२ प्राणानुवादपूर्व, १३ क्रियाविशालपूर्व, १४ लोकबिन्दुपूर्व ये १४ पूर्व हैं ॥ ११ ॥

सर्वसाधुके २८ मूलगुण।

पंचमहाव्रत।

हिंसा अनृत तस्करी, अब्रह्म परिग्रह पाय।
मनवचतनतैं त्यागवो, पंचमहाव्रत थाय ॥ १२ ॥

अर्थ—१ अहिंसा महाव्रत, २ सत्य महाव्रत, ३ अचौर्य महाव्रत, ४ ब्रह्मचर्य महाव्रत, ५ परिग्रहत्याग महाव्रत, ये पांच महाव्रत हैं।

पांच समिति।

ईर्य्या भाषा एषणा, पुनि क्षेपन आदान।
प्रतिष्ठापनाजुत क्रिया, पांचों समिति विधान ॥

अर्थ—१ ईर्य्यासमिति, २ भाषासमिति, ३ एषणासमिति, ४ आदाननिक्षेपणसमिति, ५ प्रतिष्ठापनासमिति, ये पांच समिति हैं ॥ १३ ॥

पांच इंद्रियोंका दमन।

सपरस रसना नासिका, नयन श्रोत्रका रोध।
षट आवशि मंजन तजनं, शयन भूमिको शोध॥

अर्थ—१ स्पर्शन (त्वक्), रसना, ३ घ्राण, ४ चक्षु, और ५ श्रोत्र इन पांच इन्द्रियोंका वश करना सो इन्द्रियदमन है (छह आवश्यक आचार्य्यके गुणोंमें देखो)॥ २४॥

शेष सात गुण।

वस्त्रत्याग कचलोंच अरु, लघु भोजन इकवार।
दांतन मुखमें ना करें, ठाडे लेहिं अहार॥ २५॥

अर्थ—१ यावज्जीव स्नानका त्याग, २ शोधकर (देख भाल कर) भूमिपर सोना, ३ वस्त्रत्याग, (दिगम्बर होना), ४ केशोंका लौंच करना, ५ एकवार लघुभोजन करना, ६ दन्तधावन नहीं करना, ७ खड़े खड़े आहार लेना, इन सात गुणोंसहित २८ मूल गुण सर्व मुनियोंके होते हैं॥ २५॥

साधर्मी भवि पाठनको, इष्टछतीसी ग्रंथ।
अल्पबुद्धि बुधजन रच्यो, हित मित शिवपुरपंथ॥
इति पंचपरमेष्ठीके १४३ मूलगुणोंका वर्णन समाप्त।

(२) दर्शनपाठ ।

अनादिनिधन महामंत्र ।

गाथा ।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं । णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

मंदिरजीके वेदीगृहमें प्रवेश करते ही "जय जय जय निःसहि, निःसहि निःसहि" इस प्रकार उच्चारण करके उपर्युक्त महामन्त्रका ९ वार पाठ करे । तत्पश्चात्—

चत्तारि मंगलं—अरहंत मंगलं । सिद्ध मंगलं साहू मंगलं । केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥ १ ॥ चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंत लोगुत्तमा । सिद्ध लोगुत्तमा । साहू लोगुत्तमा । केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ॥ २ ॥ चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंत सरणं पव्वज्जामि । सिद्धसरणं पव्वज्जामि । साहूसरणं पव्वज्जामि । केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ॥ ॐ ह्रीं झ्रौं स्वाहा ॥

वर्तमान चौवीस तीर्थंकरोंके नाम ।

श्रीऋषभः १ अजितः २ संभवः ३ अभिनन्दनः ४ सुमतिः ५ पद्मप्रभः ६ सुपार्श्वः ७ चंद्रप्रभः ८ पुष्पदंतः ९ शीतलः १० श्रेयान्सः ११ वासुपूज्यः १२ विमलः १३ अनन्तः १४ धर्मः १५ शांतिः १६ कुन्थुः १७ अरः १८ मल्लिः १९ मुनिसुव्रतः २० नमिः २१ नेमिः २२ पार्श्वनाथः २३ महावीरः २४ इति वर्तमानकालसम्बंधिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमो नमः ।

अद्य मे सफलं जन्म नेत्रे च सफले मम ।
त्वामद्राक्षं यतो देव हेतुमक्षयसम्पदः ॥ १ ॥
अद्य संसारगम्भीरपारावारः सुदुस्तरः ।
सुतरोऽयं क्षणेनैव जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ २ ॥
अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमले कृते ।
स्नातोऽहं धर्मतीर्थेषु जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ३ ॥
अद्य मे सफलं जन्म प्रशस्तं सर्वमङ्गलम् ।
संसारार्णवतीर्णोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ४ ॥
अद्य कर्माष्टकज्वालं विधूतं सकषायकम् ।
दुर्गतेर्विनिवृत्तोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ५ ॥
अद्य सौम्या ग्रहाः सर्वे शुभाश्चैकादशस्थिताः ।
नष्टानि विघ्नजालानि जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ६ ॥
अद्य नष्टो महाबन्धः कर्मणां दुःखदायकः ।
सुखसंगं समापन्नो जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ७ ॥
अद्य कर्माष्टकं नष्टं दुःखोत्पादनकारकम् ।
सुखाम्भोधिनिमग्नोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ८ ॥
अद्य मिथ्यान्धकारस्य हन्ता ज्ञानदिवाकरः ।
उदितो मच्छरीरेऽस्मिन् जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ९ ॥
अद्याहं सुकृती भूतो निर्धूताशेषकल्मषः ।
भुवनत्रयपूज्योऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ १० ॥
चिन्दानन्दैकरूपाय जिनाय परमात्मने ।
परमात्मप्रकाशाय नित्यं सिद्धात्मने नमः ॥ ११ ॥
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम ।

तस्मात्कारुण्य भावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥ १२ ॥
न हि त्राता न हि त्राता न हि त्राता जगत्रये ।
वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविष्यति ॥ १३ ॥
जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने ।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे भवे ॥१४॥
जिनधर्मविनिर्मुक्तं मा भवन् चक्रवर्त्यपि ।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि जिनधर्मानुवासितम् ॥ १५ ॥

इस प्रकार बोलकर साष्टांग नमस्कार करना चाहिये। नमस्कारके पश्चात् पूजनके लिये चांवल चढ़ाना हो तो नीचे लिखा श्लोक तथा मंत्र पढ़कर चढ़ावे ।

अपारसंसारमहासमुद्रप्रोत्तारणे प्राज्यतरीन्सुभक्त्या ।
दीर्घाक्षताङ्गैर्धवलाक्षतौघैर् जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम्॥१॥

ॐ ह्रीं अक्षयपदप्राप्तये देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षतान् निर्वपामि ।

यदि पुष्पोंसे पूजन करना हो तो नीचे लिखा श्लोक और मंत्र पढ़कर चढ़ावे ।

विनीतभव्याब्जविबोधसूर्यान् वर्यान् सुचर्याकथनैकधुर्यान् ।
कुन्दारविन्दप्रमुखप्रसूनैर् जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम्॥२॥

ॐ ह्रीं कामबाणविध्वंसनाय देवशास्त्रगुरुभ्यः पुष्पं निर्वपामि ।

यदि किसीको लोंग, बदाम, एलायची या कोई प्रासुक हरा फल चढ़ाना हो, तो नीचे लिखा श्लोक और मंत्र पढ़कर चढ़ावे ।

क्षुभ्यद्विलुभ्यन्मनसाऽप्यगम्यान् कुवादिवादाऽस्खलितप्रभावान् ।
फलैरलं मोक्षफलाभिसारैर् जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम्॥३॥

ॐ ह्रीं मोक्षफलप्राप्तये देवशास्त्रगुरुभ्यः फलं निर्वपामि ॥

यदि किसीको अर्घ चढ़ाना हो, तो नीचे लिखा श्लोक व मंत्र बोलकर चढ़ाना चाहिये ।

सद्वारिगन्धाक्षतपुष्पजातैर् नैवेद्यदीपामलधूपधूम्रैः ।

फलैर्विचित्रैर्घनपुण्ययोग्यान् जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम्॥४

ॐ ह्रीं अनर्घ्यपदप्राप्तये देवशास्त्रगुरुभ्यो ऽर्घं समर्पयामि ॥४॥

इस प्रकार चार प्रकारके द्रव्योंमेंसे जो द्रव्य हो, उसी द्रव्यका श्लोक व मंत्र पढ़कर वह द्रव्य चढ़ाना चाहिये । तत्पश्चात् नीचे लिखी दोनों स्तुतियां अथवा दोनोंमेंसे कोई एक स्तुति अवश्य पढ़ना चाहिये ।

दौलतराम कृत स्तुति ॥

दोहा ।

सकल—ज्ञेय—ज्ञायक तदपि, निजानंदरसलीन ।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरिरजरहसविहीन ॥

पद्धरिछन्द ।

जय वीतराग विज्ञानपूर । जय मोहतिमिरको हरनसूर ॥
जय ज्ञान अनंतानंतधार । दृगसुख वीरजमंडित अपार ॥ १ ॥
जय परमशांतिमुद्रासमेत । भविजनको निजअनुभूतिहेत ॥
भवि भागनवश जोगे वशाय । तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय ॥२॥
तुम गुणचिंतत निजपरविवेक । प्रघटै, विघटैं आपद अनेक ॥
तुम जगभूषण दूषणवियुक्त । सब महिमायुक्त विकल्पमुक्त ॥३॥
अविरुद्ध शुद्ध चेतनस्वरूप । परमात्मपरमपावन अनूप ॥
शुभ अशुभ विभाव अभाव कीन । स्वाभाविक परिणतिमय अछीन ॥४॥

अष्टादशदोषविमुक्त धीर । सुचतुष्टयमय राजत गभीर ॥
मुनि गणधरादि सेवत महंत । नवकेवललब्धिरमा धरंत ॥ ५ ॥
तुम शासन सेय अमेय जीव । शिव गये जांहिं जै हैं सदीव ॥
भवसागरमें दुख छारवारि । तारनको और न आप टारि ॥ ६ ॥
यह लखि निजदुखगदहरणकाज । तुमही निमित्तकारण इलाज ॥
जानें, तातैं मैं शरण आय । उचरों निज दुख जो चिर लहाय ॥७॥
मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप । अपनाये विधिफल पुण्यपाप ॥
निजको परको करता पिछान । परमें अनिष्टता इष्ट ठान ॥८॥
आकुलित भयो अज्ञानधारि । ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि ॥
तनपरणतिमें आपो चितारि । कवहूं न अनुभयो स्वपदसार ॥९॥
तुमको विन जाने जो कलेश । पाये सो तुम जानत जिनेश ॥
पशु नारक नर सुर गतिमँझार । भव धर धर मरयो अनंतवार ॥१०॥
अब काललब्धिबलतैं दयाल । तुम दर्शन पाय भयो खुशाल ॥
मन शांत भयो मिट सकलद्वंद । चाख्यो स्वातमरस दुखनिकंद ॥११॥
तातैं अब ऐसी करहु नाथ । विछुरै न कभी तुव चरणसाथ ॥
तुम गुणगणको नहिं छेव देव । जगतारनको तुअ विरद एव ॥१२॥
आतमके अहित विषय कषाय । इनमें मेरी परिणति न जाय ॥
मैं रहूं आपमें आप लीन । सो करो होहुं ज्यों निजाधीन ॥१३॥
मेरे न चाह कुछ और ईश । रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश ॥
मुझ कारजके कारन सु आप । शिव करहु हरहु मम मोहताप ॥१४॥
शशि शांतकरन तपहरनहेत । स्वयमेव तथा तुम कुशल देत ॥
पीवत पियूष ज्यों रोग जायं । त्यों तुम अनुभवतैं भव नसायं ॥१५॥

त्रिभुवन तिहुंकालमँझार कोय । नहिं तुम विन निजसुखदाय होय ॥
मो उर यह निश्चय भयो आज । दुखजलधि उतारन तुम जिहाज ॥१६

दोहा ।

तुमगुणगणमणि गणपती, गणत न पावहिं पार ।
'दौल' स्वल्पमति किम कहै, नमूं त्रियोग सँभार ॥

इति दौलतस्तुति ।

अथ बुधजनकृत स्तुति ॥

प्रभु पतितपावन मैं अपावन, चरन आयो शरनजी ।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरनजी ॥
तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविधप्रकारजी ।
या बुद्धिसेती निज न जाण्या, भ्रमगिण्या हितकारजी ॥ १ ॥
भवविकटवनमें करम वैरी, ज्ञानधन मेरो हरचो ।
तब इष्ट भुल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्टगति धरती फिरचो ॥
धन घड़ी यो धन दिवस योही, धन जनम मेरो भयो ।
अब भाग मेरो उदय आयो, दरश प्रभूको लख लयो ॥ २ ॥
छवि वीतरागी नगनमुद्रा, दृष्टि नासापै धरैं ।
वसुप्रातिहार्य अनन्तगुणयुत, कोटिरविछविको हरैं ॥
मिट गयो तिमर मिथ्यात मेरो, उदय रवि आतम भयो ।
मो उर हरख ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि लयो ॥ ३ ॥
मैं हाथ जोड़ नवाय मस्तक, वीनऊं तुव चरनजी ।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनो तारन तरनजी ॥

नाचूं नहीं सुरवास पुनि, नरराज परिजन साथजी।
'बुध' जाचहूं तुव भक्ति भवभव, दीजिये शिवनाथजी॥ ४॥

इति बुधजनकृत स्तुति।

इस प्रकार एक या दोनों स्तुति पढ़कर पुनः साष्टांग नमस्कार करना चाहिये। तपश्चात् नीचे लिखा श्लोक पढ़कर गंधोदक मस्तकपर तथा हृदयादि उत्तम अंगोंमें भी लगाना चाहिये।

निर्मलं निर्मलीकरणं पवित्रं पापनाशनम्।
जिनगन्धोदकं वन्दे अष्टकर्मविनाशकम्॥ १॥

यदि आशिका लेनी हो, तो यह दोहा पढकर लेना चाहिये।

दोहा।

श्रीजिनवरकी आशिका, लीजे शीस चढाय।
भवभवके पातक कटें, दुःख दूर हो जाय॥ १॥

तत्पश्चात् नीचें लिखे दो अथवा एक कवित्त पढ़कर शास्त्रजीको (जिनवाणीको) साष्टांग नमस्कार करके शास्त्रजी सुनना चाहिये। अथवा थोड़ी बहुत किसी भी शास्त्रकी स्वाध्याय करना चाहिये।

कवित्त।

वीरहिमाचलतैं निकसी, गुरुगौतमके मुखं कुंड ढरी है।
मोहमहाचल भेद चली, जगकी जड़तातप दूर करी है॥
ज्ञानपयोनिधिमाहिं रली, बहुभंग तरंगनिसौं उछरी है।
ता शुचि शारद गंगनदीप्रति, मैं अँजुलीकर शीस धरी है॥१॥
या जगमंदिरमें अनिवार-अज्ञान अंधेर छयो अति भारी।
श्रीजिनकी धुनि दीपशिखासम, जो नहिं होत प्रकाशनहारी॥

तो किस भांति पदारथपांति, वहां लहते रहते अविचारी।
या विधि संत कहैं धनि हैं धनि, हैं जिनवैन बड़े उपकारी ॥२॥

रात्रिको भी इसी प्रकार दर्शन करके तत्पश्चात् दीप धूपसे नीचे लिखी अथवा जिस पर रुचि हो वह आरती करना चाहिये।

पंचपरमेष्ठीकी आरती ॥

चाल खड़ी।

मनवचतनकर शुद्ध पंचपद, पूजो भविजन सुखदाई।
सबजन मिलकर दीप धूप ले, करहु आरती गुणगाई ॥टेक॥
प्रथमहिं श्री अरहंत परमगुरु, चौतिस अतिशय सहित वसैं॥
प्रातिहार्य वसु अतुल चतुष्टय, सहित समवसृत मांहिं लसैं।
क्षुधा[१] तृषा[२] भय[३] जन्म[४] जरा[५] मृति[६], रोग[७] शोक[८] रति[९] अरति[१०] महा।
विस्मय[११] खेद[१२] स्वेद[१३] मद[१४] निद्रा[१५], राग[१६] द्वेष[१७] मिल मोह[१८] दहा॥
इन अष्टादश दोषरहित नित, इन्द्रादिक पूजत आई।
सबजन मिल० ॥ १ ॥

दूजे सिद्ध सदा सुखदाता, सिद्धशिलापर राजत हैं।
सम्यक्दर्शन ज्ञान वीर्य अरु, सूक्ष्मपणाका छाजत हैं॥
अगुरु लघू अवगाहनशक्ति धर, वाधाविन अशरीरा हैं।
तिनका सुमरण नित्य कियेतें, शीघ्र नशत भवपीरा हैं॥
या कारण नित चित्तशुद्ध कर, भजहु सिद्ध शिवके राई।
सबजन मिल० ॥ २ ॥

तीजे श्री आचार्य्य परमगुरु, छत्तिस गुणके धारी हैं।
दर्शन ज्ञान चरण तप वीरज: पंचाचार प्रचारी हैं॥

द्वादशतप दशधर्म गुप्तित्रय, षट् आवश्यक नित पालें।
सब मुनिजनको प्रायश्चित दे, मुनिव्रतके दूषण टालें॥
ऐसे श्री आचार्य्य गुरुनकी, पूजा करिये चित लाई।
सबजन मिल०॥ ३॥

चौथे श्रीउवझायचरणपंकजरज, सुखदा भविजनको।
ग्यारह अंग सु पूर्वचतुर्दश, पढ़ैं पढावें मुनिगनको॥
मुनिके सब आचरण आचरें, द्वादश तपके धारी हैं।
स्यादवाद सुखकारी विद्या, सबजगमें विस्तारी हैं॥
ऐसे श्रीउवझाय गुरुनके, चरणकमल पूजहु भाई।
सबजन मिल०॥ ४॥

पंचमि आरति सर्वसाधुकी, आठवीस गुण मूल धरें।
पंचमहाव्रत पंचसमितिधर, इन्द्रिय पांचों दमन करें॥
षट्आवश्यक केशलोंच, इक बार खड़े भोजन करते।
दाँतण स्नान त्याग भू सोवत, यथाजात मुद्रा धरतें॥
या विधि "पन्नालाल" पंचपद, पूजत भवदुख नश जाई।
सबजन मिलकर०॥ ५॥

इस प्रकार आरती वोलकर नीचे लिखा श्लोक दोहा और मंत्र पढ़कर आरतीको मस्तक चढ़ावे।

ध्वस्तोद्यमान्धीकृतविश्वविश्वमोहान्धकारप्रतिघातदीपान्।
दीपैः कनत्काञ्चनभाजनस्थैर् जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम्॥१॥

दोहा।

स्वपरप्रकाशनज्योति अति, दीपक तमकरहीन।
जासूं पूजूं परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ १॥

(२) आलोचना पाठ ।

दोहा ।

वंदों पांचों परम गुरु, चौवीसों जिनराज ।
कहुं शुद्ध आलोचना, शुद्ध करनेके काज ॥ १ ॥

सखी छन्द (१४ मात्रा)

सुनिये जिन अरज हमारी । हम दोष किये अति भारी ॥
तिनकी अब निर्वृतिकाजा । तुम शरन लही जिनराजा ॥ २ ॥
इक वे ते चउ इंद्री वा । मनरहित सहित जे जीवा ॥
तिनकी नहिं करुना धारी । निरदइ है घात विचारी ॥ ३ ॥
समरम्भ समारम्भ आरम्भ । मनवचतन कीने प्रारम्भ ॥
कृत कारित मोदन करिकैं । क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं ॥ ४ ॥
शत आठ जु इम भेदनतैं । अघ कीने परछेदनतैं ॥
तिनकी कहुं कोलौं कहानी । तुम जानत केवलज्ञानी ॥ ५ ॥
विपरीत एकांत विनयके । संशय अज्ञान कुनयके ॥
वश होय घोर अघ कीने । वचतैं नहिं जात कहीने ॥ ६ ॥
कुगुरुनकी सेवा कीनी । केवल अदयाकरि भीनी ॥
या विध मिथ्यात भ्रमायो । चहुंगतिमधि दोष उपायो ॥ ७ ॥
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी । परवनितासौं दृगजोरी ॥
आरम्भपरिग्रहभीनो । पुन पाप जु यांविधि कीनो ॥ ८ ॥
सपरस रसना घ्राननको । चख कान विषय सेवनको ॥

बहु करम किये मनमानी । कछु न्याय अन्याय न जानी ॥ ९ ॥
फल पंच उदंबर खाये । मधु मांस मद्य चित चाहे ॥
नहिं अष्ट मूलगुणधारी । विसन जु सेये दुखकारी ॥ १० ॥
दुइ बीस अभख जिन गाये । सो भी निशदिन भुंजाये ॥
कछु भेदाभेद न पायो । ज्यों त्यों करी उदर भरायो ॥ ११ ॥
अनंतान जु बंधी जानो । प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो ॥
संज्वलन चौकरी गुनिये । सब भेद जु षोडश मुनिये ॥ १२ ॥
परिहास अरति रति शोग । भय ग्लानि तिवेद संजोग ॥
पनवीस जु भेद भये इम । इनके वश पाप किये हम ॥ १३ ॥
निद्रावश शयन कराई । सुपमनेमधि दोष लगाई ॥
फिर जागि विषय वन धायो । नाना विध विषफल खायो ॥ १४ ॥
किये हार निहार विहारा । इनमें नहिं जतन विचारा ॥
विन देखी धरी उठाई । विन शोधी भोजन खाई ॥ १५ ॥
तब ही परमाद सतायो । बहुविध विकलप उपजायो ॥
कछु सुधि बुधि नाहिं रही है । मिथ्यामति छाय गई है ॥ १६ ॥
मरजादा तुम ढिग लीनी । ताहूमैं दोष जु कीनी ॥
भिन भिन अब कैसें कहिये । तुम ज्ञानविषै सब पइये ॥ १७ ॥
हा हा मैं दुठ अपराधी । त्रसजीवनराशि विराधी ॥
थावरकी जतन न कीनी । उरमें करूणा नहिं लीनी ॥ १८ ॥
पृथिवी बहु खोद कराई । महलादिक जागां चिनाई ।
पुन विन गाल्यो जल ढोल्यो । पंखातैं पवन विलोल्यो ॥ १९ ॥

हा हा मैं अदयाचारी। बहु हरितकाय जु विदारी॥
या मधि जीवनिके खंदा। हम खाये धरि आनंदा॥ २०॥
हा मैं परमादवसाई। विन देखे अगनि जलाई॥
तामधि जे जीव जु आये। ते हू परलोक सिधाये॥२१॥
बीधो अन राति पिसायो। ईंधन विन सोध्यो जलायो॥
झाडू ले जागां बुहारी। चिंटी आदिक जीव विदारी॥२२॥
जल छानि जीवानी कीनी। सोहू पुनि डारि जु दीनी॥
नहिं जलथानक पहुंचाई। किरिया विन पाप उपाई॥२३॥
जल मलमोरीनमें गिरायो। कृमि कुल बहु घात करायो॥
नदियनि बिच चीर धुवाये। कोसनके जीव मराये॥२४॥
अन्नादिक शोध कराई। तामैं जु जीव निसराई॥
तिनका नहिं जतन कराया। गरियालै धूप डराया॥२५॥
पुनि द्रव्य कमावन काज। बहु आरँभ हिंसा साज॥
किये तिसनावश भारी। करुना नहिं रंच विचारी॥२६॥
इत्यादिक पाप अनंता। हम कीने श्रीभगवंता॥
संतति चिरकाल उपाई। वानीतैं कहिय न जाई॥२७॥
ताको जु उदय जब आयो। नानाविध मोहि सतायो॥
फल भुंजत जिय दुख पावै। वचतैं कैसैं करि गावै॥२८॥
तुम जानत केवल ज्ञानी। दुख दूर करो शिवथानी॥
हम तौ तुम शरन लही है। जिन तारन विरद सही है॥२९॥
जो गांवपति इक होवै। सो भी दुखिया दुख खोवै॥

तुम तीन भुवनके स्वामी । दुख मेटो अंतरजामी ॥३०॥
द्रौपदिको चीर बढ़ायो । सीताप्रति कमल रचायो ॥
अंजनसे किये अकामी । दुख मेटो अंतरजामी ॥३१॥
मेरे अवगुन न चितारो । प्रभु अपनो विरद निहारो ॥
सब दोष रहित करि स्वामी । दुख मेटहु अंतरजामी ॥३२॥
इंद्रादिक पदवी न चाहूं । विषयनिमैं नाहिं लुभाऊं ॥
रागादिक दोष हरीजे । परमातम निजपद दिजे ॥३३॥

दोहा ।

दोषरहित जिनदेवजी, निजपद दीज्यो मोहि ।
सब जीवनके सुख बढ़े, आनँद मंगल होय ॥३४॥
अनुभव माणिक पारखी, जौहरी आप जिनंद ।
येही वर मोहि दीजिये, चरन सरन आनंद ॥३५॥

इति आलोचना पाठ समाप्त ।

स्वर्गीय कविवर पं० रूपचंद्रजी पांडेकृत-

[४] पंचकल्याणक पाठ ।

श्री गर्भकल्याणक ॥

पणविवि पंच परमगुरु, गुरु जिनशासनो ।
सकलसिद्धिदातार सु, विघनविनासनो ॥
शारद अरु गुरु गौतम, सुमतिप्रकासनो ।
मंगलकरहीं चउ-संघ, पापपणासनो ॥
पापै पणासन गुणहिं गरुवा, दोष अष्टादश रहे ।
धरि ध्यान कर्म विनाशि केवल-ज्ञान अविचल जिन लहे ।
प्रभु पंचकल्याणक-विराजित, सकल सुर नर ध्यावहीं ।
त्रैलोक्यनाथ सु देव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ १ ॥

जाके गरभकल्याणक, धनपति आइयो ।
अवधिज्ञान-परवान, सु इंद्र पठाइयो ॥
रचि नव बारह योजन, नयरि सुहावनी ।
कनकरयणमणिमंडित, मंदिर अति वनी ॥
अति वनी पौरि पगारि परिखा, सुवन उपवन सोहिए ।
नर नारि सुंदर चतुरभेख सु, देख जनमन मोहिए ॥
तहां जनकगृह छह मास प्रथमहिं, रतनधारा वरषियो ।
पुनि रुचिकवासिनि जननि-सेवा, करहिं सब विधि हरषियो ॥ २ ॥

सुरकुंजरसम कुंजर धवल धुरंधरो ।
केहरि केशरशोभित, नखशिखसुंदरो ॥

कमलाकलशन्हवन, दोय दाम सुहावनी।
रवि शशि मंडल मधुर, मीन जुग पावनी॥
पावनी कनक घट युगम पूरण, कमलकलित सरोवरो।
कल्लोलमालाकुलित सागर, सिंहपीठ मनोहरो॥
रमणीक अमरविमान फणिपती,-भुवन भुवि छविछानए।
रुचि रतनराशि दिपंत दहन सु, तेजपुंज विराजए॥ ३ ॥
ये सखि सोलह सुपने, सूती सयनमें।
देखे माय मनोहर, पच्छिम-रयनमें॥
उठि प्रभात पिय पूछियो, अवधि प्रकासियो।
त्रिभुवनपति सुत होसी, फल तिहिं भासियो॥
भासियो फल तिहिं चिंति दंपति, परम आनंदित भए।
छहमासपरि नवमास पुनि तहँ, रयन दिन सुखसूं गए॥
गर्भावतार महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
जन 'रूपचंद' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं॥४॥

श्री जन्म कल्याणक ॥

मतिश्रुतअवधिविराजित, जिन जब जनमियो।
तिहूँलोक भयो छोभित, सुरगण भरमियो॥
कल्पवासिघर घंट, अनाहद बज्जियो।
जोतिषघर हरिनाद, सहज गल गज्जियो॥
गज्जियो सहज हि संख भावन,-भुवन सबद सुहावने।
विंतरनिलय पटु पटहि वज्जिय, कहत महिमा क्यों बने॥

कंपित सुरासन अव धवल जिन,–जनम निहचै जानियो ।
धनराज तब गजराज माया,–मयी निरमय आनियो ॥ ५ ॥
योजन लाख गयंद, वदन–सौ निरमए ।
वदन वदन वसु दंत, दंत सर संठए ॥
सर सर सौ–पणवीस कमलिनी छाजहीं ।
कमलिनि कमलिनि कमल, पचीस विराजहीं ॥
राजहीं कमलिनि कमल अठ तर,–सौ मनोहर दल बने ।
दल दलहिं अपछर नटहिं नवरस, हावभाव सुहावने ॥
मणि कनककंकण वर विचित्र, सु अमरमंडप सोहये ॥
घन घंट चँवर धुजा पताका, देखि त्रिभुवन मोहये ॥ ६ ॥
तहिं करी हरि चढ़ि आयउ, सुरपरिवारियो ।
पुरहिं प्रदच्छना देत सु, जिन जयकारियो ॥
गुप्त जाय जिन–जननिहिं, सुखनिद्रा रची ।
मायामयी शिशु राखि तौ, जिन आन्यो सची ।
आन्यो सची जिनरूप निरखत, नयन तिपति न हूजिये ।
तव परमहरपितहृदय हरिने, सहस लोचन पूजिये ॥
फुनि करि प्रणाम जु प्रथम इंद्र, उछंग धरि प्रभु लीनऊ ।
ईशानइंद्र सु चंद्रछवि शिर, छत्र प्रभुके दीनऊ ॥ ७ ॥
सनतकुमार महेंद्र, चमर दुहि ढारहीं ।
शेष शक्र जयकार, सवद उचारहीं ॥
उच्छवसहित चतुर्विधि, सुर हरपित भए ।
योजन सहस निन्याणवे, गगन उलंघिए ॥
लंघि गये सुरगिरि जहाँ पांडुक,–वन विचित्र विराजही ।

पांडुकशिला तहाँ अर्द्धचंद्रसमान, मणि छवि छाजहि ॥
योजन पचास विशाल दुगुणायाम, वसु ऊंची गणी।
वर अष्ट मंगल कनक कलशन, सिंहपीठ सुहावनी ॥ ८ ॥

रचि मणिमंडप शोभित मध्य सिंहासनो।
थाप्यौ पूरब-मुख तहाँ, प्रभु कमलासनो ॥
बाजहिं ताल मृदंग, वेणु वीणा घने।
दुंदुभि प्रमुख मधुर धुनि, और जु बाजने ॥
बाजने बाजहिं सचीं सब मिलि, धवल मंगल गावहीं।
कर करहिं नृत्य सुरांगना सब, देव कौतुक धावहीं ॥
भरि छीरसागर-जल जु हाथहिं, हाथ सुर गिरि ल्यावहीं।
सौधर्म अरु ऐशानइंद्र सु, कलश ले प्रभु न्हावहीं ॥ ९ ॥

वदन-उदर-अवगाह, कलशगत जानिये।
एक चार वसु योजन, मान प्रमानिये ॥
सहस-अठोतर कलशा, प्रभुके सिर ढरै।
फुनि श्रृंगारप्रमुख आ,-चार सबै करै ॥
करि प्रगट प्रभु महिमामहोच्छव, आनि फुनि मातहिं दयो।
धनपतिहिं सेवा राखि सुरपति, आप सुरलोकहिं गयो ॥
जनमाभिषेक महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
जन 'रूपचंद्र' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ १० ॥

श्री तप कल्याणक।

श्रमजलरहित शरीर, सदा सब मलरहिउ।
छीर-वरन वर रुधिर, प्रथमआकृति लहिउ ॥

प्रथम सारसंहनन, सुरूप विराजहीं ।
सहज-सुगंध सुलच्छन, मंडत छाजहीं ॥
छाजहिं अतुलबल परम प्रिय हित, मधुर वचन सुहावने ।
दश सहज अतिशय सुभग मूरति, बाललील कहावने ॥
आबाल काल त्रिलोकपति मन, रुचित उचित जु नित नये ।
अमरोपुनीत पुनीत अनुपम, सकल भोग विभोगये ॥ ११ ॥
भवतन-भोग-विरत्त, कदाचित चित्तए ।
धन योवन पिय पुत्त, कलत्त अनित्त ए ॥
कोई न शरन मरनदिन, दुख चहुं गति भर्यो ।
सुख दुख एकहि भोगत, जिय विधिवश पर्यो ॥
पर्यो विधि वश आन चेतन, आन जड़ जु कलेवरो ।
तन अशुचिपरतें होय आस्रव, परिहरै तौ संवरो ॥
निर्जरा तपबल होय समकित,—विन सदा त्रिभुवन भम्यो ।
दुर्लभ विवेक विना न कबहूं, परम धरमविषै रम्यो ॥ १२ ॥
ये प्रभु बारह पावन, भावन भाइया ।
लौकांतिक वर देव, नियोगी आइया ॥
कुसुमांजलि दे चरन, कमल शिरनाइये ।
स्वयंबुद्ध प्रभु थुति करि, तिन समुझाइये ॥
समुझाय प्रभु ते गये निजपद, फुनि महोच्छव हरि कियो ।
रुचिरुचिर चित्त विचित्र शिविका, कर सुनंदन वन लियो ॥
तहँ पंचमूठी लोच कीनों, प्रथम सिद्धनि नुति करी ।
मंडिय महाव्रत पंच दुद्धर, सकल परिग्रह परिहरि ॥ १३ ॥
मणिमयभाजन केश, परिट्ठिय सुरपती ।

छीर-समुद्र-जल खिपिकरि, गयो अमरावती ॥
तप संजमबल प्रभुको, मनपरजय भयो ।
मौनसहित तप करत, काल कछुं तहँ गयो ॥
गयो कछु तहँ काल तपबल, रिद्धि बसु विधि सिद्धिया ।
जसु धर्मध्यानबलेन खयगय, सप्त प्रकृति प्रसिद्धिया ॥
खिपि सातवें गुण जतन विन तहँ, तीन प्रकृति जु बुधि चढे ।
करि करण तीन प्रथम शुकलबल, खिपकश्रेणी प्रभु चढे ॥१४॥
प्रकृति छतीस नवें गुण,-थान विनासिया ।
दशमें सूच्छमलोभ,-प्रकृति तहं नासिया ।
शुकल ध्यान पद पूजो, फुनि प्रभु पुरियो, ।
बारहमें-गुण सोरह, प्रकृति जु चूरियो ॥
चूरियो त्रेसठी प्रकृति इहविधि, घातिया कर्महतणी ।
तप कियो ध्यानप्रयंत बारह, विधि त्रिलोकशिरोमणी ॥
निःक्रमणकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
जन 'रूपचंद्र' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥१५॥
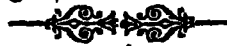
श्रीज्ञान कल्याणक।

तेहरमें गुण-थान, सयोगि जिनेसुरो ।
अनंतचतुष्टयमंडित, भयो परमेसुरो ॥
समवसरन तब धनपति, बहुविधि निरमयो ।
आगम जुगति प्रमाण, गगनतल परिठयो ॥
परिठयो चित्रविचित्र मणिमय, सभामंडप सोहये ।
तिहिं मध्य बारह बने कोठे, बनक सुरनर मोहये ॥

मुनि कल्पवासिनि अरजिका फुनि, ज्योति-भौम-भुवन-तिया।
फुनि भवन व्यंतर नभग सुर नर, पशुनि कोठे बैठिया ॥१६॥

मध्यप्रदेश तीन, मणिपीठ तहां बने।
गंधकुटी सिंहासन, कमल सुहावने॥
तीन छत्र सिर शोभित, त्रिभुवन मोहए।
अंतरीक्ष कमलासन, प्रभु तन सोहए॥

सोहए चौसठि चमर ढरत, अशोकतरु तल छाजए।
फुनि दिव्यधुनि प्रतिशब्द जुत तहँ, देवदुंदुभि बाजए॥
सुरपुहुपवृष्टि सुप्रमामंडल, कोटि रवि छवि लाजए।
इम अष्ट अनुपम प्रातिहारज, वर विभूति विराजए ॥१७॥

दुइसै योजन मान, सुभिच्छ चहूं दिशी।
गगन गमन अरु प्राणि,-वध नहिं अहनिशी॥
निरुपसर्ग निराहार, सदा जगदीसए।
आनन चार चहूंदिशि, शोभित दीसए॥

दीसे अशेष विद्या, विभव वर ईसुरपनो।
छायाविवर्जित शुद्ध फटिक, समान तन प्रभुको बनो॥
नहिं नयन पल्क पतन कदाचित, केश नख सम छाजहीं।
ये घातियाछयजनित अतिशय, दश विचित्र विराजहीं ॥१८॥

सकल अरथमय मागधि, भाषा जानिये।
सकल जीवगत मैत्री,-भाव वखानिये॥
सकल ऋतुज फलफूल, वनस्पति मन हरै।
दर्पणसम मनि अवनि, पवन गति अनुसरै॥

अनुसरै परमानंद सबको, नारि नर जे सेवता ।
योजन प्रमाण धरा सुमार्जेहिं, जहां मारुत देवंता ॥
फुनि करहिं मेघकुमार गंधो–दक सुवृष्टि सुहावनी ।
पदकमलतर सुर खिपहिं कमल सु, धरणि शशिशोभा बनी ॥

अमल गगन तल अरु दिशि तहँ अनुहारहीं ।
चतुरनिकाय देवगण, जय जयकारहीं ॥
धर्मचक्र चले आगे, रवि जहँ लाजहीं ।
फुनि भृंगार–प्रमुख वसु, मंगल राजहीं ॥

राजहीं चौदह चारु अतिशय, देवरचित सुहावने ।
जिनराज केवलज्ञानमहिमा, अवर कहत कहा बने ॥
तव इंद्र आनि कियौ महोच्छव, सभा शोभित अति बनी ॥
धर्मोपदेश दियो तहां, उच्छरिय वानी जिनतनी ॥ २० ॥

क्षुधा तृषा अरु राग, द्वेष असुहावने ।
जनम जरा अरु मरण, त्रिदोष भयावने ॥
रोग शोक भय विस्मय, अरु निद्रा घणी ।
खेद स्वेद मद मोह, अरति चिंता गणी ॥

गणीयें अठारह दोष तिनकरि, रहित देव निरंजनो ।
नव परमकेवललब्धिमंडित, शिवरमणी–मनरंजनो ॥
श्रीज्ञानकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
जन 'रूपचंद्र' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ २१ ॥
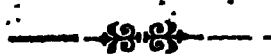
श्री निर्वाण कल्याणक ।

केवलदृष्टि चराचर, देख्यों जारिसो ।
भविजनप्रति उपदेश्यो, जिनवर तारिसो ॥
भवभयभीत महाजन, शरणै आइया ।
रत्नत्रयलच्छन शिवपंथनि लाइया ॥
लाइया पंथ जु भव्य फुनि, प्रभु. तृतिय सुकल जू पूरियो ।
तजि तेरहौं गुणथान योग, अयोगपथपग धारियो ॥
फुनि चौदहैं सुकलबल, बहत्तर तेरह हती ।
इमि घाति वसुविधि कर्म पहुंच्यो, समयमें पंचगति ॥ १२ ॥

लोकशिखर तनुवात,- बलयमहं संठियो ।
धर्मद्रव्यबिन गमन न, जिहिं आगे कियो ॥
मयनरहित मूषोदर, अंबर जारिसो ।
किमपि हीन निजतनुते, भयौ प्रभु तारिसो ॥
तारिसो पर्जय नित्य अविचल, अर्थपर्जय क्षणक्षयी ।
निश्चयनयेन अनंतगुण विवहार, नय वसु गुणमयी ॥
वस्तु स्वभाव विभावविरहित, शुद्ध परणति परिणयो ।
चिद्रूप परमानंदमंदिर, सिद्ध परमातम भयो ॥ २३ ॥

तनुपरमाणू दामिनिपर, सब खिर गये ।
रहे शेष नखकेशरूप, जे परिणये ॥
तब हरिप्रमुख चतुरविधि, सुरगण शुभ सच्यो ।
मायामइ नखकेशरहित, जिनतनु रच्यो ॥
रचि अगर चंदनप्रमुख परिमल, द्रव्य जिन जयकारियो ।

पदपतित अगनिकुमारमुकुटानल, सुविधि संस्कारियो ॥
निर्वाणकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
जन 'रूपचंद्र' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ २४ ॥

मंगल गीत ।

मैं मतिहीन भगतिवश, भावन भाइया ।
मगलगीतप्रबंध सु, जिनगुण गाइया ॥
जो नर सुनहिं बखानहिं, सुर धरि गावहीं ।
मनवांछित फल सो नर, निहचै पावहीं ॥
पावहीं अट्ठौ सिद्धि नवनिधि, मनप्रतीति जु आनहीं ।
भ्रमभाव छूटैं सकल मनके, जिनस्वरूप सो जानहीं ॥
पुनि हरहिं पातक टरहिं विघन, सु होय मंगल नित नये ।
भणि रूपचन्द्र त्रिलोकपति जिन-देव चउसंघहिं जये ॥२५॥

(५) निर्वाणकाण्ड (गाथा)

अट्ठावयम्मि उसहो चंपाए वासुपुज्जजिणणाहो। उज्जंते णेमि-जिणो पावाए णिव्वुदो महावीरो ॥१॥ वीसं तु जिणवरिंदा अमरा-सुरवंदिदा धुदकिलेसा। सम्मेदे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥२॥ वरदत्तो य वरंगो सायरदत्तो य तारवरणयरे। आहुट्ठयकोडीओ णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥३॥ णेमिसामि पज्जुण्णो संबुकुमारो तहेव अणिरुद्धो। बाहत्तरिकोडीओ उज्जंते सत्तसया सिद्धा ॥४॥ रामसुवा बेण्णि जणा लाडणरिंदाण पंचकोडीओ। पावागिरिवरसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥५॥ पंडुसुआ तिण्णिजणा दविडणरिंदाण अट्ठकोडीओ। सेत्तुंजयगिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥६॥ संते जे बलभद्दा जदुवणरिंदाण अट्ठकोडीओ। गजपंथे गिरिसिहरे णिव्वा-णगया णमो तेसिं ॥७॥ रामहणू सुग्गीओ गवयगवाक्खो य णील-महणीओ। णवणवदीकोडीओ तुंगीगिरिणिव्वुदे वंदे ॥८॥ णंगाणंगकु-मारा कोडीपंचद्धमुणिवरा सहिया। सुवणागिरिवरसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥९॥ दहमुहरायस्स सुवा कोडीपंचद्धमुणिवरा सहिया। रेवाउहयतडग्गे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१०॥ रेवाणइए तीरे पच्छि-मभायम्मि सिद्धवरकूडे। दो चक्की दह कप्पे आहुट्ठयकोडीणिव्वुदे वंदे ॥११॥ बडवाणीवरणयरे दक्खिणभायम्मि चूलगिरिसिहरे। इंदजीदकुंभयणो णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१२॥ पावागिरिवरसिहरे सुवण्णभद्दाइमुणिवरा चउरो। चलणाणईतडग्गे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१३॥ फलहोडीवरगामे पच्छिमभायम्मि दोणगिरिसिहरे।

गुरुदत्ताइमुणिंदा णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१४॥ णायकुमारमुणिंदो वाल महावालि चेव अज्झेया । अट्ठावयगिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१५॥ अचलपुरवरणयरे ईसाणे भाए मेढगिरिसिहरे । आहुट्ठयकोडीओ णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१६॥ वंसत्थलवरणियरे पच्छिमभायम्मि कुंथुगिरिसिहरे । कुलदेसभूसणमुणी णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१७॥ जसरहरायरस सुआ पंचसयाइं कलिंगदेसम्मि । कोडिसिलाकोडिमुणि णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१८॥ पासरस समवसरणे सहिया वरदत्तमुणि पंच । रिसिंदे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥ १९ ॥
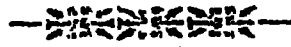
अथ अइसयखेत्तकंडं ।

[अतिशयक्षेत्रकाण्डम्]

पासं तह अहिणंदण णायद्दहि मंगलाउरे वंदे ।
अस्सारम्भे पट्टणि मुणिसुव्वओ तहेव वंदामि ॥ १ ॥
बाहूवलि तह वंदमि पोयणपुरहत्थिणापुरं वंदे ।
संती कुंथुव अरिहो वाणारसिए सुपासपासं च ॥ २ ॥
महुराए अहिछित्ते वीरं पासं तहेव वंदामि ।
जंवुमुणिंदो वंदे णिव्वुइपत्तोवि जंवुवणगहणे ॥ ३ ॥
पंचकल्लाणठाणइं जाणवि संजादमच्चलोयम्मि ।
मणवयणकायसुद्धी सव्वं सिरसा णमंस्सामि ॥ ४ ॥
अग्गलदेवं वंदमि वरणयरे णिवडकुंडली वंदे ।
पासं सिवपुरी वंदमि होलागिरिसंखदेवम्मि ॥ ५ ॥

गोमटदेवं वंदमि पंचसयं धणुहदेहउच्चत्तं ।
देवा कुणंति वुट्ठी केसरिकुसुमाण तस्स उवरिम्मि ॥ ६ ॥
णिव्वाणठाण जाणिवि अइसयठाणाणि अइसए सहिया ।
संजादमिच्चलोए सव्वें सिरसा णमंस्सामि ॥ ७ ॥
जो जण पढइ तियालं णिव्वुइकंडंपि भावसुद्धीए ।
भुंजदि णरसुरसुक्खं पच्छा सो लहइ णिव्वाणं ॥ ८ ॥
इति अइसइक्खित्तकंडं ।

निर्वाणकांड (भाषा) ।

(कविवर भैया भगवतीदासजीरचित)

दोहा ।

वीतराग वंदौं सदा, भावसहित सिरनाय ।
कहूं कांड निर्वाणकी, भाषा सुगम बनाय ॥ १ ॥

चौपाई १५ मात्रा ।

अष्टापदआदीसुरस्वामि । वासुपूज्य चंपापुरि नामि । नेमिनाथस्वामि गिरनार । वंदौं भावभगति उरधार ॥ २ ॥ चरम तीर्थंकर चरम शरीर । पावापुरि स्वामी महावीर ॥ शिखरसमेद जिनेसुर वीस । भावसहित वंदौं जगदीस ॥ ३ ॥ वरदत्तराय रुइंद मुनिंद सायरदत्त आदि गुणवृंद ॥ नगरतारवर मुनि उठकोडि । वंदौं भावसहित करजोडी ॥ ४ ॥ श्रीगिरनारशिखर विख्यात ॥ कोटि बहत्तर अरु सौ सात ॥ संबु प्रदुम्न कुमर द्वै भाय । अनिरुधआदि

नमूं तसु पाय ॥५॥ रामचंद्रके सुत द्वै वीर । लाडनरिंद आदि गुण-धीर ॥ पांच कोड़ि मुनि मुक्तिमझार । पावागिरि वंदौं निरधार ॥६॥ पांडव तीन द्रविड राजान । आठकोड़ि मुनि मुकति पयान ॥ श्रीशत्रुं-जयगिरिके सीस । भावसहित वंदौं निश दीस ॥७॥ जे बलिभद्र मुकतिमैं गये । आठकोड़ि मुनि औरहिं भये ॥ श्रीगजपंथशिखर सुविशाल । तीनके चरण नमूं तिहु काल ॥८॥ राम हनू सुग्रीव सुडील । गवगवाख्य नील महानील ॥ कोड़ि निन्याणवैं मुक्तिपयान । तुंगीगिरी वंदौं धरि ध्यान ॥९॥ नंग अनंग कुमार सुजान । पंचकोड़ि अरु अर्धप्रमान ॥ मुक्ति गये सिहुनागिरसीस । ते वंदौं त्रिभुवनपति ईस ॥१०॥ रावणके सुत आदिं कुमार । मुक्त गये रेवातट सार ॥ कोड़ि पंच अरु लाख पचास । ते वंदौं धरी परम हुलास ॥११॥ रेवानदी सिद्धवरकूट । पश्चिमदिशा देह जहँ छूट ॥ द्वै चक्री दश कामकुमार । ऊठकोड़ि वंदौं भवपार ॥१२॥ बड़वाणी वडनयर सुचंग दक्षिण दिश गिरिचूल उतंग ॥ इंद्रजीत अरु कुंभ जु कर्ण । ते वंदौं भवसायरतर्ण ॥१३॥ सुवरणभद्रआदि मुनि चार । पावागिरिवर शिखरमझार ॥ चेलना नदी तीरके पास । मुक्ति गये वंदौं नित तास ॥१४॥ फलहोड़ी बड़गाम अनूप । पश्चिमदिशा द्रोणगिरिरूप ॥ गुरुदत्तादि मुनिसुर जहाँ । मुक्ति गये वंदौं नित तहाँ ॥ २२ ॥ बाल महाबाल मुनि दोय । नागकुमार मिले त्रय होय ॥ श्रीअष्टापद मुक्तिमझार । ते वंदौं नित सुरतसँमार ॥१६॥ अचलापुरकी दिश ईशान । तहां मेढ़गिरि नाम प्रधान ॥ साढ़ेतीन कोड़ि मुनिराय । तिनके चरन नमूं चित लाय ॥१७॥ वंशस्थल वनके ढिग होय ।

पश्चिमदिशा कुंथगिरि सोय ॥ कुलभूषण देशभूषण नाम। तिनके चरणनि करूं प्रणाम ॥१८॥ जसरथराजाके सुत कहे। देशकलिंग पांचसौ लहे ॥ कोटि शिला मुनि कोटिप्रमान। वंदन करूं जोर जुगपान ॥१९॥ समवसरण श्रीपार्श्वजिनंद। रेसंदोगिरि नयनानंद ॥ वरदत्तादि पंच ऋषिराज। ते वंदौं नित धरमजिहाज ॥२०॥ तीन लोकके तीरथ जहाँ। नितप्रति वंदन कीजे तहाँ। मन वच कायसहित सिरनाय। वंदन करहिं भविक गुणगाय ॥२१॥ संवत सतरहसौ इकताल। अश्विनसुदि दशमी सुविशाल॥ "भैया" वंदन करहि त्रिकाल जय निर्वाणकांड गुणमाल ॥२२॥

इति निर्वाणकांड भाषा।

श्रीयुत पंडित दौलतरामजी कृत—

(६) छहढाला।

सोरठा।

तीन भुवनमें सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिके॥

प्रथमढाल—चौपाई छन्द १५ मात्रा.

जे त्रिभुवनमें जीव अनन्त। सुख चाहें दुखतें भयवन्त॥
तातें दुखहारी सुखकार। कहैं सीख गुरु करुणाधार॥१॥
ताहि सुनो भवि मन थिर आन। जो चाहो अपनो कल्यान।
मोह महा मद पियो अनादि। भूल आपको भरमत बादि॥२॥
तास भ्रमणकी है बहु कथा। पै कछु कहूं कही मुनि यथा॥
काल अनन्त निगोद मँझार। बीतो एकेन्द्री तन धार॥३॥
एक श्वासमें अठदशबार। जन्मो मरो भरो दुख भार॥
निकस भूमि जल पावक भयो। पवन प्रत्येक वनस्पति थयो॥४॥
दुर्लभ लहिये चिन्तामणी। त्यों पर्याय लही त्रस तणी॥
लट पिपील अलि आदि शरीर। धरधर मरो सही बहुपीर॥५॥
कबहूं पंचेंद्रिय पशु भयो। मन बिन निपट अज्ञानी थयो॥
सिंहादिक सेनी है कूर। निर्बल पशु हति खाए भूर॥६॥
कबहूँ आप भयो बलहीन। सबलनकर खायो अति दीन॥
छेदन भेदन भूखरु प्यास। भार वहन हिम आतप त्रास॥७॥
वध बंधन आदिक दुख घनें। कोट जीभकर जात न भनें॥
अतिसंक्लेश भावतें मरो। घोर श्वभ्र सागरमें परो॥ ८॥

तहाँ भूमि परसंत दुख इसो। बीछू सहस डसे नहिं तिसो ॥
तहाँ राध श्रोणित वाहिनी। क्रमि कुल कलित देह दाहिनी ॥९॥
सेमलतरु जुत दल असिपत्र। असि ज्यों देह विदारें तत्र ॥
मेरुसमान लोह गलिजाय। ऐसी शीत उष्णता थाय ॥१०॥
तिल तिल करैं देहके खंड। असुर भिडावें दुष्ट प्रचंड ॥
सिंधु नीरतें प्यास न जाय। तो पण एक न बूंद लहाय ॥११॥
तीन लोकको नाज जो खाय। मिटै न भूख कणा न लहाय ॥
ये दुख बहु सागरलों सहै। करमयोगतें नरगति लहै ॥ १२ ॥
जननी उदर वसो नवमास, अंग सकुचतें पाइ त्रास ॥
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर ॥१३॥
बालपनेमें ज्ञान न लह्यो। तरुण समय तरुणी रत रह्यो ॥
अर्द्धमृतक सम बूढ़ापनो। कैसे रूप लखै आपनो ॥ १४ ॥
कभी अकाम निर्जरा करै। भवनत्रिकमें सुर-तन धरै ॥
विषय चाह दावानल दह्यो। मरत विलाप करत दुःख सह्यो ॥१५॥
जो विमानवासीहू थाय। सम्यक्दर्शनविन दुख पाय ॥
तहँते चय थावर तन धरै। यों परिवर्तन पूरे करै ॥ १६ ॥

द्वितीय ढाल-पद्धरी छंद १६ मात्रा।

ऐसे मिथ्या दृग ज्ञान चर्ण। वश भ्रमत भरत दुःख जन्म मर्ण ॥
तातें इनको तजिये सुजान। सुन तिन संक्षेप कहूं बखान ॥१॥
जीवादि प्रयोजन भूततत्त्व। सरधै तिन मांहिं विपर्ययत्व ॥
चेतनको है उपयोग रूप। बिन मूरति चिन्मूरति अनूप ॥२॥
पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल। इनतैं न्यारी है जीवचाल ॥

ताकूं न जान विपरीति मान । करि करै देहमें निजपिछान ॥३॥
मैं सुखी दुखी मैं रंक राव । मेरो धन गृह गोधन प्रभाव ॥
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन । बेरूप सुभग मूरख प्रवीन ॥४॥
तन उपजत अपनी उपज जान । तन नशत आपको नाश मान ।
रागादि प्रगट ये दुःख देन । तिनहीको सेवत गिनत चैन ॥५॥
शुभ अशुभ बंधके फल मझार । रति अरति करै निजपद विसार ॥
आतम हित हेतु विराग ज्ञान । ते लखे आपकूं कष्ट दान ॥६॥
रोके न चाह निज शक्ति खोय । शिवरूप निराकुलता न जोय ॥
याहि प्रतीति युत कछुक ज्ञान । सो दुखदायक अज्ञान ज्ञान ॥७॥
इन जुत विषयनिमें जो प्रवृत्त । ताकूं जानो मिथ्या चरित्त ॥
यो मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह । अब जे गृहीत सुनिये सुनेह ।८।
जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव । पोखैं चिर दर्शन मोह एव ॥
अंतर रागादिक धरैं जेह । बाहर धन अंबरतैं सनेह ॥९॥
धारैं कुलिंग लहि महत भाव । ते कुगुरु जन्म जल उपलनाव ॥
जे राग द्वेष मलकरि मलीन । वनिता गदादि जुत चिन्ह चीन्ह ॥१०॥
तेहैं कुदेव तिनकी जु सेव । शठ करत न तिन भवभ्रमणछेव ।
रागादि भाव हिंसा समेत । दर्वित त्रसथावर मरण खेत ॥ ११ ॥
जे क्रिया तिन्हें जानहु कुधर्म । तिन सरधे जीव लहे अशर्म ।
याकूं गृहीत मिथ्यात जान । अब सुन ग्रहीत जो है अजान ॥१२॥
एकान्त वाद-दुषित समस्त । विषयादिक पोशक अप्रशस्त ॥
कपिलादिरचित श्रुतका अभ्यास । सोहै कुबोध बहुदेन त्रास ॥१३॥
जो ख्यातिलाभपूजादि चाह । धरं करन विविध विधदेहदाह ॥
आतम अनात्मके ज्ञान हीन । जे जे करनी तन करन छीन ॥१४॥

ते सब मिथ्या चारित्र त्याग । अब आतमके हित-पंथ लाग ॥
जगजाल भ्रमणको देय त्याग । अब दौलत निजआतमसु पाग ॥ १५॥

तृतीय ढाल । नरेन्द्रछंद २८ मात्रा ।

आतमको हित है सुख सो सुख, आकुलता बिन कहिये ।
आकुलता शिवमांहि न तातैं, शिव मग लाग्यो चहिये ॥
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरन शिव, मग सो दुविधि विचारो ।
जो सत्यारथ रूपसो निश्चय, कारण सो व्यवहारो ॥ १ ॥

परद्रव्यनतैं भिन्न आपमैं, रुचि सम्यक्त भला है ।
आप रूपको जानपनो सो, सम्यक ज्ञान कला है ॥
आपरूपमें लीन रहे थिर, सम्यक चारित सोई ।
अब विवहार मोख-मग सुनियें, हेतु नियतको होई ॥ २ ॥

जीव अजीव तत्व अरु आश्रव, बंधरु संवर जानो ।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्योंको त्यों सरधानो ॥
है सोई समकित विवहारी, अब इनरूप बखानो ।
तिनको सुन सामान्य विशेषै, दिढ़ प्रतीति उर आनो ॥ ३ ॥

बहिरातम अन्तरआतम पर-मातम जीव त्रिधा है ।
देह जीवको एक गिने वहि,-रातम तत्त्व मुधा है ॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविधिके, अन्तर आतम ज्ञानी ।
द्विविधि संग बिन शुध उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी ॥ ४ ॥

मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती आगारी ।
जघन कहे अविरत समदृष्टि, तीनों शिवमगचारी ॥
सकल निकल परमातम द्वैविधि, तिनमें घाति निवारो ।

श्री अरहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी ॥ ५ ॥
ज्ञानशरीरी त्रिविधकर्ममल, वर्जित सिद्ध महंता ।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनन्ता ॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजे ।
परमातमको ध्याय निरन्तर, जो नित आनंद पूजे ॥ ६ ॥
चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं ॥
पुद्गल पंचवरण रस गंध दो फरसवसू जाके हैं ।
जिय पुद्गलको चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी ।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन विन मूर्ति निरूपी ॥ ७ ॥
सकलद्रव्यको वास जासमें, सो आकाश पिछानो ।
नियत वर्तना निशिदिन सो व्यय, हार काल परिमानो ॥
यों अजीव अब आश्रव सुनिये, मन वच काय त्रियोगा ।
मिथ्या अविरत अरु कषाय पर,—माद सहित उपयोगा ॥ ८ ॥
ये ही आतमको दुखकारण, तातैं इनको तजिये ।
जीव प्रदेश बँधे विधिसों सो, बंधन कबहुँ न सजिये ॥
शमदमतैं जो कर्म न आवै, सो संवर आदरिये ।
तप बलतै विधि झरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये ॥ ९ ॥
सकलकर्मतैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी ।
इहिविधि जो सरधा तत्वनकी, सो समकित व्यवहारी ॥
देव जिनेन्द्र गुरू परिग्रह बिन, धर्मदयायुत सारो ।
यहू मान समकितको कारण, अष्ट अंग जुत धारो ॥ १० ॥
वसुमद टारि निवारि त्रिशठता, षट अनायतन त्यागो ।
शंकादिक वसु दोष विना सं,—वेगादिक चित पागो ॥

अष्टअंग अरु दोष पचीसों, अब संक्षेपै कहिये।
विन जाने तैं दोष गुननको, कैसे तजिये गहिये ॥ ११ ॥
जिन बचमें शंका न धार वृष, भवसुख वांछा भानै।
मुनितन देख मलिन घिनावै, तत्त्वकुतत्त्व पिछानै॥
निजगुण अरु पर औगुण ढाँकै, वा निजधर्म बढ़ावै।
कामादिक कर वृषतैं चिगते, निज परको सु दिढ़ावै ॥ १२ ॥
धर्मीसों गउ वच्छ प्रीति सम, कर जिन धर्म दिपावै।
ईन गुणतैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावै॥
पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै।
मद न रूपको मद न ज्ञानको, धनवलको मद भानै ॥ १३ ॥
तपको मद न मद जु प्रभुताको, कर न सो निज जानै।
मद धारै तौ यही दोप वसु, समकितकूं मल ठानै॥
कुगुरु कुदेव कुवृष सेवककी, नहिं प्रशंस उचरै है।
जिन मुनि जिन श्रुति विन कुगुरादिक, तिन्हें न नमन करै है॥
दोष रहित गुणसहित सुधी जे, सम्यक्दर्श सजै हैं।
चरित मोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं॥
गेहि पै गृहमें न रचै ज्यों, जलमें भिन्न कमल है।
नगरनारिको प्यार यथा का,—देमें हेम अमल है ॥ १५ ॥
प्रथम नरक विन षटभू ज्योतिष, वान भवन सब नारी।
थावर विकलत्रय पशुमें नहिं, उपजत सम्यक धारी॥
तीनलोक तिहुँकाल माहिं नहिं, दर्शन सो सुखकारी।
सकल धरमको मूल यही इस, विनकरणी दुखकारी ॥ १६ ॥
मोक्षमहलकी परथम सीढ़ी, या विन ज्ञान चरित्रा।

सम्यकता न लहैं सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा ॥
दौल समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवे ।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक नहिं होवै ॥

अथ चतुर्थ ढाल ।

दोहा ।

सम्यक श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यकज्ञान ।
स्वपर अर्थ बहु धर्मयुत, जो प्रगटावन भान ॥

रोलाछन्द २४ मात्रा ।

सम्यक साथे ज्ञान, होय पै भिन्न अराधो ।
लक्षण श्रद्धा जान, दूहूमें भेद अबाधो ॥
सम्यक कारण जान, ज्ञान कारज है सोई ।
युगपत होनेहू, प्रकाश दीपकतें होई ॥ १ ॥
तास भेद दो है, परोक्ष परतक्ष तिन माहीं ।
मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतें उपजाहीं ॥
अवधि ज्ञान मन पर्य्यय, दो है देश प्रत्यक्षा ।
द्रव्यक्षेत्र परिमाण, लिये जानै जिय स्वच्छा ॥ २ ॥
सकल द्रव्यके गुण, अनत पर्याय अनंता ।
जानै ऐकै काल, प्रगट केवलि भगवंन्ता ॥
ज्ञान समान न आन, जगतमें सुखको कारण ।
इहि परमामृत जन्म, जरामृत रोग—निवारण ॥ ३ ॥
कोटिजन्म तप तपै, ज्ञान विन कर्म झरैं जे ।
ज्ञानीके छिनमें त्रि-गुप्तितैं सहज टरैं ते ॥

मुनिव्रत धार अनंत, बार ग्रीवक उपजायो ।
पै निज आतम ज्ञान विना सुखलेश न पायो ॥
तातैं जिनवर कथित, तत्त्व अभ्यास करीजै ।
संशय विभ्रम मोह, त्याग आपो लख लीजै ॥
यह मानुष पर्याय, सुकुल सुनके जिन वानी ।
इह विधि गये न मिलैं, सुमनि ज्यों उदधि समानी ॥६॥
धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै ।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै ॥
तास ज्ञानको कारण, स्वपर विवेक बखानो ।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनो ॥
जे पूरब शिव गए, जाहिं अब आगे जै हैं ।
सो सब महिमा ज्ञान-तणी मुनिनाथ कहे हैं ॥
विषय चाह दवदाह, जगत जन अरन दझावै ।
तास उपाय न आन, ज्ञानघन-घान बुझावै ॥ ७ ॥
पुण्य पाप फल माहि, हरष विलखो मत भाई ।
यह पुद्गल पर्याय, उपजि विनशै फिर थाई ॥
लाख बातकी बात, यही निश्चय उर लाओ ।
तोरि सकल जगदंद-फंद नित आतम ध्याओ ॥८॥
सम्यग्ज्ञानी होय, बहुरि दृढ चारित लीजै ।
एकदेश अरु सकल देश, तसु भेद कहीजै ॥
त्रसहिंसाको त्याग, वृथा थावर न संघारे ।
परवधकार कठोर निंद्य, नहिं वयन उचारे ॥९॥
जलमृतिका बिन और, नांहिं कछु गहै अदत्ता ।

निज बनिता बिन और, नारिसौं रहै विरत्ता ॥
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखैं।
दस दिश गमन प्रमाण ठान, तसु सींम न नाखैं ॥
ताहूमें फिर ग्राम, गली ग्रह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमाण ठान, अन सकल निवारा ।
काहूकी धनहानि, किसी जय हार न चिंतैं।
देय न सो उपदेश, होय अघ बनज कृषीतैं ॥११॥
कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोप–करण नहिं दे यश लाधै ॥
राग द्वेष करतार, कथा कबहूं न सुनीजे।
औरहु अनरथ दंड, हेतु अघ तिन्है न कीजे ॥१२॥
धर उर समता भाव, सदा सामायक करिये।
परब चतुष्टै मांहि, पाप तज प्रोषध धरिये ॥
भोग और उपभोग, नियमकर ममत निवारै।
मुनिको भोजन देय, फेर निज करहि आहारै ॥१३॥
बारह व्रतके अतीचार, पन पन न लगावै।
मरण समै संन्यास, धार तसु दोष नशावै ॥
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावे।
तहंते चय नर जन्म, पाय मुनि हो शिव जावै ॥१४॥

अथ पंचम ढाल।

चाल छंद १४ मात्रा।

मुनि सकल व्रती बड भागी। भवभोगनतें वैरागी ॥
वैराग्य उपावन माई। चिंतै अनुप्रेक्षा भाई ॥१॥

तिन चिन्तत समसुख जागै, जिम ज्वलन पवनके लागै ॥
जबही जिय आतम जानै । तबही जिय शिवसुख ठानै ॥२॥
जोबन गृह गो धन नारी । हय गय जन आज्ञाकारी ॥
इन्द्रिय भोग छिन थाई । सुरधनु चपला चपलाई ॥ ३ ॥
सुर असुर खगाधिप जेते । मृग ज्यों हरि काल दले ते ।
मणिमंत्र तंत्र बहु होई । मरते न बचावै कोई ॥ ४ ॥
चहुंगति दुख जीव भरे हैं । परवर्तन पंच करै हैं ॥
सब विधि संसार असारा । तामें सुख नाहिं लगारा ॥ ५ ॥
शुभ अशुभ करम फल जेते । भोगे जिय एकहि तेते ॥
सुत दारा होय न सीरी । सब स्वारथके हैं भीरी ॥ ६ ॥
जलपय ज्यों जियतन मेला । पै भिन्न २ नहिं भेला ॥
जो प्रगट जुदे धन धामा । क्यों ह्वै इक मिल सुत रामा ॥७॥
पल रुधिर राध मल थैली । कीकस वसादितैं मैली ॥
नव द्वार बहैं घिनकारी । अस देह करे किम यारी ॥ ८ ॥
जो योगनकी चपलाई । तातैं ह्वै आश्रव भाई ॥
आश्रव दुखकार घनेरे । बुद्धिवंत तिन्हें निरवेरे ॥ ९ ॥
जिन पुण्य पाप नहिं कीना । आतम अनुभव चित दीना ॥
तिनहीं विधि आवत रोके । संवर लहि सुख अवलोके ॥१०॥
निज काल पाय विधि झरना । तासों निजकाज न सरना ॥
तप करि जो कर्म खपावै । सोई शिवसुख दरसावै ॥११॥
किनहू न करो न धरै को । षट् द्रव्यमयी न हरे को ॥
सो लोकमाहिं बिन समता । दुख सहै जीव नित भ्रमता ॥
अंतिम ग्रीवकलोंकी हद । पायो अनंत विरियां पद ॥

पर सम्यक्ज्ञान न लाधौ। दुर्लभ निजमें मुनि साधौ॥१३॥
जो भाव मोहतैं न्यारे। दृगज्ञान व्रतादिक सारे॥
सो धर्म जबै जिय धारे। तबही सुख अचल निहारे॥१४॥
सो धर्म मुनिनकरि धरिये। तिनकी करतूति उचरिये॥
ताकूं सुनिये भवि प्राणी। अपनी अनुभूत पिछानी॥१५॥

अथ षष्टम ढाल—हरिगीता छंद २८ मात्रा।

षट काय जीवन हननतें सब, विध दरबहिंसा टरी।
रागादि भाव निवारतैं, हिंसा न भावित अवतरी॥
जिनके न लेश मृषा न जल मृण, हूं बिना दीयौ गहैं।
अठदशसहस विधि शीलधर, चिद्ब्रह्ममें नित रमि रहैं॥१
अतर चतुर्दश भेद बाहर, भंग दशधातैं टलैं।
परमाद तजि चौकर मही लखि, समिति ईर्य्यातैं चलैं॥
जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशय हरे।
भ्रम रोग हर जिनके वचन मुख, चंद्रतैं अमृत झरै॥२॥
छ्यालीस दोष विनासुकुल, श्रावक तणे घर अशनको।
लैं तप बढावन हेत नाहि तन, पोषते तज रसनको॥
शुचि ज्ञान संयम उपकरण लखि, कैं गहैं लखिकैं धरैं।
निर्जंतु थान विलोक तन मल, मूत्र श्लेषम परिहरैं॥३॥
सम्यक्प्रकार निरोध मन वच, काय आतम ध्यावते।
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगण, उपल खाज खुजावते॥
रस रूप, गंध तथा परस अरु, शब्द शुभ असुहावने।
तिनमें न राग विरोध पंचेंद्रियजयन पद पावने॥४॥

समता सम्हारैं थुति उचारैं, वन्दना जिन देवको।
नित करैं श्रुति रति करैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेवको॥
जिनके न न्हौन न दंतधोवन, लेश अंबर आवरण।
भूमाहिं पिछली रयनिमें कछु, शयन एकासन करण॥ ५॥
इकबार लेत आहार दिनमें, खड़े अलप निज पानमें।
कचलोंच करत न डरत परिषह, सों लगे निज ध्यानमें॥
अरि मित्र महल मसान कंचन, काच निन्दन थुतिकरण।
अर्घावतारण असि प्रहारण-में सदा समता धरण॥ ६॥
तप तपैं द्वादश धरैं वृष दश, रत्न त्रय सेवैं सदा।
मुनि साथमें वा एक विचरैं, चहैं नहिं भवसुख कदा॥
यौ सकल संयम चरित सुनि—ये स्वरूपाचरण अब।
जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटै परकी प्रवृति सब॥७॥
जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डार अंतर भेदिया।
वरणादि अरु रागादि तैं, निज भावको न्यारा किया॥
निजमाहिं निजके हेत निजकर, आपको आपै गह्यो।
गुणगणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, मँझार कुछ भेद न रह्यो॥
जहँ ध्यान ध्याता ध्येयको न, विकल्प वच भेद न जहाँ।
चिद्भाव कर्म चिदेश कर्ता, चेतना किरिया तहाँ॥
तीनो अभिन्न अखिन्न शुध, उपयोगकी निश्चल दशा।
प्रगटी जहाँ दृगज्ञानव्रत ये, तीनधा एकै लशा॥ ८॥
परमाण नय निक्षेपको न उद्योत, अनुभवमें दिखै।
दृग–ज्ञान–सुख–बल मय सदा नहिं, आन भाव जो मो विखै॥
मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं॥
चितपिंड चंद अखंड सुगुण करंड, च्युत पुनि कलनितैं॥१०॥
यों चिन्त्य निजमें थिर भए तिन, अकथ जो आनन्द लह्यो।

सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा अह-मिन्द्र कै नाहीं कह्यो ॥
तबही शुक्ल ध्यानाग्नि करि चउ, घात विधि कानन दह्यो।
सब लख्यो केवल ज्ञान करि भवि, लोककों शिवमग कह्यो ॥
पुनि घाति शेष अघात विधि, छिनमाहिं अष्टम भू बसैं।
वसु कर्म विनसै सुगुण वसु, सम्यक्त आदिक सब लसै ॥
संसार खार अपार पारा-वार तरि तीरहिं गये।
अविकार अकल अरूप शुध, चिद्रूप अविनाशी भये ॥१२॥
निजमाहिं लोक अलोक गुण, पर्याय प्रतिबिम्बित थये।
रहि हैं अनन्तानन्त काल य,-था तथा शिव परणये ॥
धनि धन्य हैं जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया।
तिनही अनादी भ्रमण पंच, प्रकार तजि बर सुख लिया ॥१३॥
मुख्योपचार दुभेद यों बड, भागि रत्नत्रय धरैं।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं तिन, सुयशजल-जगमल हरैं ॥
इमि जानि आलस हानि साहस, ठानि यह सिख आदरो।
जबलों न रोग जरा गहै तब, लों जगत निजहित करो ॥१४॥
यह राग आग दहै सदा ता, तैं समामृत पीजिये ॥
चिर भजे विषय कषाय अब तो, त्याग निजपद लीजिये ॥
कहा रच्यौ पर पदमें न तेरो, पद यहै क्यों दुख सहै।
अब दौल होऊ सुखी स्वपद रचि, दाव मत चूकौ यहै ॥१५॥

दोहा।

इक नव वसु इक वर्षकी, तीज सुकुल वैशाख।
कर्यो तत्वउपदेश यह, लखि बुधजनकी भाख ॥ १ ॥
लघु धी तथा प्रमादतें, शब्द अर्थकी भूल।
सुधी सुधार पढो सदा, जो पावो भव कूल ॥

(७) सामायिक भाषा पाठ ।

[पं. महाचंद्रजीकृत]

अथ प्रथम प्रतिक्रमण कर्म ।

काल अनंत भ्रम्यो जगमें सहिया दुख भारी ।
जन्ममरण नित किये पापको है अधिकारी ॥
कोड़ि भवांतरमाहिं मिलन दुर्लभ सामायक ।
धन्य आज मैं भयो योग मिलियो सुखदायक ॥१॥
हे सर्वज्ञ जिनेश किये जे पाप जु मैं अब ।
ते सब मनवचकाय योगकी गुप्ति विना लभ ॥
आप समीप हजूरमाहिं मैं खड़ो खड़ो सब ।
दोष कहूं सो सुनो करो नठ दुःख देहिं जब ॥२॥
क्रोध मान मद लोभ मोह मायावशि प्रानी ।
दुःखसहित जे किये दया तिनकी नहिं आनी ॥
विना प्रयोजन एकेंद्रिय बि ति चउ पंचेंद्रिय ।
आप प्रसादहि मिटै दोष जो लग्यो मोहि जिय ॥३॥
आपसमें इक ठोर थापि करि जे दुख दीने ।
पेलि दिये पगतलें दाबकरि प्राण हरीने ॥
आप जगतके जीव जिते तिन सबके नायक ।
अरज करौं मैं सुनो दोष मेटो सुखदायक ॥४॥
अंजन आदिक चोर महा घनघोर पापमय ।

तिनके जे अपराध भये ते क्षिमा क्षिमा किय ॥
मेरे जे अब दोष भये ते क्षमों दयानिधि ।
यह पडिकोणो कियो आदि षटकर्ममांहि विधि ॥५॥

अथ द्वितीय प्रत्याख्यानकर्म ।

जो प्रमादवशि होय विराधे जीव घनेरे ।
तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे ॥
सो सब झूठो होउ जगतपतिके परसादे ।
जा प्रसादतैं मिलै सर्व सुख दुःख न लाधे ॥६॥
मैं पापी निर्लज्ज दयाकरि हीन महाशठ ।
किये पाप अति घोर पापमति होय चित्त दुठ ॥
निंदूं हूं मैं बारबार निज जियको गरहूं ।
सबविध धर्म उपाय पाय फिर पापहिं करहूं ॥७॥
दुर्लभ है नरजन्म तथा श्रावककुल भारी ।
सतसंगति संयोग धर्म जिन श्रद्धाधारी ॥
जिनवचनामृतधार समावर्तै जिनवानी ।
तोहू जीव संहारे धिक धिक धिक हम जानी ॥८॥
इंद्रियलंपट होय खोय निज ज्ञानजमा सब ।
अज्ञानी जिम करै तिसी विधि हिंसक है अब ॥
गमनागमन करंतो जीव विराधे भोले ।
ते सब दोष किये निंदुं अब मनवच तोले ॥९॥
आलोचनविषयकी दोष लागे जु घनेरे ।
ते सब दोष विनाश होउ तुमतैं जिन मेरे ॥

बार बार इम भांति मोह मद दोष कुटिलता ।
ईर्षादिकतें भये निंदिये जे भयभीता ॥ १० ॥

अथ तृतीय सामायिक कर्म ।

सब जीवनमें मेरे समताभाव जग्यो है ।
सब जिय मो सम समता राखो भाव लग्यो है ॥
आर्त्त रौद्र द्वय ध्यान छाँड़ि करिहूं सामायक ॥
संयम मो कब शुद्ध होय यह भाव बधायक ॥११॥
पृथिवि जल अरु अग्नि वायु चउ काय वनस्पति ।
पंचहि थावरमांहि तथा त्रस जीव बसें जित ॥
बे इंद्रिय तिय चउ पंचेंद्रियमांहि जीव सब ।
तिनतें क्षमा कराऊं मुझपर क्षमा करो अब ॥१२॥
इस अवसरमें मेरे सब सम कंचन अरु त्रण ।
महल मसान समान शत्रु अरु मित्र हि सम गण ॥
जामन मरण समान जानि हम समता कीनी ।
सामायकका काल जितै यह भाव नवीनी ॥१३॥
मेरो है इक आतम तामें ममत जु कीनो ॥
और सबै मम भिन्न जानि समतारस भीनो ॥
मात पिता सुत बंधु मित्र तिय आदि सबै यह ।
मोतें न्यारे जानि जथारथरूप कर्यो गह ॥१४॥
मैं अनादि जगजालमांहि फँसि रूप न जाण्यो ।
एकेंद्रिय दे आदि जंतुको प्राण हराण्यो ॥

ते अब जं वसमूह सुनो मेरी यह अरजी।
भवभवका अपराध क्षमा कीज्यो करी मरजी ॥१५॥
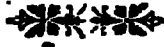
अथ चतुर्थ स्तवनकर्म।

नमूं रूषभ जिनदेव अजित जिन जीत कर्मको।
संभव भवदु खहरणकरण अभिनंद शर्मको॥
सुमति सुमतिदातार तार भवसिंधु पारकर।
पद्मप्रभ पद्माभ भानि भवभीति प्रीति धर ॥१६॥

श्रीसुपार्श्व कृत पास नाश भव जास शुद्ध कर।
श्रीचंद्रप्रभ चंद्रकांतिसम देहकांति धर॥
पुष्पदंत दमि दोषकोश भवि पोष रोषहर।
शीतल शीतल करन हरन भवताप दोषहर ॥१७॥

श्रेयरूप जिन श्रेय धेय नित सेय भव्यजन।
वासुपूज्य शतपूज्य वासवादिक भवभय हन॥
विमल विमलमतिदैन अंतगत हैं अनंत जिन।
धर्म शर्म शिवकरन शांति जिन शांतिविधायिन ॥१८॥

कुंथ कुंथ सुखजीवपाल अरनाथ जाल हर।
मल्लि मल्लसम मोहमल्ल मारण प्रचार धर॥
मुनिसुव्रत व्रतकरण नमत सुरसंघहि नमि जिन।
नेमिनाथ जिन नेमि धर्मरथ मांहि ज्ञानधन ॥१९॥

पार्श्वनाथ जिन पार्श्व उपलसम मोक्षरमापति।
वर्द्धमान जिन नमूं चमूं भवदुःख कर्मकृत॥

यावित्र मैं जिनसंघरूप चउवीस संख्यधर ।
स्तउं नमूं हूं बार बार वंदौं शिवसुखकर ॥२०॥

अथ पंचम वंदनाकर्म ।

वंदूं मैं जिनवीर धीर महावीर सु सन्मति ।
वर्द्धमान अतिवीर वंदिहौं मनवचतनकृत ॥
त्रिशलातनुज महेश धीश विद्यापति वंदूं ।
वंदु नितप्रति कनकरूपतनु पाप निकंदू ॥ २१ ॥

सिद्धारथ नृपनंद द्वंद दुखदोष मिटावन ।
दुरित दवानल ज्वलित ज्वाल जगजीव उधारन ॥
कुंडलपुर करि जन्म जगतजिय आनंदकारन ।
वर्ष बहत्तरि आयु पाय सब ही दुख टारन ॥ २२ ॥

सप्त हस्त तनु तुंग भंग कृत जन्म मरण भय ।
बालब्रह्ममय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय ॥
दे उपदेश उधारि तारि भवसिंधु जीवघन ।
आप वसे शिवमाहिं ताहि वंदौं मनवचतन ॥ २३ ॥

जाके वंदनथकी दोष दुख दूरहि जावै ।
जाके वंदनथकी मुक्ति तिय सन्मुख आवै ॥
जाके वंदनथकी वंद्य होवैं सुरगनके ।
ऐसे वीर जिनेश वंदिहूं क्रमयुग तिनके ॥२४॥

सामायिक षटकर्ममाहिं वंदन यह पंचम ।
वंदे वीरजिनेंद्र इंद्रशतवंद्य वंद्य मम ॥

जन्म मरण भय हरो करो अघ शांति शांतिमय।
मैं अघकोश सुपोष दोषको दोष विनाशय ॥ २५ ॥

अथ छट्ठा कायोत्सर्गकर्म।

कायोत्सर्गविधान करूं अंतिम सुखदाई।
कायत्यजन मय होय काय सबको दुखदाई ॥
पूरब दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तरमैं।
जिनगृह वंदन करूं हरूं भव पापतिमिरमैं ॥ २६ ॥
शिरोनतीमैं करूं नमूं मस्तक कर धरिकैं।
आवर्त्तादिक क्रिया करूं मनवचमद हरिकैं ॥
तीन लोक जिनभवनमांहि जिन हैं जु अकृत्रिम।
कृत्रिम हैं द्वयअर्द्धद्वीपमाहीं वंदौं जिम ॥ २७ ॥
आठकोडिपरि छपन लाख जु सहस सत्याणुं।
चारि शतकपरि असी एक जिनमंदिर जाणूं ॥
व्यंतर ज्योतिषमांहिं संख्यरहिते जिनमंदिर।
जिनगृह वंदन करूं हरहु मम पाप संघकर ॥ २८ ॥
सामायिक सम नाहिं और कोउ वैर मिटायक।
सामायिक सम नाहिं और कोउ मैत्रीदायक ॥
श्रावक अणुव्रत आदि अंत सप्तम गुणथानक।
यह आवश्यक किये होय निश्चय दुखहानक ॥२९॥
जे भवि आतम काज करण उद्यमके धारी।
ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी ॥
राग दोष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब।

बुध महाचन्द्र विलाय जाय तातै कीयो अब ॥

इति सामायिक भाषापाठ समाप्त ।

श्री अमितगति आचार्य विरचित

सामायिक पाठ (संस्कृत)

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ॥१॥
शरीरतः कर्तुमनन्तशक्तिं, विभिन्नमात्मानमपास्तदोषम् ।
जिनेन्द्र कोषादिव खड्गयष्टिं, तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ॥२॥
दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे, योगे वियोगे भवने वने वा ।
निराकृताशेषममत्वबुद्धेः, समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ ॥३॥
मुनीश ! लीनाविव कीलिताविव, स्थिरौ निपाताविव बिम्बताविव ।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव ॥४॥
एकेन्द्रियाद्या यदि देव देहिनः, प्रमादतः संचारता इतस्ततः ।
क्षता विभिन्ना मलिता निपीड़िता, तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा ॥५॥
विमुक्तिमार्गप्रतिकूलवर्तिना, मया कषायक्षवशेन दुर्धिया ।
चारित्रशुद्धेर्यदकारि लोपनं, तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ॥६॥
विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं, मनोवचःकायकषायनिर्मितम् ।
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं, भिषग्विषं मन्त्रगुणैरिवाखिलम् ॥७॥
अतिक्रमं यं विमतेर्व्यतिक्रमं, जिनातिचारं सुचरित्रकर्मणः ।
व्यधादनाचारमपि प्रमादतः, प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥८॥
क्षतिं मनःशुद्धिविधेरतिक्रमं, व्यतिक्रमं शीलव्रतेर्विलंघनम् ।

प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्त्तनं, वदन्त्यनाचारमिहातिशक्तिताम् ॥९॥
यदर्थमात्रापदवाक्यहीनं, मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम् ।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी, सरस्वती केवलबोधलब्धिः ॥१०॥
बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः, स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः ।
चिन्तामणिं चिन्तितवस्तुदाने, त्वां वंद्यमानस्य ममास्तु देवि ॥११॥
यः स्मर्य्यते सर्व्वमुनीन्द्रवृन्दैः, यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रैः ।
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥ १२ ॥
यो दर्शनज्ञानसुखस्वभावः, समस्तसंसारविकारबाह्यः ।
समाधिगम्यः परमात्मसंज्ञः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥ १३ ॥
निषूदते यो भवदुःखजालम्, निरीक्षते यो जगदन्तरालम् ।
योऽन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीयः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१४॥
विमुक्तिमार्गप्रतिपादको यो, यो जन्ममृत्युव्यसनाद्यतीतः ।
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलङ्कः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१५॥
क्रोडीकृताशेषशरीरिवर्गाः, रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः ।
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१६॥
यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तेः, सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबन्धः ।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१७॥
न स्पृश्यते कर्मकलङ्कदोषैः, यो ध्वान्तसंघैरिव तिग्मरश्मिः ।
निरंजनं नित्यमनेकमेकं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ १८ ॥
विभासते यत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनावभासी ।
स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ १९ ॥
विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं, विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम् ।
शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ २० ॥

येन क्षता मन्मथमानमूर्च्छा, विषादनिद्राभयशोकचिन्ता ।
क्षयाऽनलेनेव तरुप्रपञ्च, स्तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ २१ ॥
न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी, विधानतो नो फलको विनिर्म्मितम् ।
यतो निरस्ताक्षकषायविद्विषः, सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः ॥२२॥
न संस्तरो भद्रसमाधिसाधनं, न लोकपूजा न च संघमेलनम् ।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं, विमुच्य सर्व्वामपि बाह्यवासनाम् ॥२३
न सन्ति बाह्या मम केचनार्थाः, भवामि तेषां न कदाचनाहम् ।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं, स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र मुक्त्यै ॥२४॥
आत्मानमात्मन्यविलोक्यमानस्त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः ।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र, स्थितोपि साधुर्लभते समाधिम् ॥२५॥
एकः सदा शाश्वति को ममात्मा, विनिर्मलः साधिगमस्वभावः ।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ताः, न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः॥२६॥
यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं, तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः ।
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः । कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये ॥२७॥
संयोगतो दुःखमनेकभेदं, यतोऽश्नुते जन्म वने शरीरी ।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम् ॥२८॥
सर्वं निराकृत्य विकल्पजालं, संसारकान्तारनिपातहेतुम् ।
विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो, निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे ॥२९॥
स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम् ।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥३०॥
निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोपि कस्यापि ददाति किंचन ।
विचारयन्नेवमनन्यमानसः, परो ददातीति विमुच्य शेमुषीम् ॥३१॥
यैः परमात्माऽमितगतिवन्द्यः, सर्वविविक्तो भृशमनवद्यः ।

शश्वदधीते मनसि लभन्ते, मुक्तिनिकेतं विभववरं ते ॥ ३२ ॥
इति द्वात्रिंशतावृत्तैः, परमात्मानमीक्षते ।
योऽनन्यगतचेतस्को, यात्यसौ पदमव्ययम् ॥ ३३ ॥

[८] समाधिमरण भाषा ।

(पं० सूरचन्दजी रचित)

नरेन्द्र छन्द ।

बन्दों श्रीअर्हन्त परम गुरु, जो सबको सुखदाई ।
इसजगमें दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई ।
अब मैं अरज करूं नित तुमसे, कर समाधि ऊरमँहीं ।
अन्तसमयमें यह वर मांगूं, सो दीजे जगराई ॥१॥
भव भवमें तन धार नये मैं, भव भव शुभ सँग पायो ।
भव भवमें नृप ऋद्धि लई मैं, मात पिता सुत थायो ॥
भव भवमें तन पुरुष तनो धर, नारीहूं तन लीनो ।
भव भवमें मैं भयो नपुंसक, आतमगुण नहिं चीनो ॥२॥
भव भवमें सुरपदवी पाई, ताके सुख अति भोगे ।
भव भवमें गति नरकतनी धर, दुख पायो विधयोगे ॥
भव भवमें तिर्यंच योनि धर, पायो दुख अति भारो ।
भव भवमें साधर्मी जनको, संग मिलो हितकारो ॥३॥
भव भवमें जिनपूजन कीनी, दान सुपात्रहि दीनो ।
भव भवमें मैं समवसरणमें, देखो जिनगुण भीनो ॥
एती वस्तु मिली भव भवमें, सम्यक् गुण नहिं पायो ।

ना समाधियुत मरण करा मैं, तातें जग भरमायो ॥४॥
काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहि कीनो ।
एक बारहू सम्यकयुत मैं, निज आतम नहिं चीनो ॥
जो निजपरको ज्ञान होय तो, मरण समय दुखदाई ।
देह विनाशी मैं निजभाशी, जोति स्वरूप सदाई ॥५॥
विषय कषायनमें वश होकर, देह आपनो जानो ।
कर मिथ्याशरधान हिये विच, आतम नाहिं पिछानो ॥
यों कलेश हिय धार मरणकर, चारों गति भरमायो ।
सम्यकदर्शन ज्ञान तीन ये, हिरदेमें नहिं लांयो ॥ ६ ॥
अब या अरज करूं प्रभु सुनिये, मरणसमय यह मागो ।
रोग जनित पीड़ा मत होऊ, अरु कषाय मत जागो ॥
ये मुझ मरणसमय दुखदाता, इन हर साता कीजे ।
जो समाधियुत मरणहोय मुझ, अरु मिथ्यागद छीजे ॥ ७ ॥
यह तन सात कुधात मई है, देखतही घिन आवे ।
चर्म लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावे ॥
अति दुर्गंध अपावन सो यह, मूरख प्रीति बढ़ावे ।
देह विनाशी यह अविनाशी, नित्य स्वरूप कहावे ॥ ८ ॥
यह तन जीर्ण कुटीसम मेरो, यातैं प्रीति न कीजे ।
नूतन महल मिले फिर हमको, यामें क्या मुझ छीजे ॥
मृत्यु होनसे हानि कौन है, याको भय यत लावो ।
समतासे जो देह तजोगे, तो शुभ तन तुम पावो ॥ ९ ॥
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के मांहीं ।

जीरण तनसे देत नयो यह, या सम साऊ नाहीं ॥
या सेती तुम मृत्युसमय नर, उत्सव अतिही कीजे।
क्लेशभावको त्याग सयाने, समताभाव धरीजे ॥ १० ॥
जो तुम पूरव पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई।
मृत्युमित्र विन कौन दिखावे, स्वर्ग संपदा भाई ॥
राग द्वेषको छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई।
अन्त समयमें समता धारो, पर भव पन्थ सहाई ॥ ११ ॥
कर्म महा दुठ वैरी मेरो, तासेती दुख पावे।
तन पिंजरेमें बंध कियो मुझ, जासों कौन छुड़ावे ॥
भूख तृषा दुख आदि अनेकन, इस ही तनमें गाढ़े।
मृत्युराज अब आप दयाकर तन पिंजरसे काढ़े ॥ १२ ॥
नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तनको पहराये।
गंधसुगन्धित अतर लगाये, षटरस अशन कराये ॥
रात दिना मैं दास होयकर, सेव करी तन केरी।
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रहो निधि मेरी ॥ १३ ॥
मृत्युरायको शरण पाय तन, नूतन ऐसो पाऊं।
जामें सम्यक्‌रतन तीन लहि, आठो कर्म खपाऊं ॥
देखो तन सम और कृतघ्नी, नांहि सु या जगमाही।
मृत्युसमयमें येही परिजन, सबही हैं दुखदाई ॥१४॥
यह सब मोह बढ़ावनारे, जियको दुर्गतिदाता।
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता ॥
मृत्युकल्पद्रुम पाय सयाने, मांगो इच्छा जेती।
समता धरकर मृत्यु करो तो, पावो संपति तेती ॥१५॥

चो आराधन सहित प्राण तज, तौ ये पदवी पावो ।
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग मुकतिमें जावो ॥
मृत्युकल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मंझारे ।
ताको पाय कलेश करो मत, जन्मजवाहर हारे ॥१६॥
इस तनमें क्या राचे जियरा, दिन दिन जीरण हो है ।
तेज कांति बल नित्य घटत है, यासम अथिर सु को है ॥
पांचों इन्द्री शिथल भई तब, स्वास शुद्ध नहिं आवै ।
तापर भी ममता नहिं छोड़े, समता उर नहिं लावै ॥ १७ ॥
मृत्युराज उपकारी जियको, तिनके तोहि छुड़ावे ।
नातर या तन वंदीग्रहमें, पड़ापड़ा बिल्लावे ॥
पुद्गलके परमाणू मिलके, पिंडरूप तन भासी ।
यही मूरती मैं अमूरती, ज्ञानजोति गुणखासी ॥ १८ ॥
रोग शोक आदिक जो वेदन, ते सब पुद्गल लारे ।
मैं तो चेतन व्याधि विना नित, हैं सो भाव हमारे ॥
या तनसे इस क्षेत्र संबंधी, कारण आन बनो है ।
खान पान दे याको पोषो, अब समभाव ठनो है ॥ १९ ॥
मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान विन, यह तन अपनो जानो ।
इंद्री भोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछानो ॥
तन विनशनतें नाश जानि निज, यह अयान दुखदाई ।
कुटुम आदिको अपनो जानो, मूल अनादी छाई ॥ २० ॥
अब निज भेद यथारथ समझो, मैं हूं ज्योतिस्वरूपी ।
उपजे विनशे सो यह पुद्गल, जानो याको रूपी ॥
इष्टनिष्ट जेते सुखदुख हैं, सो सब पुद्गल सागे ।

मैं जब अपनो रूप बिचारो, तब वे सब दुख भागे ॥ २१ ॥
बिन समता तन नन्त धरे मैं, तिनमें ये दुख पायो ।
शस्त्रघाततैं नन्त बार मर; नाना योनि भ्रमायो ॥
बार नन्तही अग्निमाहिं जर, मूवो सुमति न लायो ।
सिंह व्याघ्र अहि नन्तवार मुझ, नाना दुःख दिखायो ॥ २२ ॥
बिन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई ।
मृत्युराजको भय नहिं मानो, देवै तन सुख दाई ॥
यातैं जबलग मृत्यु न आवे, तबलग जप तप कीजे ।
जप तप बिन इस जगके माहीं, कोई भी ना सीजे ॥ २३ ॥
स्वर्ग संपदा तपसे पावे, तपसे कर्म नशावे ।
तपहीसे शिवकामिनिपति है, यासे तप चित लावे ।
अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहिं सहाई ॥
मात पिता सुत बान्धव तिरिया. ये सब हैं दुखदाई ॥ २४ ॥
मृत्यु समयमें मोह करें ये, तातैं आरत हो है ॥
आरत तैं गति नीची पावे, यों लख मोह तजो है ॥
और परिग्रह जेते जगमें, तिनसे प्रीति न कीजे ॥
परभवमें ये संग न चालें, नाहक आरत कीजे ॥ २५ ॥
जे जे वस्तु लशत हैं तुझ पर, तिनसे नेह निवारो ।
परगतिमें ये साथ न चालें, ऐसो भाव विचारो ॥
जो परभवमें संग चलें तुझ, तिनसे प्रीति सु कीजे ।
पंच पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजे ॥ २६ ॥
दशलक्षणमयं धर्म धरो उर, अनुकम्पा चित लावो ।
षोड़श कारण नित्य चिन्तवो, द्वादश भावन भावो ॥

चारो परवी प्रोषध कीजे, अशन रातिको त्यागो ।
समता धर दुरभाव निवारो, संयमसूं अनुरागो ॥ २७ ॥
अन्तसमयमें ये शुभ भावहि, होवैं आनि सहाई ।
स्वर्ग मोक्षफल तोहि दिखावैं, ऋद्धि देंय अधिकाई ॥
खोटे भाव सकल जीव त्यागो, उरमें समता लाके ।
जासेती गति चार दूर कर, बसो मोक्षपुर जाके ॥ २८ ॥
मन थिरता करके तुम चिंतो, चौ आराधन भाई ।
येही तोकों सुखकी दाता, और हितू को नाई ॥
आगे बहु मुनिराज भये हैं तिन गहि थिरता भारी ।
बहु उपसर्ग सहे शुभ भावन, आराधन उर धारी ॥ २९ ॥
तिनमें कछु इक नाम कहूं मैं, सो सुन जिय ! चित लाके ।
भावसहित अनुमोदे तासें, दुर्गति होय न जाके ॥
अरु समता निज उरमें आवै, भाव अधीरज जावे ।
यों निश दिन जो उन मुनिवरको, ध्यान हिये विचलावे ॥ ३० ॥
धन्य धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसी धीरज धारी ।
एक श्यालनी युगबच्चायुत, पांव भखो दुखकारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ३१ ॥
धन्य धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्रीने तन खायो ।
तौ भी श्रीमुनि नेक डिगे नहिं, आतमसों हित लायो ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ ३२ ॥
देखो गजमुनिके सिर ऊपर विप्र अगिनि बहु बारी ।
शीस जले जिम लकड़ी तिनको, तौ भी नाहिं चिगारी ॥

यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जियं कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥२३॥
सनतकुमार मुनी के तनमें, कुष्ट वेदना व्यापी ।
छिन्न छिन्न तन तासों हूवो, तव चिन्तो गुण आपी ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥२४॥
श्रेणिकसुत गंगा में डूवो, तव जिननाम चितारे ।
धर संलेखना परिग्रह छाड़ो, शुद्ध भाव उर धारे ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव वारी ॥ २५ ॥
समँतभद्रमुनिवरके तनमें, क्षुधा वेदना आई ।
ता दुखमें मुनि नेक न डिगियो, चिन्तो निजगुण भाई ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चितधारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव वारी ॥ २६ ॥
ललितघटादिक तीस दोय मुनि, कौशांबीतट जानो ।
नदीमें मुनि वहकर मूवे, सो दुख उन नहिं मानो ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव वारी ॥ २७ ॥
धर्मघोष मुनि चंपानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाढ़ो
एक मासकी कर मर्यादा, तृषा दुःख सह गाढ़ो ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिग कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव वारी ॥ २८ ॥
श्रीदत्तमुनिको पूव जन्मको, बैरी देव सु अके ।

विक्रिय कर दुखं शीत तनोसो, सहो साध मन लाके ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव वारी ॥ ३९ ॥
वृषभसेन मुनि उष्ण शिलापर, ध्यान धरो मन लाई ।
सूर्य्यधाम अरु उष्ण पवनकी, वेदन सहि अधिकाई ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चितधारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव धारी ॥ ४० ॥
अभयघोष मुनि काकंदीपुर, महा वेदना पाई ।
वैरी चँडने सब तन छेदो, दुःख दीनो अधिकाई ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिग कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव वारी ॥ ४१ ॥
विद्युतचरने बहु दुख पायो, तौभी धीर न त्यागी ।
शुभभावनसे प्राण तजे निज, धन्य चौर बड़भागी ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव वारी ॥ ४२ ॥
पुत्र चिलाती नामा मुनिको, वैरीने तन घातो ।
मोटेमोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुण रातो ।
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव वारी ॥ ४३ ॥
दण्डक नामा मुनिकी देही, बाणन कर अरि भेदी ।
तापर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म महा रिपु छेदी ॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी ।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव वारी ॥ ४४ ॥

अभिनंदन मुनि आदि पांचसै, घानी पेलि ज़ु मारे।
तौ भी श्रीमुनि समता धारी, पूरव कर्म बिचारे॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव वारी॥ ४५॥
चाणक मुनि गोघरके मांही, मूँद अगिनि परिज्वालो।
श्रीगुरु उर समभाव धारके, अपनो रूप सम्हालो॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव वारी॥ ४६॥
सात शतक मुनिवरने पायो, हथनापुरमें जानो।
बलिब्राह्मणकृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव वारी॥ ४७॥
लोहमयी आभूषण गड़के, ताते कर पहराये।
पांचों पाण्डव मुनिके तनमें, तौ भी नाहिं चिगाये॥
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव वारी॥ ४८॥
और अनेक भये इस जगमें, समता रसके स्वादी।
वेही हमको हो सुखदाता, हरहैं टेव प्रमादी॥
सम्यकदर्शन ज्ञान चरण तप ये, आराधन चारों।
येही मोको सुखकी दाता, इन्हैं सदा उर धारों॥ ४९॥
यो समाधि उरमांही लावो, अपनो हित जो चाहो।
तज ममता अरु आठों मदके- जोतिस्वरूपी ध्यावो॥
जो कोई निज करत पयानो, ग्रामांतरके काजे।

सो भी शकुन विचारे नीके, शुभ शुभ कारण साजे ॥ ६० ॥
मात पितादिक सर्व कुटुमसो, नीके शकुन बनावें ।
हलदी धनिया पुंगी अक्षत, दूध दही फल लावें ॥
एक ग्रामके कारण एते, करे शुभाशुभ सारे ।
जब परगतिको करत पयानो, तब नहिं सोचे प्यारे ॥ ९१ ॥
सर्व कुटम जब रोवन लगे, तोहि रुलावें सारे ।
ये अपशुकुन करें सुन तोकूं, तू यों क्यों न विचारे ॥
अब परगतिके चालत बिरियां, धर्मध्य न उर आनो ।
चारो आराधन आराधो, मोह तनो दुखहानो ॥ ९२ ॥
ह्वै निश्शल्य तजो सब दुविधा, आतमराम सुध्यावो ।
जब परगतिकों करहु पयानो, परम तत्त्व उर लावो ॥
मोह जालको काट पियारे ! अपनो रूप विचारो ।
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, यों उर निश्चय धारो ॥ ९३ ॥

दोहाछंद ।

मृत्युमहोत्सव पाठको, पढ़ो सुनो बुधिवान ।
सरधा धर नित सुख लहो, सुरचन्द शिवथान ॥९४॥
पंच उभय नव एक नभ, सम्वत सो सुखदाय ।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कहो पाठ मनलाय ॥ ९९ ॥

इति समाधिमरण ।

(९) समाधिमरण

(कवि द्यानतरायकृत ।)

—————※—————

(चाल योगीरासा)

गौतम स्वामी बन्दों नामीं मरण समाधि भला है।
मैं कब पाऊं निशदिन ध्याऊं गाऊं बचन कला है॥
देव धरम गुरु प्रीति महा दृढ़ सात व्यसन नहीं जाने।
त्यागि बाइस अभक्ष संयमी बारह व्रत नित ठाने॥१॥
चक्की उखरी चूलि बुहारी पानी त्रस न बिराधे।
बनिज करे पर द्रव्य हरे नहिं छहो करम इमि साधे॥
पूजा शास्त्र गुरुनकी सेवा संयम तप चहुं दानी।
पर उपकारी अल्प अहारी सामायक विधि ज्ञानी॥ २ ॥
जाप जपे तिहुं योग धरे दृग तनकी ममता टारे।
अन्त समय वैराग्य सम्हारे ध्यान समाधि विचारे॥
आग लगे अरु नाव डुबे जब धर्म बिघन जब आवे।
चार प्रकार अहार त्यागि के मंत्र सु मनमें ध्यावे॥ ३ ॥
रोग असाध्य जहां बहु देखे कारण और निहारे।
बात बड़ी है जो बनि आवे भार भवनको डारे॥
जो न बने तो घरमें रह करी सबसों हो निराला।
मात पिता सुत त्रियको सौंपे निज परिग्रह अहि काला॥४॥
कछु चैत्यालय कछु श्रावक जन कछु दुखिया धन देई।
क्षमा क्षमा सब ही सों कहिके मनकी शल्य हनेई॥

शत्रुन सों मिलि निज कर जोरे मैं बहु करी है बुराई ।
तुम से प्रीतम को दुख दीने ते सब बकसो भाई ॥ ५ ॥
धन धरती जो मुख सो मांगे सो सब दे संतोषे ।
छहो कायके प्राणी ऊपर करुणा भाव विशेषे ॥
ऊंच नीच घर बैठ जगह इक कछु भोजन कछु पेले ।
दूधा धारी क्रम क्रम तजि के छाछ अहार पहेले ॥ ६ ॥
छाछ त्यागिके पानी राखे पानी तजि संथारा ।
भूमिमांहि थिर आसन मांडे साधर्मी ढिंग प्यारा ॥
जब तुम जानो यह न जपै है तब जिनबानी पढ़िये ।
यों कहि मौन लियो संन्यासी पंच परम पद गहिये ॥ ७ ॥
चौ आराधन मनमें ध्यावे बारह भावन भावे ।
दशलक्षण मन धर्म विचारे रत्नत्रय मन ल्यावे ॥
पैंतिस सोलह षट पन चौ दुइ इक बरन विचारे ।
काया तेरी दुखकी ढेरी ज्ञान मई तू सारे ॥ ८ ॥
अजर अमर निज गुण सों पूरे परमानन्द सुभावे ।
आनन्द कन्द चिदानँद साहब तीन जगतपति ध्यावे ॥
क्षुधा तृषादिक होइ परीषह सहै भाव सम राखे ।
अतीचार पांचो सब त्यागे ज्ञान सुधारस चाखे ॥ ९ ॥
हाड मांस सब सूखि जाय जब धरम लीन तन त्यागे ।
अद्भुत पुण्य उपाय सुरगमें सेज उठे ज्यों जागे ॥
तहँ तें आवे शिवपद पावे विलसे सुक्ख अनन्तो ।
'द्यानत' यह गति होय हमारी जैन धरम जयवन्तो ॥१०॥

[१०] वैराग्य भावना ।

॥ दोहा ॥

बीज राख फ़ल भोगवे, ज्यों कृशान जगम हिं
त्यों चक्री सुखमें मगन, धर्म विसारे नाहिं ॥

योगीरासा वा नरेन्द्र छन्द ।

इस विधि राज्य करै नर नायक, भोगे पुण्य विशाल । सुख सागर में मग्न निरन्तर, जात न जानो काल ॥ एक दिवस शुभ कर्म योग से, क्षेमंकर मुनि बंदे । देखे श्री गुरु के पद पंकज, लोचन अलि आनंदे ॥१॥ तीन प्रदक्षिणा दे शिर नायो, कर पूजा स्तुति कीनो । साधु समीप विनय कर बैठो, चरणोंमें दृष्टि दीनी ॥ गुरु उपदेशो धर्म शिरोमणि, सुन राजा वैरागो । राज्य रमा वनितादिक जो रस, सो सब नीरस लागो ॥२॥ मुनि सूरज कथनी किरणावलि, लगत भर्म बुधि भागो । भव तन भोग स्वरूप विचारो, परम धर्म अनुरागो ॥ या संसार महा वन भीतर, भर्मत छोर न आवे । जम्मन मरन जरादों दाहे, जीव महा दुःख पावे ॥ ३ ॥ कबहू कि जाय नर्क पद भुंजे, छेदन भेदन भारी । कबहूं कि पशु पर्याय धरे तहां, बध बन्धन भयकारी । सुरगति में परि संम्पति देखे, राग उदय दुख होई । मानुष योनि अनेक विपति मय, सर्व सुखी नहीं कोई ॥ ४ ॥ कोई इष्ट वियोगी बिलखे, कोई अनिष्ट संयोगी । कोई दीन दरिद्री दीखे, कोई तनका रोगी ॥ किसहीं घर कलिहारी नारी, के बैरी सम भाई । किसही के दुख बाहर दीखे,

किसही उर दुचिताई ॥ ५ ॥ कोई पुत्र विना नित झूरे. कोई मरे तब रोवे ।.खोटि संतति से दुःख उपजे, क्यों प्राणि सुख सोवे ॥ पुण्य उदय जिनके तिनको भी, नाहीं सदा सुख साता । यह जग वास यथार्थ दीखे, सबही हैं दुःख दाता ॥ ६ ॥ जो संसार विषे सुख हो तो, तीर्थंकर क्यों त्यागे । काहे को शिव साधन करते, संयमसे अनुरागे ॥ देह अपवान अथिर घिनावनी, इस में सार न कोई । सागरके जलसे शुचि कीजे, तोभी शुद्ध न होई ॥ ७ ॥ सप्त कुधातु भरी मल मूत्रसे, चर्म लपेटी सोहै । अन्तर देखत या सम जगमें, और अपावन को है ॥ नव मल द्वारा श्रवें निशि वासर, नाम लिये घिन आवे । व्याधि उपधि अनेक जहां तहां, कौन सुधी सुख पावे ॥ ८ ॥ पोषत तो दुख दोष करे अति, सोषत सुख उपजावे । दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूर्ख प्रीति बढ़ावे ॥ राचन योग्य स्वरूप न याको, विरचन योग्य सही है । यह तन पाय महा तप कीजे, इस में सार यही है ॥९॥ भोग बुरे भव रोग बढ़ावें. बैरी हैं जग जीके । वे रस होय विपाक समय अति, सेवत लागें नीके ॥ वज्र अग्नि विष से विष धर से हैं अधिके दुःखदाई । धर्मरत्न को चोर प्रबल अति, दुर्गति पन्थ सहाई ॥ १० ॥ मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जाने । ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो जन कंचन माने ॥ ज्यों २ भोग संयोग मनोहर, मन वांछित जन पावे । तृष्णा नागिन त्यों २ डंके, लहर लोभ विष लावे ॥११॥ मैं चक्री पद पाय निरन्तर, भोगे भोग घनेरे । तोभी तनक भये ना पूरण, भोग मनोरथ मेरे ॥ राज समाज महा अघ कारण, बैर बढ़ावन हारा । वेश्या सम लक्ष्मी अति चंचल.

इसका कौन पत्यारा ॥१२॥ मोह महा रिपु वैर विचारे, जग जीव संकट डारे। घर कारागर वनिता वेटा, परजन हैं रखवारे॥ सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप, ये जिय को हितकारी। ये ही सार असार और सब, यह चक्री जीय धारी ॥१३॥ छोड़े चौदह रत्न नवोनिधि, और छोडे संग साथी। कोड़ि अठारह घोड़े छोडे, चौरासी लख हाथी॥ इत्यादिक सम्पति बहुतेरी, जीर्ण तृणवत त्यागी। नीति विचार नियोगी सुत को, राज्य दिया बड़ भागी ॥१४॥ होई निस्सल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे। श्रीगुरु चरण धरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे॥ धन्य समझ सुबुद्धि गौत्तम, धन्य यह धैर्य धारी। ऐसी सम्पति छोड़ वसे वन तिन पद धोक हमारी॥ १५॥

दोहा।

परिग्रह पोठ उतार सब, लीनो चारित्र पंथ।
निज स्वभाव में स्थिर भये, वज्रनाभि निर्ग्रंथ॥

इति वैराग्यभावना सम्पूर्णम्।

(११) फूलमाल पच्चीसी।

दोहा।

जैन धरम त्रेपन क्रियां, दया धरम संयुक्त।
यादों वंश विषैं जये, तीन ज्ञान करि युक्त॥१॥

भयो महोछो नेमिको, जुनागड़ गिरनार। जाति चुरासिय जैनमत जुरे क्षोहणी च्यार॥२॥

माल भई जिनराजकी, गूंथी इन्द्र न आय।
देशदेशके भव्य जन, जुरे लेनको धाय ॥ ३ ॥

छप्पय।

देश गौड़ गुजरात चौड़ सोरठि वीजापुर।
करनाटक कशमीर मालवो अरु अमेरधुर ॥
पानीपथ हीं सार और वैराट महा लघु।
काशी अरु भरहट्ट मगध तिरहुत पट्टन सिंधु ॥
तहँ वंग चंग बंदर सहित, उदधि पार लौं जुरिय सब।
आए जु चीन मह चीन लग, माल भई गिरनारि जब ॥४॥

नाराच छन्द।

सुगंध पुष्प वेलि कुंद केतकी मगायकें। चमेलि चंप सेवती जुही गुही जु लायकें॥ गुलाब कंज लायची सबै सुगंध जातिके। सुमालती महा प्रमोद लै अनेक भांतिके ॥५॥ सुवर्ण तारपोइ बीच मोति लाल लाइया। सु हीर पन्न नील पीत पद्म जोति छाइया ॥ शची रची विचित्र भांति चित्त देवनांद है। सुइंद्रने उछाहसों जिनेंद्रको चढाई है ॥६॥ सुभागहीं अमोल माल हाथ जोरि वानियें। जुरी तहां चुराशि जाति रावराज जानिये ॥ अनेक और भूपलोग सेठसाहुको गनें। कहालु नाम वर्णियें सुदेखते सभा बनें ॥७॥ खँडेलवाल जैसवाल अग्रवाल आइया। वघेरवाल पोरवाल देशवाल छाइया ॥ सहेलवाल दिल्लिवाल सेतवाल जातिके। वढेलवाल पुष्पमाल श्री श्रीमाल पांतिके ॥८॥ सुओसवाल पल्लिवाल चूरुवाल चौसखा। पद्मावतीय पोरवाल हूंसरा अठैसखा। गंगेरवाल बंधुराल तोर्णवाल सोहिला। करिंदवाल पच्चिवाल मेडवाल खोहिला ॥९॥ लवेंचु

और माहुरे महेसुरी उदार हैं। सुगोललार गोलपूर्व गोलहू सिंघार हैं॥ बंघनौर मागधी विहारवाल गूजरा। सुखंड राग होय और जानराज धूसरा ॥१०॥ भुराल और मुराल और सोरठी चितौरिया। कपोल सोमराठ वग्र्ग हूमड़ा नागौरिया ॥ सीरीगहोड़ भंडिया कनौजिया अजोधिया। मिवाड मालवान और जोघड़ा समोधिया॥११॥ सुभट्टनेर रायवद्ध नागरा रूघाकरा। सुकंथ रारु जालु रारु वालमीक भाकरा॥ पमार लाड़ चोड़ कोड़ गोड़ मोड़ संभरा। सु खंडिआतः श्री खंडा चतुर्थ पंचमं भगा ॥ १२ ॥ सु रत्नकार भोजकार नारसिंघ हैं पुरी। सु जंबूवाल और क्षेत्र ब्रह्म वैश्य लौंजुरी ॥ सु आइ हैं चुरासि जाति जैनधर्मकी धनी। सबै विराजी गोटियों जु इंद्रकी सभा बनी ॥ १३ ॥ सुमाल लेनको अनेक भूपलोग आवहीं। सु एक एकतें सुमाग मालको बढ़ावहीं ॥ कहैं जु हाथ जोरि जोरि नाथ माल दीजिये। मगाय देउँ हेमरत्न सो भंडार कीजिये ॥ १४ ॥ बघेलवाल वाँझड़ा हजार बीस देत हैं। हजार दें पचास पोरवार फेरि लेत हैं। सु जैसवाल लाख देत माल लेत चोंपसों। जु दिल्लिवाल, दोय लाख देत हैं अगोपसों ॥ १५ ॥ सु अग्रवाल बोलिये जु माल मोह दीजिये। दिनार देहु एक लक्ष सो गिनाय लीजिये। खँडेलवाल बोलिया जु दोय लाख देउगो। सुवाँटि केत मोलमैं जिनेन्द्रमाल लेउँगो ॥ १६ ॥ जु संभरी कहैं सु मेरि खानि लेहु जायकें। सुवर्ण खानि देत हैं चितौड़िया बुलायके ॥ अनेक भूप गांव देत रायसो चँदेरिका। खजान खोलि कोठरीं सु देत हैं अमेरिका ॥ १७ ॥ सुगौड़वाल यों कहै गयन्द बीस लीजिये। मड़ाय देउं हेमदन्त माल मोहि दीजिये ॥ पमारके

तुरंग साजि देत हैं विनागने। लगाम जीन पाहुड़े जड़ाउ हेमके बने ॥ १८ ॥ कनौजिया कपूर देत गाड़िया भरायके। सुहीर मोति लाल देत ओशवाल आयके ॥ सु हूंमड़ा हँकारहीं हमें न माल देउगे। भराइये जिहाजमें कितेक दाम लेउगे ॥ १९ ॥ कितेक लोग आयके खड़ेते हाथ जोरिकें। कितेक भूप देखिके चले जु वाग मोरिकें ॥ कितेक सूम यों कहैं जु कैसें लक्षि देत हौ। लुटाय माल आपनों सु फूलमाल लेत हौ ॥ २० ॥ कई प्रवीन श्राविका जिनेन्द्र को बधावहीं। कई सुकंठ रागसों खड़ी जु माल गावहीं। कईसु नृत्यकों करैं नहैं अनेक भावहीं। कई मृदङ्ग तालपै सु अंगको फिरावहीं ॥ २१ ॥ कहैं गुरू उदार धी सु यों न माल पाइये ॥ कराइये जिनेन्द्र यज्ञ विंह्र भराइये ॥ चलाइयें जु संघ जात संघही कहाइये। तवै अनेक पुण्यसों अमोल माल पाइये ॥ २२ ॥ सँवोधि सर्व गोटिसो गुरू उतारकें लई। बुलाय कें जिनेंद्रमाल संघ रायको दई। अनेक हर्षसो करैं जिनेंद्र तिलक पाइये। सुमाल श्रीजिनेंद्रकी विनोदीलाल गाइये ॥२३॥

दोहा।

माल भई भगवन्तकी, पाई संग नरिन्द।
लालविनोदी उच्चरैं, सबको जयति जिनंद ॥२४॥
माला श्री जिनराजकी, पावै पुण्य सँयोग।
यश प्रघटै कीरति बढ़ै, धन्य कहैं सबलोग ॥ २५॥

फूलमाल पचीसी समाप्त ॥

(१२) प्रातःकालकी स्तुति।
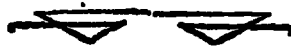
वीतराग सर्वज्ञ हितंकर भविजनकी अब पूरो आस ॥
ज्ञानभानुका उदय करो मम मिथ्यातमका हो अब नाश ॥ १ ॥
जीवोंकी हम करुणा पाले झूठ वचन नहीं कहै कदा ॥
परधन कबहूं न हरहुं स्वामी ब्रह्मचर्य व्रत रहे सदा ॥ २ ॥
तृष्णा लोभ बढ़ै न हमारा तोष सुधा निधि पिया करें ॥
श्री जिन धर्म हमारा प्यारा तिसकी सेवा किया करें ॥ ३ ॥
दूर भगावें बुरी रीतियां सुखद रीतका करें प्रचार ॥
मेल मिलाप बढावै हमसब धर्मोन्नतिका करे प्रचार ॥ ४ ॥
सुखदुःखमें हम समता धारें रहें अचल जिमि सदा अटल ॥
न्याय मार्गको लेश न त्यागें वृद्धि करें निज आतमबल ॥५॥
अष्टकर्म जो दुःख देते हैं तिनके छयका करें उपाय ॥
नाम आपका जापै निरंतर विघ्नरोग सब ही टर जाय ॥ ६ ॥
आतम शुद्ध हमारा होवे पाप मैल नहीं चढ़े कदा ॥
विद्याकी हो उन्नति हममें धर्म ज्ञान हूं बढ़े सदा ॥ ७ ॥
हाथ जोड़ कर शीस नवावे तुमको भविजन खड़े खड़े ॥
यह सब पुरो आस हमारी चरण शरणमें आन पड़े ॥ ८ ॥

इति प्रातःकाल स्तुति समाप्त ।

(१३) सायंकालकी स्तुति।

हे सर्वज्ञ ज्योतिमय गुणमणि बालक जनपर करहु दया।
कुमति निशा अधयारीकारी सत्य ज्ञान रवि छिपा दिया ॥ १॥
क्रोध मान अरु माया तृष्णा यह बट मार फिरे चहुँ ओर ॥
लूट रहे जग जीवनको यह देख अवधा तमका जोर ॥ २ ॥
मारग हमको सूझे नांहि ज्ञान बिना सब अंध भये ॥
घटमें आप विराजो स्वामी बालक जन सब खड़े नये ॥ ३ ॥
सतपथ दर्शक जनमन हर्षक घट २ अंतरयामी हो ॥
श्री जिनधर्म हमारा प्यारा तिसके तुम ही स्वामी हो ॥ ४ ॥
घोर विपतमें आन पड़ा हूं मेरा बेड़ा पार करो ॥
शिक्षाका हो घर २ आदर शिल्पकला संचार करो । ५ ॥
मेलमिलाप बढावें हम सब द्वेष भाव घटा घटा ॥
नांहि सतावें किसी जीवको प्रती क्षीरको गटागटी ॥ ६ ॥
मातपिता अरु गुरूजनकी हम सेवा निशदिन कथा करें ॥
स्वारथ तजकर सुख दे परको आशिश सबकी लिया करें ॥७॥
आतम शुद्ध हमारा होवे पाप मैल नहीं चढ़े कदा ॥
विद्याकी हो उन्नति हममें धर्म ज्ञान हू बढे सदा ॥ ८ ॥
दोऊ कर जोड़े बालक ठाड़े करें प्रार्थना सुनीये दास ॥
सुखसे बीते रैन हमारी जिनमतका हो शीघ्र प्रभाव ॥ ९ ॥
मातपिताकी आज्ञा पालें गुरुकी भक्ति धरें उरमें ॥
रहें सदा हम करतव्य तत्पर उन्नति करदें पुर २ में ॥ १०॥

समाप्त।

(१४) भक्तामर स्तोत्र संस्कृत ।

वसन्ततिलका ।

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणामुद्योतकं दलितपापतमोवितानम् । सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादावालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥१॥ यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोध दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः । स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥ २ ॥ बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठ स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् । बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्बमन्यः कइच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥ वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र शशाङ्ककान्तान् कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या । कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रं को वा तरीतुमलम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥ ४ ॥ सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः । प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रम् नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥ अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् । यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति तच्चारुचूतकलिकानिकरैकहेतु ॥६॥ त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम् । आक्रान्तलोक मलिनील मशेषमाशु सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥७॥ मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेदमारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात् । चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ॥ ८ ॥ आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति । दूरे

सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥९॥ नात्यद्भुतं भुवनभूषणभूत नाथ भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभीष्टुवन्तः। तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥ १० ॥ दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः। पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धोः क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ॥११॥ यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत। तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥१२॥ वक्त्रं क ते सुरनरोरगनेत्रहारि निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम्। बिम्बं कलङ्कमलिनं क निशाकरस्य यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ॥१३॥ सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलापशुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति। ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥ चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभिर्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्। कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥ १५ ॥ निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि। गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ॥१६॥ नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति। नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः सूर्यातिशायिमहिमासि मुनींद्र लोके ॥१७॥ नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम्। विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति विद्योतयज्जगदपूर्वशशाङ्कबिम्बम् ॥१८॥ किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमःसु नाथ। निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः

॥१९॥ ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु। तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्वं नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥ मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमोति। किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥२१॥ स्त्रीणां शतानि शतशो जनयंति पुत्रान् नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता। सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥ त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस—मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात्। त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र पन्थाः ॥२३॥ त्वामव्ययं विभुमचिंत्यमसंख्यमाद्यं ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनंगकेतुम्। योगीश्वर विदितयोगमनेकमेकं ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदंति संतः ॥२४॥ बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात्। धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानात् व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥ तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय तुभ्यं नमस्त्रिजगतःपरमेश्वराय तुभ्यं नमो जिनभवोदधिशोषणाय ॥२६॥ को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषैस्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश। दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥ उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूखमाभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्॥ स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं बिंब रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ॥२८॥ सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्। बिंबं वियद्विलसदंशुलतावितानं तुंगोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ॥२९॥ कुन्दावदातचलचामरचारुशोभं विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम्।

उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारिधार–मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम्
॥३०॥ छत्रत्रयं तव विभाति शशांककांत–मुच्चैःस्थितं स्थगितभानु-
करप्रतापम्। मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभम् प्रख्यापयत्त्रिजगतः परं-
मेश्वरत्वम् ॥३१॥ गम्भीरताररवपूरितदिग्विभाग–स्त्रैलोक्यलोकशुभ-
संगमभूतिदक्षः। सद्धर्मराजजयघोषणघोषकः सन् खे दुन्दुभिर्ध्वनति
ते यशसः प्रवादी ॥३२॥ मन्दारसुन्दरनमेरुसुपारिजातसन्तानकादिकु-
सुमोत्करवृष्टिरुद्धा। गन्धोदबिन्दुशुभमन्दमरुत्प्रपाता दिव्या दिवः पतति
ते वचसां ततिर्वा ॥३३॥ शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते लोक-
त्रयद्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती। प्रोद्यद्दिवाकरनिरन्तरभूरिसंख्या दीप्त्या
जयत्यपि निशामपि सोमसौम्या ॥३४॥ स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्टः
सद्धर्मतत्त्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्याः। दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व-
भाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ॥ ३५ ॥ उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्ज-
कान्ती पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ। पादौ पदानि तव यत्र
जिनेन्द्र धत्तः पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥ इत्थं यथा
तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य। यादृक्प्रभा
दिनकृतः प्रहतान्धकारा तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ॥३७॥
श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूलमत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम्। ऐ-
रावताभमिभमुद्धतमापतन्तं दृष्ट्वा भयं भवती नो भवदाश्रितानाम् ३८।
भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते
॥३९॥ कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पं दावानलं ज्वलितमुज्ज्वल-
मुत्स्फुलिङ्गम्। विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं त्वन्नामकीर्तन-
जलं शमयत्यशेषम् ॥४०॥ रक्तेक्षणं समदकोकिलकण्ठनीलं क्रोधो-

द्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् । आक्रामति क्रमयुगेण निरस्तशङ्क-स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१॥ वल्गत्तुरङ्गगजगर्जित-भीमनादमाजौबलं बलवतामपि भूपतीनाम् । उद्यद्दिवाकरमयूखशिखा-पविद्धं त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥ ४२ ॥ कुन्ताग्रभि-न्नगजशोणितवारिवाहवेगावतारणातुरयोधभीमे । युद्धे जयं विजित-दुर्जयजेयपक्षास्त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥ अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्रपाठीयपीठभयदोल्बणवाडवाग्नौ । रङ्गत्तरङ्ग-शिखरस्थितयानपात्रास्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्व्रजन्ति ॥४४॥ उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीवि-ताशाः । त्वत्पादपङ्कजरजोमृतदिग्धदेहा मर्त्या भवन्ति मकरध्वज-तुल्यरूपाः ॥४५॥ आपादकण्ठमरुशृङ्खलवेष्टिताङ्गा गाढं वृहन्निगड कोटिनिघृष्टजङ्घाः । त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥४६॥ मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहिसंग्राम-वारिधिमहोदरबन्धनोत्थम् । तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४७॥ स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां भक्त्या मया रुचिरवर्णविचित्रपुष्पाम् । धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं तं मानतुङ्गमवशासमुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥

इति श्रीमानतुङ्गाचार्यविरचितमादिनाथस्तोत्रं समाप्तम् ।

(१५) भाषा भक्तामर ।

(स्वर्गीय पण्डित हेमराजजीकृत)

आदिपुरुष आदीश जिन, आदि सुविधिकरतार।
धरमधुरंधर परमगुरु, नमो आदि अवतार ॥ १ ॥

सुरनत मुकुट रतन छवि करैं। अंतर पापतिमिर सब हरैं॥ जिनपद वंदों मनवचकाय। भवजलपतित-उधरनसहाय॥ श्रुतिपारग इंद्रादिक देव। जाकी थुति कीनी कर सेव॥ शब्द मनोहर अरथ विशाल। तिस प्रभुकी बरनों गुनमाल॥ विबुधवंद्यपद मैं मतिहीन। होय निलज्ज थुति-मनसा कीन। जलप्रतिबिंब बुद्ध को गहै। शशिमंडल बालक ही चहै॥ गुनसमुद्र तुमगुन अविकार। कहत न सुरगुरु पावैं पार॥ प्रलयपवनउद्धत जलजंतु। जलधि तिरै को भुज बलवंतु॥ सो मैं शक्तिहीन थुति करूं। भक्तिभाववश कछु नहिं डरूं॥ ज्यों मृग निज सुत पालन हेत। मृगपतिसन्मुख जाय अचेत॥ मैं शठ सुधीहँसनको धाम। मुझ तुव भक्ति बुलावै राम॥ ज्यों पिक अंबकली परभाव। मधुऋतु मधुर करै आराव॥ तुमजस जंपत जिन छिनमाहिं। जनमजनमके पाप नशाहिं॥ ज्यों रवि उगै फटै ततकाल। अलिवत नील निशातम-जाल॥ तुव प्रभावतैं कहूँ विचार। होसी यह थुति जनमनहार॥ ज्यों जल कमलपत्रपै परै। मुक्ताफलकी दुति विस्तरै॥ तुमगुन-महिमा हतदुखदोष। सो तो दूर रहो सुखपोष॥

पापविनाशक है तुमनाम । कमलविकाशी ज्यों रविधाम ॥ नहिं अचंभ जो होंहिं तुरंत । तुमसे तुमगुण बरनत संत ॥ जो अधीनको आप समान । करै न सो निंदित धनवान ॥ इकटक जन तुमको अविलोय । और विर्षे रति करे न सोय ॥ को करि खीर-जलधिजलपान । छारनीर पीवै मतिमान ॥ प्रभु तुम वीतराग गुन-लीन । जिन परमानु देह तुम कीन ॥ हैं तितने ही ते परमान । यातैं तुमसम रूप न आन ॥ कहँ तुममुख अनुपम अविकार । सुर-नरनागनयनमनहार ॥ कहां चंद्रमंडल सकलंक । दिनमें ढाकपत्रसम रंक ॥ पूरनचंद्र जोति छविवंत । तुमगुन तीनजगत लंघंत ॥ एकनाथ त्रिभुवन आधार । तिन विचरत को करै निवार ॥ जो सुरतिय विभ्रम आरंभ । मन न डिग्यो तुम तौ न अचंभ ॥ अचल चलावै प्रलय समीर । मेरुशिखर डगमगय न धीर ॥ धूमरहित बाती गत-नेह । परकाशै त्रिभुवन घर येह ॥ बातगम्य नाहीं परचंड । अपर दीप तुम बलो अखंड ॥ छिपहु न लुपहु राहुकी छाहिं । जगपरका-शक हो छिनमाहिं ॥ घन अनवर्त्त दाह विनिवार । रवितैं अधिक धरो गुणसार ॥ सदा उदित विदलिततममोह । विघटित मेघ राहु अविरोह ॥ तुम मुखकमल अपूरबचद । जगतविकाशी जोति अमंद ॥ निशदिन शशिरविको नहिं काम । तुममुखचंद हरै तमधाम ॥ जो स्वभावतैं उपजै नाज, सजल मेघतैं कौनहु काज ॥ जो सुबोध सोहै तुममाहिं । हरि हर आदिकमें सो नाहिं ॥ जो दुति महारतनमें होय । काचखंड पावै नहिं सोय ॥

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया, स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया । कछू न तोहि देखके जहां तुही विशेखिया

मनोग चितचोर और मूलहू न देखिया॥ अनेक पुत्रवंतिनी नितंबिनी सपूत हैं, न तो समान पुत्र और माततैं प्रसूत है। दिशा धरंत तारिका अनेक कोटि को गिनै, दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जनै॥ पुरान हो पुमान हो पुनित पुन्यवान हो, कहैं मुनिश अंधकारनाशको सुमान हो। महंत तोहि जानके न होय वश्य कलके, न और मोख मोखपंथ देव तोहि टालके॥ अनंत नित्य चित्तके अगम्य रम्य आदि हो, असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो॥ महेश कामकेतु जोग ईश जोग ज्ञान हो, अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संयमान हो। तुही जिनेश बुद्ध है सुबुद्धिके प्रमानतैं, तुही जिनेश शंकरो जगत्रिये विधानतैं। तुही विधात है सही सुमोखपंथ धारतैं, नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थके विचारतैं॥ नमो करूं जिनेश तोहि आपदा निवार हो, नमो करूँ सुभूरि-भूमिलोकके सिंगार हो। नमो करूँ भवाब्धिनीरराशिशोखहेतु हो, नमो करूँ महेश तोहि मोखपंथ देतु हो॥

तुम जिन पूरनगुनगनभरे। दोप गरबकरि तुम परिहरे॥ और देवगन आश्रय पाय। सुपन न देखे तुम फिर आय॥ तरुअशोकतर किरन उदार। तुमतन शोभित है अविकार॥ मेघ निकट ज्यों तेज फुरंत। दिनकर दिपै तिमिर निहनंत॥ सिंहासन मनिकिरनविचित्र। तापर कंचनवरन पवित्र॥ तुमतन शोभित किरनविथार। ज्यों उदयाचल रवितमहार॥ कुंदपुहुपसितचमर ढरंत। कनक वरन तुमतन शोभंत॥ ज्यों सुमेरुतट निर्मल कांति। झरना झरैं नीर उमगांति॥ ऊँच रहैं सूर दुति लोप। तीन छत्र तुम दिपैं अगोप॥ तीन लोककी प्रभुता कहैं। मोती झालरसों छवि लहैं॥ दुंदुभि शब्द गहर गंभीर। चहुँदिश होय तुम्हारे धीर॥

त्रिभुवनजन शिवसंगम करे। मानों जय जय रव उच्चरै॥ मंद पवन गंधोदक इष्ट। विविध कल्पतरु पुहुपसुवृष्ट॥ देव करैं विकसित दल सार। मानों द्विजपंकति अवतार॥ तुमतन-भ मंडल जिनचंद। सब दुतिवंत करत हैं मन्द॥ कोटि शंख रवितेज छिपाय। शशिनिर्मलनिशि करे अछाय॥ स्वर्गमोखमारगसंकेत। परमधरम उपदेशन हेत॥ दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध। सवभाषागर्भित हितसाध॥

विकसितसुवरनकमलदुति, नखदुति मल चमकाहिं। तुमपद पदवी जहँ धरैं, तहँ सुर कमल रचाहिं॥ ऐसी महिमा तुम विषै, और धरै नहिं कोय। सूरजमें जो जोत है, नहिं तारागन होय॥

षट्पद।

मदअवलिप्तकपोल-मूल अलिकुल झंकारैं। तिन सुन शब्द प्रचंड, क्रोध उद्धत अति धारैं॥ कालवरन विकराल, कालवत सनमुख आवै। ऐरावत सौ प्रबल, सकल जन भय उपजावै। देखि गयंद न भय करै, तुम पद महिमा लीन। विपति रहित सम्पति सहित, वरतै भक्त अदीन॥ अति मदमत्त गयंद, कुम्भथल नखन विदारै। मोती रक्त समेत, डारि भूतल सिंगारै॥ बांकी दाढ़ विशाल, वदनमें रसना लोलै। भीम भयानकरूप देखि, जन थरहर डोलै। ऐसे मृगपति पग तलैं, जो नर आयो होय॥ शरन गये तुम चरनकी, बाधा करै न सोय॥ प्रलयपवनकर उठी आग जो तास पटंतर। वमैं फुलिंग शिखा, उतंग परजलैं निरंतर॥ जगत समस्त निगल्ल, भस्मकर हैगी मानों। तड़तड़ाट दव अनल, जोर चहुँदिशा उठानों॥ सो इक छिनमें उपशमै, नामनीर तुम लेत।

होय सरोवर परिनमै, विकसित कमल समेत ।। कोकिलकंठ समान, श्याम तन क्रोध जलंता । रक्तनयन फूकार, मारविषकन उगलंता ।। फनको ऊंचो करे, वेग ही सनमुख धाया । तब जन होय निशंक, देख फनपतिको आया ।। जो चांपै निज पांवतैं, व्यापै विष न लगार । नागदमनि तुम नामकी, है जिनके आधार । जिस रनमाहिं भयान, शब्द कर रहे तुरंगम । घनसे गज गरजाहिं, मत्त मानों गिरि जंगम ।। अति कोलाहलमाहिं, बात जहँ नाहिं सुनीजै । राजनको परचंड, देख बल धीरज छीजै ।। नाथ तिहारे नामतैं, सो छिनमाहिं पलाय । ज्यों दिनकर परकाशतैं, अंधकार विनशाय ।। मारे जहां गयंद, कुंभ हथियार विदारे । उमगे रुधिर प्रवाह, वेग जलसे विस्तारे ।। होय तिरन असमर्थ, महाजोधा बल पूरे । तिस रनमें जिन तोय, भक्त जे हैं नर सूरे ।। दुर्जय अरिकुल जीतके, जय पावैं निकलंक । तुम पदपंकज मन बसैं, ते नर सदा निशंक ।। नक्र चक्र मगरादि, मच्छकरि भय उपजावै । जामें वड़वा अग्नि, दाहतैं नीर जलावै । पार न पावै जास, थाह नहिं लहिये जाकी । गरजै अतिगंभीर, लहरकी गिनति न ताकी ।। सुखसों तिरैं समुद्रको, जे तुमगुन सुमिराहिं । लोल कलोलनके शिखर, पार यान ले जाहिं । महा जलोदर रोग, भार पीड़ित नर जे हैं । वात पित्त कफ कुष्ट, आदि जो रोग गहे हैं ।। सोचत रहैं उदास, नाहिं जीवनकी आशा । अति घिनावनी देह, धरैं दुर्गंधनिवासा ।। तुम पदपंकजधूलको, जो लावैं निजअंग ।। ते निरोग शरीर लहि, छिनमें होय अनंग ।। पांव कंठतैं जकर, बांध सांकल अति भारी । गाढ़ी बेड़ी पैरमाहिं, जिन जांघ

विदारी। भूख प्यास चिंता शरीर, दुख जे बिललाने। सरन नाहिं जिन कोय, भूपके बंदीखाने॥ तुम सुमरत स्वयमेव ही, बंधन सब खुल जाहिं। छिनमें ते सम्पति लहैं, चिन्ता भय विनसाहिं॥ महामत्त गजराज, और मृगराज दवानल। फनपति रन परचंड, नीरनिधि रोग महाबल॥ बन्धन ये भय आठ, डरपकर मानों नाशै। तुम सुमरत छिनमाहिं, अभय थानक परकाशै॥ इस अपार संसारमें, शरन नाहिं प्रभु कोय। यातैं तुम पद भक्तको, भक्ति सहाई होय॥ यह गुनमाल विशाल, नाथ तुम गुनन सँवारी। विविध वर्णमय पुहुप, गूंथ मैं भक्ति विथारी॥ जे नर पहरैं कंठ, भावना मनमें भावैं। मानतुंग ते निजाधीन, शिव-लछमी पावैं। भाषा भक्तामर कियौ, हेमराज हितहेत। जे नर पढ़ैं सुभावसौं, ते पावैं शिवखेत॥४८॥

समाप्त।

(१६) बारह भावना।

(भूधरदासकृत)

दोहा।

राजा राणा छत्रपति, हथियनके असवार। मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी वार॥ १॥ दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार। मरती वरियां जीवको, कोई न राखनहार॥ २॥ दांम विना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान। कहीं न सुख

संसारमें, सब जग देखो छान ॥ ३ ॥ आप अकेला अवतरे; मरे अकेला होय । यूं कब ही इस जीवका, साथी सगा न कोय ॥४॥ जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपना कोय । पर संपति पर प्रगटये, पर हैं परिजन लोय ॥५॥ दिपे चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह । भीतर यासम जगत्में, और नहीं घिनगेह ॥६॥

॥ सोरठा ॥

मोह नींदके जोर, जगवासी घूमें सदा । कर्म चोर चहुं ओर, सरवस लूटें सुध नहीं ॥ ७ ॥ सतगुर देय जगाय. मोह-नींद जब उपशमें । तब कुछ बने उपाय, कर्म चोर आवत रुकें ॥८॥

॥ दोहा ॥

ज्ञान दीप तप तेल भर, घर सोधे भ्रम छोर । याविधि विन निकसें नहीं, बैठे पूर्व चोर ॥ ९ ॥ पंचमहाव्रत संचरण, सुमति पंच परकार । प्रबल पंच इन्द्री विजय, धार निर्जरा सार ॥१०॥ चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान । तामें जीव अनादिसे, भरमत है विन ज्ञान ॥११॥ यांचे सुरतरु देय सुख, चिंतन चिंता रैन । विन याचे विन चिंतवे, धर्मसकल सुख दैन ॥१२॥ धनकन कंचन राजसुख, सबै सुलभकर जान, दुर्लभ है संसारमें, एक यथारथ ज्ञान ॥ १३ ॥

॥ इति संपूर्णम् ॥

(१७) बारहभावना ।

(बुधजनदास कृत)

गीताछन्द ।

जेती जगतमें वस्तु तेती अथिर पर्ययते सदा । परणमनराखन न समरथ इन्द्र चक्री मुनि कदा ॥ तन धन यौवन सुत नारी पर कर जान दामिन दमकसा । ममता न कीजे धारि समता मानि जल में नमकसा ॥ १ ॥ चेतन अचेतन परिग्रह सब हुआ अपनी थिति लहें । सो रहें आप करार माफिक अधिक राखे न रहें । अब शरण काकी लेयगा जब इन्द्र नाही रहत हैं । शरण तो इक धर्म आत्म जाहि मुनि जन गहत हैं ॥ २ ॥ सुरनर नरक पशु सकल हेरे कर्म चेरे बन रहे । सुख शास्वता नहीं भासता सब विपतिमें अतिसनरहे ॥ दुःख मानसी तो देवगतिमें नारकी दुःख ही भरे । तिर्यंच मनुज वियोग रोगी शोक संकटमें जरे ॥३॥ क्यों भूलता शठ फूलता है देख पर कर थोकको । लाया कहां लेजायगा क्या फौज भूषण रोकको ॥ जामन मरण तुझ एकले को काल केता होगया । संग और नाही लगे तेरे सीख मेरी सुन भया ॥ ४ ॥ इन्द्रीनसे जाना न जावे तू चिदानन्द अलक्ष है ॥ स्व सम्वेदन करत अनुभव होत तब प्रत्यक्ष है । तन अन्य जड़ जानो सरूपी तू अरूपी सत्य है । कर भेद ज्ञान सो ध्यान धर निज और बात असत्य है ॥ ५ ॥ क्या देख राचा फिरे नाचारूप सुन्दर तन लिया । मल मूत्र भांड़ा भरा गांढ़ा तू न जाने भ्रम गया ॥ क्यों सूग नाहीं लेत आतुर क्यों न चातुरता धरे । तोहि काल गटके

नाहिं अटके छोड़ तुझको गिरपरे ॥६॥ कोई खरा अरु कोई बुरा नाहीं वस्तु विविध स्वभाव है। तू वृथा विकलप ठान उरमें करत राग उपाव है॥ यूं भाव आश्रव बनत तू ही द्रव्य आश्रव सुन कथा। तुझ हेतु से पुद्गल करम बन निमित्त हो देते व्यथा ॥७॥ तन भोग जगत् सरूप लख डर भविक गुर शरणा लिया। सुन धर्म धारा भर्म गारा हर्षि रुचि सन्मुख भया। इन्द्री अनिन्द्री दावि लीनी त्रस रु थावर वध तजा। तब कर्म आश्रव द्वार रोके ध्यान निजमें जा सजा ॥८॥ तज शल्य तीनों वरत लीनो बाह्याभ्यन्तर तप तपा। उपसर्ग सुर नर जड़ पशु कृत सहा निज आत्म जपा। तब कर्म रस बिन होन लागे द्रव्य भावन निर्जरा। सब कर्म हरके मोक्ष वरके रहत चेतन ऊजरा ॥९॥ विच लोक नंतालोक माहीं में द्रव सब भरा। सब भिन्न २ अनादि रचना निमित कारण की करा॥ जिनदेव भासा तिन प्रकाशा भर्मनाशासुन गिरा। सुर मनुष तिर्यंच नारकी हुवे ऊर्ध्व मध्य अधोधरा॥ १० ॥ अनन्त काल निगोद-अटका निकस थावर तनधरा। भूवारि तेज बयार व्है के वेइन्द्रिय त्रस अवतरा॥ फिर हो तेइन्द्री वा चौइद्रीपंचेंद्री मनविन बना। मन युतमनुषगतिहोना दुर्लभ ज्ञान अति दुर्लभघना ॥११॥ न्हाना धोना तीर्थ जाना धर्म नाहीं जपजपा। नग्न रहना धर्म नाहीं धर्म नाहीं तप तपा॥ वर धर्म निज आत्म स्वभाव ताहि विन सब निष्फला। बुधजन धर्म निज धार लीना तिन ही कीना सब भला ॥ १२ ॥

अथिराशरणसंसार है, एकत्वअनित्यहि जान। अशुचि आश्रव संवरा, निर्जर लोक बखान ॥१३॥ बोध औ दुर्लभ धर्म ये, बारह भावन जान। इनको भावे जो सदा, क्यों न लहै निर्वाण॥ १४॥

इति बारह भावना बुधजनकृत सम्पूर्णाः॥

(१८) वैराग्य भावना-

(वज्रनाभि—चक्रवर्तीकी ।)

दोहा ।

बीज राख फल भोगवे, ज्यों किसान जगमाहिं । त्यों चक्री नृप सुख करे, धर्म विसारे नाहिं ॥ १ ॥

जोगीरासा वा नरेन्द्र छन्द ॥

इस विधि राज्य करे नरनायक भोगे पुण्य विशाल । सुख सागरमें रमत निरन्तर जात न जाने काल ॥ एक दिवस शुभ कर्म संयोगे क्षेमकर मुनि वन्दे । देख श्री गुरुके पद पंकज लोचन अलि आनंदे ॥१॥ तीन प्रदक्षिणा दे सिर नायो कर पूजा थुति कीनी । साधु समीप विनय कर बैठो चरणोंमें दिठ दीनी । गुरु उपदेशो धर्म शिरोमणि सुन राजा वैरागे । राजरमा बनतादिक जे रस सो सब नीरस लागे ॥२॥ मुनि सुरज कथनी किरणा वलि-लगत भर्म बुधि भागी । भव तन भोग स्वरूप विचारो परम धर्म्म अनुरागी ॥ या संसार महावन भीतर भरमत ओर न आवे । जन्म मरण जरा दव दाह जीव महा दुःख पावे ॥३॥ कबहू कि जाय नरक पद भूजे छेदन भेदन भारी । कब हूं कि पशु पर्य्याय धरे तहां बध बंधन भयकारी ॥ सुरगतिमें पर सम्पति देखे राग उदय दुःख होई । मानुष योनी अनेक विपतिमय सर्व सुखी नहीं कोई ॥ ४ ॥ कोई इष्ट वियोगी विलखे, कोई अनिष्ट संयोगी । कोई दीन दरिद्री दीखे, कोई तनका रोगी ॥ किस ही घर कलहारी नारी के वैरी सम भाई । किसही के दुःख बाहिर दीखें किस ही

उर दुचिताई ॥५॥ कोई पुत्र बिना नित झूरै कोई मरे तब रोवे। खोटी सम्पतिसे दुःख उपजे नहीं प्राणी सुख सोवे ॥ पुण्य उदय जिन के तिन कै भी नाहीं सदा सुखसाता । यह जगवास अयथार्थ दीखे सब ही हैं दुःख दाता । ६॥ जो संसार विषे सुख होता तीर्थंकर क्यों त्यागें । काहे को शिव साधन करते संयम सो अनुरागें। देह अपावन अथिर घिनावणी इसमें सार न कोई । सागरके जलसे शुचि कीजै तो भी शुद्ध न होई ॥७॥ सप्त कुधातु भरी मल मूतर चर्म लपेटी सोहै । अन्तर देखत या सम जगमें और अपावनको है । नव मल द्वार श्रवें निशिवासर नाम लिये घिन आवे । व्याधि उपाधी अनेक जहां तहां कोन सुधी सुख पावे ॥८॥ पोषत तो दुःख दोष करे अति सोखत सुख उपजावे । दुर्जन देह स्वभाव बराबर मूर्ख प्रीत बढ़ावे ॥ राचन योग्य स्वरूप न याको विरचन योग्य सही है ॥ यह तन पाय महा तप कीजे इसमें सार यही है ॥ ९ ॥ भोग बुरे भव रोग बढ़ावें वैरी हैं जग जी के । वे रस होय विपाक समय अति सेवत लागे नीके ॥ वज्र अग्नि विषसे विषधरसे ये अधिके दुःखदाई । धर्म रत्न के चोर चपल अति दुर्गति पन्थ सहाई ॥१०॥ मोह उदय यह जीव अज्ञानी भोग भले कर जाने। ज्यों कोई जन खाय धतूरा सो सब कंचन माने ॥ ज्यों ज्यों भोग संयोग मनोहर मन वांछित जन पावे । तृष्णा नागिन त्यों त्यों डंके लहर लोभ विष लावे ॥११॥ मैं चक्रीपद पाय निरन्तर भोगे भोगे घनेरे । तो भी तनक भये नहीं पूरण भोग मनोरथ मेरे ॥ राजसमाज महा अघ कारण वैर बढ़ावन हारा । वेश्या सम लक्ष्मी अति चंचल इसका कौन पत्यारा ॥१२॥ मोह महारिपु

वैर विचारो जगजीव संकट डारे। घर कारागृह बनिता बेड़ी परयन जन रखवारे। सम्यग्दर्शन ज्ञानचरणतप ये जियके हितकारी। येही सार असार और सब यह चक्री चित्त धारी ॥१३॥ छोड़े चौदह रत्न नवोनिधि और छोड़े संग साथी। कोटि अठारह घोड़े छोड़े चौरासी लख हाथी॥ इत्यादिक सम्पति बहुतेरी जीर्ण तृणवत् त्यागी। नीति विचार नियोगी सुतको राज दियो बड़भागी ॥१४॥ होय निश्शल्य अनेक नृपति संग भूषण बसन उतारे। श्रीगुरु चरण धरी जिन मुद्रा पंच महाव्रत धारे। धन्य समझ सुबुद्धि जगोतम धन्य यह धीरज धारी। ऐसी सम्पति छोड़ बसे बन तिन पद धोक हमारी॥ १५॥

॥ दोहा ॥

परिग्रह पोट उतार सब, लीनो चारित पन्थ।
निज स्वभाव में थिर भये, वज्रनाभि निर्ग्रंथ ॥१६॥

इति श्रीवज्रनाभि चक्रवर्तीकी वैराग्यभावना सम्पूर्णम्॥

(१९) सूआबत्तीसी।

दोहा।

नमस्कार जिन देवको, करों दुहु करजोर॥ सुवा बतीसी सुरस मैं, कहुं अरिनदल मोर॥१॥ आतम सुआ सुगुरु वचन, पढंत रहैं दिन रैन॥ करत काज अवरीतिके, यह अचरज लखि नैन॥२॥ सुगुरु पढ़ावे प्रेमसों, यह पढत मनलाय॥ घटके पट जो ना खुलै, सब ही अकारथ जाय॥ ३॥

चौपाई।

सुवा पढ़ायो सुगुरु बनाय। करम बनहि छिन जइयो भाय। भूले चूके कबहु न जाहु। लोभ नलिनि पैं दगा न खाहु ॥४॥ दुर्जन मोह दगाके काज। बांधी नलनी तर धर नाज॥ तुम जिन बैठेहु सुवा सुजान। नाज विषयसुख लहि तिहं थान ॥५॥ जो बैठहु तो पकरि न रहियो। जो पकरो तो दृढ जिन गहियो॥ जो दृढ गहो तो उलटि न जइयो। जो उलटो तौ तजि भजि घइयो ॥६॥ इह विधि सुआ पढायो नित। सुवटा पढिके भयो विचित्त॥ पढत रहै निशदिन ये वैन। सुनत लहै सब प्रानी चैन ॥७॥ इक दिन सुवटै आई मनै। गुरु संगत तज भज गये बनै॥ वनमें लोभ नलिन अति बनी। दुर्जन मोह दगाको तनी ॥८॥

ता तरु विषयभोगअन धरे। सुवटे जान्यो ये सुख खरे ॥८॥ उतरे विषयसुखनके काज। बैठ नलिनैंप विलसै राज ॥९॥ बैठो लोभ नलिनपैं जबै। विषय स्वाद रस लटके तबै॥ लटकत तरैं उलटि गये भाव। तर मुंडी ऊपर भये पांव ॥१०॥ नलिनी दृढ पकरै पुनि रहै। मुखतैं वचन दीनता कहै॥ कोउ न बनमें छुडावनहार। नलनी पकरहि करहि पुकार ॥११॥ पढत रहै गुरुके सब वैन। जे जे हितकर सिखये ऐन॥ सुवटा वनमें उड निज जाहु। जाहु तो भूल खता निज खाहु॥१२॥ नलनीके जिन जइयो तीर। जाहु तो तहां न बैठहु वीर॥ जो बैठो तो दृढ निज गहो। जो दृढ गहो तो पकरि न रहो॥ १३॥ जो पकरो तो चुगा न खइयो। जो तुम खावो तो उलटन जइयो। जो उलटो तन भज घइयो। इतनी सीख हृदयमें लहियो"॥ १४॥

ऐसे बचन पढ़त पुन रहै । लोभ नलनि तज भज्यो न चहै ॥ आयो दुर्जन दुर्गति रूप । पकड़े सुवटा सुन्दर भूप ॥ १५ ॥ डारे दुखके जाल मझार । सो दुख कहत न आवै पार ॥ भूख प्यास बहु संकट सहै । परवस परे महा दुख लहै ॥१६॥ सुवटा की सुधि बुधि सब गई । यह तौ बात और कछु भई ॥ आय परे दुख सागर माहिं । अब इततैं कितको भज जाहिं ॥ १७ ॥ केतो काल गयो इह ठौर । सुवटै जियमें ठानी और ॥ यह दुख जाल कटै किहूँ भांति । ऐसी मनमें उपजी खांती ॥१८॥ रात दिना प्रभु सुमरन करै । पाप जाल काटन चित धरै ॥ क्रम क्रम कर काट्यो अघ जाल । सुमरन फल भयो दीनदयाल ॥१९॥ अब इततैं जो भजकें जाऊं । तौ नलनीपर बैठ न खाऊं ॥ पायो दाव भज्यो ततकाल । तज दुर्जन दुर्गति जंजाल ॥ २० ॥ आये उडत बहुर बनमाहिं । बैठे नरभव द्रुमकी छाहिं ॥ तित इक साधु महा मुनिराय धर्म देशना देत सुभाय ॥ २१ ॥ यह संसार कर्मवन रूप । तामहि चेत सुआ अनूप ॥ पढत रहै गुरु बचन विशाल । तौ हू न अपनी करै संभाल ॥ २२ ॥ लोभ नलनपैं बैठे जाय । विषय स्वाद रस लटके आय । पकरहि दुर्जन दुर्गति परै । तामें दुःख बहुत जिय भरै ॥२३॥ सो दुख कहत न आवै पार । जानत जिनवर ज्ञानमझार ॥ सुनतैं सुवटा चौंक्यो आप । यह तो मोहि परयो सब पाप ॥ २४ ॥ ये दुख तौ सब मैं ही सहे । जो मुनिवरने मुखतैं कहे ॥ सुवटा सोचै हिये मझार । ये गुरु सांचे तारनहार ॥ २५ ॥ मैं शठ फिरयो करम वन माहिं । ऐसे गुरु कहुं पाये नाहिं ॥ अब मोहि पुण्य उदै

कछु भयो । सांचे गुरुको दर्शन लयो ॥ २६ ॥ गुरुकी गुणस्तुति वारंवार। सुमिरै सुवटा हिये मझार॥ सुमरत आप पाप भज गयो। घटके पट खुल सम्यक थयो ॥२७॥ समकित होत लखी सब बात। यह मैं यह परद्रव्य विख्यात ॥ चेतनके गुण निजमहि धरे। पुद्गल रागादिक परिहरे ॥२८॥ आप मगन अपने गुण माहिं। जन्म मरण भय जियको नाहिं ॥ सिद्ध समान निहारत हिये। कर्म कलंक सबहि तज दिये ॥२९॥ ध्यावत आप माहिं जगदीश। दुहुंपद एक विराजत ईश ॥ इहविधि सुवटा ध्यावत ध्यान। दिन दिन प्रति प्रगटत कल्यान ॥३०॥ अनुक्रम शिवपद जियको भयो। सुख अनंत विलसत नित नयो ॥ सतसंगति सबको सुख देय। जो कछु हियमें ज्ञान धरेय ॥३१॥ केवलिपद आतम अनुभूत। घट घट राजत ज्ञान संभूत ॥ सुख अनंत विलसै जिय सोय। जाके निजपद परगट होय ॥३२॥ सुवा बत्तीसी सुनहु सुजान। निजपद प्रगटत परम निधान॥ सुख अनंत विलसहु ध्रुव नित्त। 'भैयाकी' विनती धर चित्त ॥३३॥ संवत सत्रह त्रेपन माहिं। अश्विन पहिले पक्ष कहाहिं ॥ दशमीं दशों दिशा परकास। गुरु संगति तैं शिव सुखभास।

इति सुवाबत्तीसी।

---

(२०) एकीभावभाषा।

॥ दोहा छन्द ॥

वादिराज मुनिराजके, चरणकमल चित लाय।
भाषा एकीभावकी, करूं स्वपरसुखदाय ॥

चौबीस मात्रा काव्य छन्द ॥

जो अति एकीभाव भयो मानो अनिवारी । संमुझ कर्म प्रबन्ध करत भव भव दुःखभारी ॥ ताहि तिहारी भक्ति जगत रविजो निरवारैं । सो अब और कलेश कौनसो नाहिं विदारै ॥१॥ तुम जिन जोतिस्वरूप दुरित अन्धियारी निवारी । सो गणेश गुरु कहैं तत्वविद्याधन धारी ॥ मेरे चितधर माहिं वसो तेजोमय यावत । पापतिमर अवकाश वहां सो क्योंकर पावत ॥ २ ॥ आनंद आंसू वदन धोय तुम सो चित सानें । गदगद सुर सों सुयश मंत्र पढ़ पूजा ठानै ॥ ताके बहुविधि व्याधव्याल चिर काल निवासी । भाजैं थानक छोड़ देहबमियोंके बासी ॥३॥ दिवसे आवनहार भये भवि भाग उदयबल । पहले ही सुर आय कनक मय कीन महीतल ॥ मन गृह ध्यान दुवार आय निवसे जगनामी । जो सुवर्ण तन करो कौन यह अचरज स्वामी ॥ ४ ॥ प्रभु सब जगकें विना हेतु बंधव उपकारी । निरावर्ण सर्वज्ञ शक्ति जिनराज तिहारी ॥ भक्ति रचित मम चित्त सेज नित बास करोगे । मेरे दुःख सन्ताप देख किम धीर धरोगे ॥ ५ ॥ भवनन में चिर काल भ्रमो कछु कही न जाई । तुम थुति कथा पियूष वापिका भागन पाई ॥ शशितुषार घनसार हार शीतल नहिं जा सम । करत न्हौन तिस माहिं क्यों न भव ताप बुझै मम ॥६॥ श्रीविहार परिवाह होत शुचि रूप सकल जग । कमल कनक आभाव सुरभि श्रीवास धरत पग ॥ मेरो मन सर्वंग परस प्रभुको सुख पावै । अब सो कौन कल्याण जो न दिन दिन ढिग आवै ॥७॥ भव तज सुखपद बसे काम मद सुभट संघारे । जो तुमको निर्खत

सदा प्रियदास तिहारे। तुम वचनामृत पान भक्ति अंजुलिसों पीवै। तिसे भयानक क्रूर रोग रिपु कैसे छीवै ॥ ८ ॥ मानथंभ पाषाण आन पाषाण पटंतर। ऐसे और अनेक रत्न दीखैं जग अन्तर। देखत दृष्टि प्रमाण मानमद तुरत मिटावै। जो तुम निकट न होय शक्ति यह क्यों कर पावै ॥ ९ ॥ प्रभुतन पर्वत परस पवन उरमें निबहे है। तासों ततक्षण सकल रोगरज बाहिरहै है। जाके ध्याना हूत बसो उर अंबुज माहीं। कौन जगत उपकार करण समरथ सो नाहीं ॥ १० ॥ जन्म जन्मके दुःख सहे सबते तुम जानो। याद किये मुझ हिये लगैं आयुध से मानो। तुम दयालु जगपाल स्वामी मैं शरण गही है। जो कुछ करना होय करो परमाण वही है ॥ ११ ॥ मरण समय तुम नाम मंत्र जीवक तैं पायो। पापाचारी स्वान प्राण तज अमर कहायो। जो मणि माला लेय जपै तुम नाम निरन्तर। इन्द्र संपदा लहै कौन संशय इस अंतर ॥ १२ ॥ जे नर निर्मल ज्ञान मान शुचि चारित साधैं। अनवधि सुख की सार भक्ति ताली नहिं हाथैं। सो शिव वंछिक पुरुष मोक्षपट केम उघारे। मोह मुहर दिढ़करी मोक्षमन्दर के द्वारे ॥१३॥ शिवपुर केरो पंथ पापतम सो अति छायो। दुःख स्वरूप बहु कूप खाड़ सो विकट बतायो ॥ स्वामी सुख सो तहां कौन जनमारग लागै। प्रभु प्रवचन मणिदीप जौन के आगैं आगै ॥१४॥ कर्म पटल भूमाहिं दबी आतम निधि भारी। देखत अति सुख होय विमुखजन नाहिं उघारी ॥ तुम सेवक तत्काल ताहि निश्चय कर धारैं। स्तुति कुदाल सों खोद बंद भू कठिन विदारैं ॥१५॥ स्यादवाद गिर उपज मोक्ष सागर लौं धाई। तुम चरणांबुज

परम भक्तिगंगा सुखदाई । मोचित निर्मल थयोन्होन रुचि पूरव तामैं । अब वह हों न मलीन कौन जिन संशय यामैं ॥१६॥ तुम शिवसुखमय प्रकट करत प्रभु चिन्तवन तेरो । मैं भगवान् समान भाव यों बरतै मेरो ॥ यदपि झूठ है तदपि तृपत निश्चल उपजावै । तुम प्रसाद सकलंक जीव वांछित फल पावै ॥१७॥ बचनजलधि तुम देव सकल त्रिभुवन में व्यापै । भंग तरंगिनी विकथ वाद मल मलिन उथापै ॥ मन सुमेरु सों मथै ताहि जे सम्यकज्ञानी । परमामृत सों तृपत होहिं ते चिर लों प्राणी ॥१८॥ जो कुदेव छवि हीन वसन भूषण अभिलाषै । वैरी सों भयभीत होय सो आयुध राखै ॥ तुम सुन्दर सर्वंग शत्रु समरथ नहिं कोई ॥ भूषण वसन गदादि ग्रहण काहे को होई ॥ १९॥ सुरपति सेवा करै कहा प्रभु प्रभुता तेरी । सोशलाघना लहै मिटै जग सों जग फेरी । तुम भव जलधि जहाज तोहि शिव कंत उचरिये । तुही जगत् जनपाल नाथ थुति की थुति करिये ॥ २० ॥ बचन जाल जड़ रूप आप चिन्मूरति झांई । तातै थुति आलाप नाहिं पहुंचै तुम तांई । तो भी निष्फल नाहिं भक्ति रस भीने वायक । सन्तन को सुरतरु समान वांछित बर दायक ॥ २१॥ कोप कभी नहिं करो प्रीत कबहुं नहिं धारो । अति उदास वेचाह चित्त जिनराज तिहारो ॥ तदपि आन जग बहै वैर तुम निकट न लहिये । यह प्रभुता जग तिलक कहां तुम विन सरधैये ॥२२॥ सुर तिय गावै सुयश सर्व गति ज्ञान स्वरूपी ॥ जो तुम को थिर होही नमैं भवि आनन्द रूपी ॥ ताहि क्षेमपुर चलन बाट बाकी नहिं हो है । श्रुति के सुमरण माहिं सो न कबं ही नर मोहै ॥२३॥ अतुल चतुष्टयरूप

तुमैं जो चितमें धारै ॥ आदर सो तिहुं काल मांहि जग थुति विस्तारै ॥ सो सुकृत शिवपन्थ भक्ति रचना कर पूरैं । पंचकल्याणक ऋद्धि पायनिश्चय दुख चूरै ॥२४॥ अहो जगत पति पूज्य अवधि ज्ञानी मुनि तारे । तुमगुण कीर्तन मांहि कौन हम मन्द विचारे ॥ स्तुति छल सों तुम विषे देव आदर विस्तारे । शिव सुख पूरण हार कल्प तरु येही हमारे ॥२५॥ वादिराज मुनिराज शब्दविद्या के स्वामी । वादिराज मुनिराज तर्कविद्या पति नामी ॥ वादिराज मुनिराज काव्य करता अधिकारी । वादिराज मुनिराज बड़े भविजन उपकारी ॥ २६ ॥

॥ दोहा छन्द ॥

मूल अर्थ बहुविधि कुसुम, भाषा सूत्र मझार ॥
भक्तिमाल भूधर करी, करो कण्ठ सुखकार ॥ ॥

॥ इति एकीभावभाषा स्तोत्रम् ॥

(२१) नामावली स्तोत्र ।
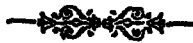
छंद नयमालिनी १६ मात्रा ।

जय जिनंद सुख कंद नमस्ते । जय जिनंद जिन फंद नमस्ते ॥ जय जिनंद वरबोध नमस्ते । जय जिनंद जित क्रोध नमस्ते ॥ १ ॥ पाप ताप हर इन्दु नमस्ते । अर्ह वरन जुत विन्दु नमस्ते ॥ शिष्टाचार विशिष्ट नमस्ते । इष्ट मिष्ट उतकृष्ट नमस्ते ॥ २ ॥ पर्म धर्म वर शर्म नमस्ते । मर्म भर्म घन घर्म नमस्ते ॥

दृगविशाल वर भाल नमस्ते। हृद दयाल गुनमाल नमस्ते॥ ३॥ शुद्धबुद्ध अविरुद्ध नमस्ते। रिद्धिसिद्धि वर वृद्ध नमस्ते॥ वीतराग विज्ञान नमस्ते। चिद्विलास धृत ध्यान नमस्ते॥ ४॥ स्वच्छ गुणांबुधि रत्न नमस्ते। सत्व हितंकर यत्न नमस्ते॥ कुनयकरी मृगराज नमस्ते। मिथ्या खग वर बाज नमस्ते॥५॥ भव्य भवोदधि तार नमस्ते। शर्मामृत सित सार नमस्ते॥ दरश ज्ञान सुख-वीर्य नमस्ते। चतुरानन धर धीर्य नमस्ते॥६॥ हरिहर ब्रह्मा विष्णु नमस्ते। मोह मर्द मनु जिष्णु नमस्ते॥ महा दान महभोग नमस्ते। महा ज्ञान मह जोग नमस्ते॥७॥ महा उग्र तप सूर नमस्ते। महा मौन गुण भूरि नमस्ते॥ धरम चक्रि वृष केतु नमस्ते। भवसमुद्र शत सेतु नमस्ते॥८॥ विद्याईश मुनीश नमस्ते। इन्द्रादिक नुत शीस नमस्ते॥ जय रत्नत्रय राय नमस्ते। सकल जीव सुखदाय नमस्ते॥९॥ अशरण शरण सहाय नमस्ते। भव्य सुपन्थ लगाय नमस्ते॥ निराकार साकार नमस्ते। एकानेक अधार नमस्ते॥१०॥ लोकालोक विलोक नमस्ते। त्रिधा सर्व गुण थोक नमस्ते॥ सल्ल दल्ल दल मल्ल नमस्ते। कल्ल मल्ल जित छल्ल नमस्ते॥ ११॥ भुक्ति मुक्ति दातार नमस्ते। उक्ति सुक्ति श्रृंगार नमस्ते॥ गुण अनन्त भगवन्त नमस्ते। जै जै जै जयवन्त नमस्ते॥१२॥

इति पठित्वा जिनचरणाग्रे परि पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

[२२] हुक्का निषेध पच्चीसी।

॥ दोहा ॥

वंदो वीर जिनेश पद, कह्यो धर्म जगसार।
वरते पंचकालमें, जगत् जीव हितकार ॥१॥

ताहि न त्यागे धूमे सो, जारे उर निज जान।
देखो चतुर विचारके, तिनसम कौन अयान ॥२॥

चौपाई छन्द।

हैं जगमें पुरुषारथ चार, तिनमें धर्म पदारथ सार। जाके सधें होय सब सिद्ध, या विन प्रगटै एक न रिद्ध ॥३॥ सो पुनि दया रूप जिन कहो, करुणाविन कहुं धर्म न लहो। यामें छहों काय की घात, लहिये कहां दया की बात ॥ ४ ॥ सो अब सुनों सबै विरतंत, सुनि के त्याग करो मतिवन्त। हरित कायकी उत्पत्ति येह, अग्नि संयोग भूमि गनिलेह ॥५॥ अग्नि नीर है याको साज, इनविन सरै नहीं यह काज। काढत धूम वदन तें जान, होय समीर कायकी हान ॥ ६ ॥ इह विधि थावर दया न होई, त्रसको त्रास होय सुनि सोई। कुंथू आदि जीव या माहिं, खैंचत स्वांस सबै मरजाहिं ॥७॥ उपजैं जीव गुड़ाखू बीच, हुई है तहां त्रसनकी मीच। हिंसा होय महा अघ संच, ऐसे दया पले नहीं रंच ॥८॥ यही बात जाने सब कोय, जहां हिंसा तहां धर्म न होय। बहुरि धर्म नाश भयो जहां, सकल पदारथ विनसे तहां ॥९॥ तातें

१ धूम-धूवां। २ पुरुषार्थ-(धर्म, अर्थ, काम मोक्ष।
३ वदन=मुख। ४ अघ=पाप।

निंद्य जानि यह कर्म, पापमूल खोवे धन धर्म। यामें कोई न दीसें स्वाद, प्रात होत ही आवे याद ॥१०॥ भव्य जीव सामायक करें, सब जीवन सों समता धरें। यह जोरे सब याको साज, और सकल विसरे घर काज ॥ ११ ॥ सेवें याहिं पुरुष उर अंध[1] यातें मुख आवे दुर्गंध। उत्तम जीवनको नहिं काम, सिलगे हलक होय उर श्याम ॥ १२ ॥ जाको कोई ना आदरे सो कुवस्तु सब यामें परे। यातें सब पवित्रता जाई, पर की जूंठ गहै मन लाई ॥१३॥ यासों कछू पेट नहिं भरे, हाथ जरें मुख कड़ुवो परे। गिने न याकर रैनी सवार, बुरो व्यसन है देख विचार ॥ १४ ॥

दोहा।

स्वाद नहीं स्वारथ नहीं, परमारथ नहीं होय।
क्यों झपटे जग जूंठको, यही अचम्भो[2] मोय ।१५।

चौपाई छन्द।

साधरमी जन बैठे जहां, सोहे नहीं पुरुष वह तहां। जिमि हंसन की गोठें[3] मझार, कागन शोभा लहे लगार ॥ १६ ॥ यामें नफा नहीं तिल मान, प्रकट हानि है शैल समान। यह विवेक बुध हिरदय धरो, ऐसो मानि भूल मत करो ॥ १७ ॥ इतनी विनती पे हठ गहे, मोह उदय त्याग नहीं कहे। तासों मेरी कछु न बसाय, लाठी लेय न मारो जाय ॥ १८ ॥

दोहा।

सरलचित सुनि भेद यह, तजे आपसों आप। हठग्राही

1 उरअंध-हिरदेका अंधा, 2 अचम्भो-आश्चर्य। 3 गोठ=सभा।

हठग्राहि रहे, जिनके पोते पाप ॥ १९ ॥ हठी पुरुष प्रति हित वचन, सबै अकारथ जाहिं। ज्यों कपूरको मेलिये, कूकरके मुंह माहिं ॥२०॥ 'भूधरदास' मनसों कही, यही यथारथ बात। सुहित जान हिरदै धरो, कोप करो मत भ्रात ॥२१॥ सबही को हित सीख है, जात भेद नहीं कोय। अमृतपान जोई करें, ताहिको गुण होय ॥२२॥

कवित्त तमाखूके विषयमें ॥

जहरकी सासु दुष्ट दुल्ही हलाहलकी वीछीकी बहिन परपंचरूप साजी है। नानी करियारीको धतूरेकी ममानी पितियानी बच्छनागकी नहानमें विराजी है ॥ कह गंगादत्त वह पचावै धन्वमाणी औ अफीमकी जिठानी विषखोपरेकी आजी है। माहुरकी मोसी महतारी सिंघियाकी यह तमाखू दई मारीको किन्ने उपराजी है ॥२३॥

चित्तको भ्रमाय देत मनको लुभाय लेत गुणको न देखें कछु खायें क्या भलाई है। दर्शन विनाश करे मुखमें दुर्गंधि लहै उष्णताकी बाधा ने रक्तता सुखाई है। गर्दभके मूत्रवत जामन लगाय कर क्षमीकार वोयपुनि समूह करि तपाई है। धन्य है खवय्यनकों खायें जो तमाखूको सभामांझ दुर होय थुचथुची लगाई है ॥ २४ ॥

लावनी।

धर्म मूल आचरण बिगाड़ा इसका हेतु नहीं रहा इल्म। विवेक जाता रहा हियेसे सबकी जूंठी पियें चिलम ॥ टेक ॥

१ गर्दभ (गर्दभ)=गधा।

प्रथम तमाखू महा अशुचि है, म्लेच्छ इसको बनाते हैं। छूने योग्य नहीं वरकुलके अपना तोय[1] लगाते हैं॥ डंडी चिलममें धूम योगतें जीव असंख्य बताते हैं। पीते ही मर जांय सबी वह यह जिन श्रुतिमें गाते हैं॥ होती इसमें अपार हिंसा जरा दया नहीं आती गिलम। विवेक जाता० ॥ कौमरिजालोंके साथ पीते गई आबरूये क्या बनी है। हया दूर कर धर्म लजाते उन्हींमें जा उनकी मैत[2] मनी है॥ व चर्स गांजा पियें पिलावें उन्हीं ने बुद्धि तेरी ये हनी है। स्वास प्रगट कर वदन जलाता प्राण हरण को ये हरफनी है॥ लगाना दमका बहुत बुरा है पीते तनमें पड़े खिलम। विवेक०॥ थावर त्रसकर सहित भरा जल कुवास है ए निधान हुका। सुतोय परंते सुजीव मरंते हैं पापका ए निधान[3] हुका॥ रोग भिन्न हो जाय कहें मर पीते हैं हम यह जान हुक्का। शुद्ध औषधि करो ग्रहण तुम अशुचि दूर करिये जान हुक्का। सीख सुगुरुकी यही रूपचंद त्यागो जल्द मत करो विलमें[4]। विवेक० ॥ २९ ॥

इति हुका निषेध पचीसी समाप्तम्।

---

१ तोय—पानी। २ मत—बुद्धि। ३ निधान—खान, खान ४ विलम—देरी।

(२३) छह ढाला।

(पं० बुधजन कृत)

सर्व द्रव्य में सार आतम को हितकार है।
नमों ताहि चितधार नित्य निरंजन जानके ॥ १ ॥

अथ प्रथम ढाल १६ मात्रा (चौपाई छन्द)

(इसमें जीवोंके संसार भ्रमण दुःखका कथन है)

आयु घटे तेरी दिनरात। हो निश्चिन्त रहो क्यों भ्रात ॥ यौवनतनधनकिंकरनारि। हैं सब जलबुद २ उनहारी ॥ १ ॥ पूरे आयु बढ़े क्षणनाहिं। दयें क्रोड धन तीरथ माहिं। इन्द्र चक्रवर्त्ती भी क्या करें। आयु अन्तपरते भी मरें ॥२॥ यों संसार असार महान। सार आपमें आपा जान। सुखसे दुख दुखसे सुख होय। समता चारों गति नहिं कोय ॥३॥ अनन्तकाल गति २ दुख सह्यो। बाकी काल अनन्ता कह्यो। सदा अकेला चेतन एक। तो माहीं गुण बसत अनेक ॥४॥ तू न किसीका तोर न कोय। तेरा दुख सुख तोको होय। यासे तुझको तू उरधार। परद्रव्यों से मोह निवार ॥५॥ हाड़ मान्स तन लिपटा चाम। रुधिर मूत्रमल पूरित धाम। सो भी थिर न रहै क्षय होय। याकों तजे मिले शिवलोय ॥६॥ हित अनहित तनकुलजनमाहिं। खोटीबानि हरो क्यों नाहिं। यासे पुद्गल कर्म नियोग। प्रणवे दायक सुख दुःख रोग ॥७॥ पांचों इंद्रिनके तन फैल। चित्त निरोध लाग शिवगैल। तुझमें तेरी तू करसैल।

जलबुद २—पानीके बुलबुले समान है।

रहो कहाहो कोल्हू बैल ॥८॥ तज कषाय मनकी चलचाल। ध्यावो अपना रूपरसाल। झाड़ें कर्म बन्धन दुःखदान। बहुर प्रकाशे केवलज्ञान ॥९॥ तेरा जन्म हुआ नहीं जहां। ऐसो क्षेत्र जो नाहीं कहां। याही जन्म भूमिका रचो। चलो निकलतो विधिसे बचो ॥१०॥ सब व्यवहार क्रियाका ज्ञान। भयो अनतेबार प्रधान। निपटकठिन अपनी पहिचान। ताको पावत होय कल्याण ॥११॥ धर्म स्वभाव आप श्रद्धान। धर्म न शील न न्हौन नदान। बुधजन गुरुकी सीख विचार। गहो धर्म आप न निर्धार ॥१२॥

अथ द्वितीय ढाल।

२८ मात्रा (नरेन्द्र छन्द) जिसे योगी रासा भी कहते हैं। इसमें प्रथम ढालके प्रयोजनका कारण ग्रहीत अग्रहीत मिथ्या दर्शन ज्ञान चारित्रका कथन है॥

सुनरे जीव कहतहों तुझसे तेरे हितके काजे। हों निश्चल मन जो तू धारे तो कुछ इक तो हिलाजे॥ जिस दुःखसे थावर तनपायो बरण सकों सो नाहीं। अठारह बार मरा और जन्मा एक स्वासके मांहीं ॥ १ ॥ काल

---

८ चित्त निरोध मनको पांचों इन्द्रियोंके विषयोंसे रोक कर मोक्षके रस्ते पर लगो शुद्धि सम्यक्त पालो।

१० सब व्यवहार क्रिया का ज्ञान इस जीवने जितने संसारमें इलम हुनर हैं संसारी कर्तव्यका ज्ञान अनन्ती ही बार पाया है। इनके पानेसे जीव आत्माको कुछ भी सिद्धि सुख नहीं हुवा, चारों गतिके दुख भोगता रूलताही फिरा। एक बार भी सम्यक्त पालेता तो अनन्ते जन्ममरणके दुखोंसे छूटकर अनंते शास्वते सुख भोगता।

अनन्तान्त रहो यों फिर विकलत्रय हूवो। बहुरि असेनी निपट अज्ञानी क्षण क्षण जन्मो मूवो। पुण्य उदय सेनी पशु हूवो बहुत ज्ञान नहीं भालो। ऐसे जन्म गये कर्मों वश तेरा जोर न चालो ॥ २ ॥ जबर मिलो तब तोहि संतायो निबल मिलो तें खायो। मात त्रिया सम भोगी पापी तातें नर्क सिधायो ॥ कोटिक बिच्छू काटें जैसे ऐसी भूमि जहां है। रुधिर राधि जलछार बहे जहां दुर्गन्धि निपट तहां है ॥ ३ ॥ घाव करें असिपत्र अंगमें शीत उष्ण तन गालें। कोई काटें करवत गहिकर केई पावकमें पर जालें। यथायोग्य सागर स्थिति भुगतें दुःखका अन्त न आवे। कर्म विपाक ऐसा ही होवे मानुष गति तब पावे ॥ ४ ॥ मात उदरमें रहे गेंदहो निकसत ही विल्लावे। डावा दांक फलां विस्फोटक डांकलसे बच जावे ॥ तो यौवनमें भामिनके संग निशि-दिन भोग रचावे। अन्धा हो धन्धा दिन खोवे बूढ़ा नाड़ि हलावे ॥ ५ ॥ यम पकड़े तब जोर न चाले सैन ही सैन बतावे। मन्द कषाय होय तो भाई भवनत्रक पद पावे ॥ परकी सम्पति लखि अति झूरेके रति काल गमावे। आयु अन्त माला मुरझावे तब लख लख पछतावे ॥६॥ तहांसे चलके थावर होवे रुलता काल अनन्ता। या विधि पंच परावर्तन दे दुःखका नाहीं अन्ता। काल लब्धि जिन गुरू कृपासे आप आपको जाने। तब ही बुधजन भवोदधि तरके पहुंच जाय निर्वाणे ॥ ७ ॥

---

४ सागर—की गिणती बहुत हीं बड़ी है जो किरोड़ान किरोड़ वर्ष बीत जांय तो भी एक सागरकी उमर पूरी न हो।

५ विस्फोटक—बच्चोंको माता याने चेचकका निकलना। ६ लख—देखना

भवनत्रक पद ... [illegible]

अथ तृतीय ढाल।

जिसमें सम्यक्त होनेका वर्णन है।

पद्धड़ी छंद।

जिसमें प्रत्येक पदकी १६ मात्रा हैं।

इसविधि भवनके माहिं जीव। वशमोह गहल सोता सदीव॥ उपदेश तथा सहजही प्रवोध। तव जागो ज्योंरण उठत योध॥१॥ तव चिन्तत अपने माहिं आप। मैं चिदानन्द नहीं पुण्यपाप॥ मेरे नाहीं हैं रागभाव। ये तो विधि वस उपजे विभाव॥२॥ मैं नित्य निरंजन शिव समान। ज्ञानावरणी आच्छाद्य ज्ञान॥ निश्चय शुद्ध इक व्यवहारभेव। गुणगुणी अंग अंग अतेव॥ ३॥ मानुष सुर नारक पशु पर्याय। शिशु ज्वान वृद्ध बहुरूप काय॥ धनवान दरिद्री दासराव। यह तो विडम्ब मुझे ना सुहाय॥४॥ स्पर्श गन्ध रसवर्णादि नाम। मेरो नाहीं मैं ज्ञान धाम॥ मैं एकरूप नहीं होत और। मुझमें प्रतिविम्बित सकल ठौर॥५॥ तन पुलकत वैर हर्षित सदीव। ज्यों भई रंक गृह निधि अतीव॥ जब प्रवल अप्रत्याख्यान थाय। तव चितपरणति ऐसी उपाय॥ ६॥ सो सुनो भव्य चित धारकान। वर्णत मैं ताकी

२। आछादा=ढांकलिया। अर्थात् ज्ञानवरणी कर्म ज्ञानको ढंके है।

३। भेव=भेद (फरक) अतेव=इसीवास्ते, अर्थात् जीव और परमात्मामें असली भेद नहीं व्यवहार भेद है। इसी हेतु एक अंग (गौण) और एक अंगी (प्रधान) है।

४ शिशु=बालक अवस्था।

विधि विधान ॥ सब करें काज घर माहिं वास। ज्यों भिन्न कमल जलमें निवास ॥७॥ ज्यों सती अंगमाहीं शृंगार। अति करे प्यार ज्यों नगर नारि॥ ज्यों धाय चुखावंति अन्य बाल॥ त्यों भोग करत नाहीं खुशाल ॥ ८ ॥ जो उदय मोह चारित्रभाव। नहीं होत रंच हू त्याग भाव ॥ तहां करें मन्द खोटे कषाय। घरमें उदास हो अथिर थाय ॥९॥ सबकी रक्षायुत न्याय नीति। जिन शासन गुरुकी दृढ़ प्रतीति॥ बहु रुले अर्द्धपुद्गल प्रमाण। शीघ्रही महूरत ले परम थान ॥ १० ॥ वे धन्य जीव धन्य भाग्य सोई। जिनके ऐसी सुप्रतीति होई॥ तिनकी महिमा है स्वर्ग लोई। बुधजन भाषे मोसे न होई ॥११॥

॥ इति तृतीय ढाल सम्पूर्णम् ॥

अथ चतुर्थ ढाल।

इसमें व्यवहार सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र एकोदेश श्रावक धर्मका कथन है।

सोरठा छन्द।

इसके प्रथम तृतीय पदोंमें ग्यारह २ मात्रा और द्वितीय चतुर्थ पदोंमें तेरह २ मात्रा होती है।

ऊगो आतम सूर दूर गयो मिथ्यात्त्व तम।
अब प्रगटो गुणपूर ताको कुछइक कहत हों॥

भिन्नकमल=कमलका फूल चाहे जितना पानी हो व पानीसे ऊपर ही रहे है ऐसे समदृष्टि घरमें रह करं भी अपने परीणाम गृहस्थसे अलहद और धर्मसे लौलीन रखें है। ८। नगरनार=वेसवा॥

शंका मनमें नाहिं तत्त्वार्थ श्रद्धानमें।
निर्वांछिक चित माहिं परमारथमें रत रहैं ॥ २ ॥
नेक न करते ग्लान बाह्य मलिन मुनिजन लखें।
नाहीं होत अजान तत्त्व कुत्त्व विचारमें ॥ ३ ॥
उरमें दया विशेष गुण प्रगटें औगुण ढकें।
शिथिल धर्ममें देख जैसे तैसे थिरकरें ॥ ४ ॥
साधर्मी पहिचान करें प्रीति गोबच्छसम।
महिमा होय महान् धर्म कार्य ऐसे करें ॥ ५ ॥
मद नहीं जो नृप तात मद नहीं भूपतिवानको।
मद नहीं विभव लहात मद नहीं सुन्दर रूपको ॥ ६ ॥
मदनहीं होय प्रधान मदनहीं तनमें जोरका।
मदनहीं जो विद्वान् मद नहीं सम्पतिकोषका ॥ ७ ॥
हुवो आत्मज्ञान तज रागादि विभावपर।
ताको हो क्यों मान जात्यादिक वसु अथिरका ॥ ८ ॥
वंदत अरिहंत देव जिन मुनि जिन सिद्धांतको।
नवें न देख महन्त कुगुरु कुदेव कुधर्म को ॥ ९ ॥
कुत्सित आगम देव कुत्सित पुनसुरसेवकी।
प्रशंसा षट् भेव करें न सम्यक् वान हैं ॥ १० ॥
प्रगटो ऐसा भाव किया अभाव मिथ्यात्त्वका।
बन्दत ताके पांव बुधजन मनबचकायसे ॥ ११ ॥

इति चतुर्थढाल सम्पूर्णम् ॥

---

१० कुत्सित आगम देव=कुदेव कुशास्त्रकी सेवा प्रशंसा सम्यदृष्टी नहीं करे।

अथ पंचम ढाल ।

जिसमें बारहं व्रतका वर्णन है ।

मनहरण छन्द ।

जिसके प्रत्येक पदमें १४ मात्रा है ! ! !

तिर्यंच मनुष द्वोय गतिमें । व्रत धारक श्रद्धा चितमें । सो अगलित नीर न पीवें । निशि भोजन तजें सदीवें ॥१॥ मुख वस्तु अभक्ष न खावें । जिन भक्ति त्रिकाल रचावें । मन वच तन कपट निवारें । कृत-कारित मोद सम्हारें ॥२॥ जैसे उपशमित कषाया । तैसा तिन त्याग कराया । कोई सात व्यसनको त्यागें । कोई अणुव्रत तप लागें । त्रस जीव कभी नहीं मारें । वृथा थावर न संहारें । परहित विन झूठ न बोलें । मुख सत्य विना नहीं खोलें । जल मृतिका विन धन सब ही । विन दिये न लेवें कब ही । व्याही वनिता विन नारी । लघु बहिन बड़ी महतारी । तृष्णाका जोर संकोचें । जादे परिग्रहको मोचें ॥ दिशिकी मर्यादा लावें । बाहर नहीं पांव हलावें । तामें भी पुरसर सरिता । नित राखत अघसे डरता सब अनर्थ दंड न करते । क्षण २ जिनधर्म सुमरते । द्रव्य क्षेत्र काल शुभ भावे । समता सामायक ध्यावे । प्रोषध एकाकी हो है । निष्किंचन मुनि ज्यों सो

---

१ अगलित नीर जो आसमानसे ओले या गडे बर्फ वा अनछाणा पानी इनको नहिं खाना पीना चाहिये ।

२ अभक्ष्य जो २२ अभक्ष्य कहे हैं सो धर्मात्माओंको खाने नहीं चाहिये ।

४ त्रसजीव=चलता हलता जीव थावर मिट्टी पानी आग हवा बिनासपत्ती मृतका मट्टी ।

हैं। परिग्रह परिमाण विचारें। नित नेम भोगका धारें। मुनि आवन वेला जावे। तब योग्य अशन मुख लावे। यों उत्तम कार्य करता। नित रहत पापसे डरता। जब निकट मृत्यु निज जाने। तब ही सब ममता भाने। ऐसे पुरुषोत्तम केरा। बुध जन चरणोंका चेरा॥ वे निश्चय सुर पद पावें। थोड़े दिनमें शिव जावें॥

इति श्री पञ्चमढाल सम्पूर्णम्।
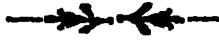
अथ षष्ठम ढाल।

जिसमें मुनिधर्मका कथन है।

रोला छन्द।

इसका प्रत्येक पद २४ मात्राका होता है॥

अथिर ध्याय पर्याय भोगसे होय उदासी।
नित्य निरंजन ज्योति आत्मा घटमें भासी॥
सुतदारादि बुलाव सबसे मोह निवारा।
त्यागनगर धनधाम बास वन बीच विचारा॥१॥
भूषण वसन उतार नग्न हो आत्म चीन्हा।
गुरुतटदीक्षा धार शीश कच लुंच जु कीना।
त्रसथावरका घात त्याग मन वच तन लीना
झुठ बचन परिहार गहैं नहीं जल बिन दीना॥ २॥
चेतन जड़ त्रिय भोग तजो भवभव दुःखकारा।
अहि कंचुकी ज्यों तजत चित्तसे परिग्रह डारा॥
गुप्त पालने काज कपट मन वच तन नाहीं।

पांचों समिति सम्हालं परीषह सहि हैं आहीं ॥ ३ ॥
छोड़ सकल जगजाल आपकर आप आपमें ।
अपने हितको आप किया है शुद्ध जापमें ॥
ऐसी निश्चल काय ध्यानमें मुनिजन केरी ।
मानो पत्थर रची किधों चित्राम चितेरी ॥ ४ ॥
चारि घातिया घात ज्ञानमें लोक निहारा ॥
दे जिन मति उपदेश भव्योंको दुःखसे टारा ।
बहुरि अघातिया तोड समयमें शिवपद पाया ।
अलख अखंडित ज्योति शुद्ध चेतनि ठहराया ॥ ५ ॥
काल अनंतानन्त जैसे के तैसें रहि हैं ।
अविनाशी अविकार अचल अनुपम सुख लहिहैं ।
ऐसी भावना भाय ऐसे जो कार्य करे हैं ।
सो ऐसे ही होंय दुष्ट कर्मों को हर हैं ॥ ६ ॥
जिनके उर विश्वास वचन जिन शासन नाहीं ॥
ते भोगातुर होय सहैं दुःख नर्कों माहीं ॥
सुख दुःख पूर्व विपाक अरे मत कल्पै जीया ।
कठिन २ कर मित्र जन्म मानुषका लीया ॥ ७ ॥
ताहि वृथा मत खोय जोय आपा पर भाई ।
गये न मिलती फेर समुद्र में डूबी राई ।
भला नर्क का वास सहित जो सम्यक पाता ।

---

३ अहि—सर्प । कंचुकी—सर्पकी कांचली जैसे सर्प कांचलीको पुराणी निकम्मी समझकर त्याग करता है. इसी तरह धर्मात्मा पुरुष परिग्रहको अति पापका मूल कारण जान कर त्याग देते हैं ।

चूरे बने जो देव नृपति मिथ्या मद माता ॥ ८ ॥
ना खर्चे धन होय नहीं काहू से लरना ।
नहीं दीनता होय नहीं घरका परिहरना ॥
सम्यक सहज स्वभाव आपका अनुभव करना ।
या विन जप तप व्यर्थ कष्टके माहीं परना ॥ ९ ॥
कोड़ बात की बात अरे बुधजन उर धरना ।
मन वच तन शुचि होय गहो जिन वृषका शरणा ।
ठारिहसौ पंचास अधिक नव सम्वत जानो ॥
तीज शुक्ल वैशाख ढाल षट् शुभ उपजानो ॥ १० ॥

इति छह ढाला पण्डित बुधजन कृत

सम्पूर्णम् ।

निशिभोजन भुंजनकथा ।

(कविवर भूधरदासजी कृत ।)

दोहा छन्द ।

नमो शारदा सार बुध, करैं हरैं अघ लेप ।
निशभोजन भुंजन कथा, लिखूं सुगम संक्षेप ॥१॥

चौद मात्रा चौपाई छन्द ।

जंबूद्वीप जगत् विख्यात । भरतखंड छवि कहियन जात ॥ तहां देशकुरु जांगल नाम । हस्तनागपुर उत्तम ठाम ॥२॥ यशोभद्र भूपति गुण वास । रुद्रदत्त द्विज प्रोहित तास ॥ आश्वनि मास तिथि दिन आराध । पहली पड़वा कियो सराध ॥३॥ बहुत विनयसों नगरी तने । न्योंत जिमाये ब्राह्मण घने ॥ दान मान सबहीको

दियो। आप विप्र भोजन नहि कियो॥ ४॥ इतने राय पठायो दास। प्रोहित गयो रायके पास॥ राज काज कछु ऐसो भयो। करत करावत सब दिन गयो॥५॥ घरमें रात रसोई करी। चूल्हे ऊपर हांडी धरी॥ हींग लैन उठ बाहर गई। यहां विधाता औरहि ठई॥६॥ मैंडक उछल परो तामाहिं। विप्रि तहां कछु जानो नाहिं॥ बैंगन छौंक दिये तत्काल। मैंडक मरो होय बेहाल॥७॥ तबहु विप्र नहिं आयो धाम॥ धरी उठाय रसोई ताम॥ पराधीन-की ऐसी बात। औसर पायो आधी रात॥ ८॥ सोय रहे सब घरके लोग। आग न दीवा कर्म संयोग॥ भूखो प्रोहित निकसें धान। ततक्षण बैठो रोटी खान॥९॥ बैंगन भोले लीनो पास। मैंडक मुंहमें आयो तास॥ दांतन तले चबो नहिं जवै। काढ़ धरो थालीमें तबै॥१०॥ प्रात हुए मैंडक पहिचान। तौभी विप्र न करी गिलान॥ थिति पूरी कर छोड़ी काय। पशुकी योनि उपजो आय॥ ११॥

सोरठा छन्द।

घूघू कागैं बिलावै सार्वेर गिरैंग्र पखेरुवा।
सूकर अजगैर भाव, बार्घ गोहैंजलमें मैगर॥१२॥

दश भव इहि विध थाय, दसों जन्म नरकहि गया दुर्गति कारण थाय, फलो पाप वट बीजवत॥१३॥

१९ मात्रा चौपाई छन्द॥

देशनामें करहाट सुखेत। कौशल्या नगरी छवि देत॥ तहां संगराम शूर भूपाल। बिना युद्ध जीते रिपुजाल॥ १४॥ राजा

प्रोहित लोमस नाम। ताकै तिय लोमा अभिराम॥ तिनकै रुद्रदत्तवर वही। महीदत्त सुत उपजो सही॥१५॥ खोटी संगतिके वश होय। सवै कुलक्षण सीखो सोय॥ सवै कुव्यसन करै न कान। बहुत द्रव्य खोयो विन ज्ञान॥१६॥ मात पिता तब दियो निकास। मामाके घर गयो निरास॥ तिन भी तहां न आदर कियो। शीश फेर पग आगे दियो॥१७॥ मारगके वश पहुंचो सोय। जहां बनारसको वन होय॥ भेटे साधु अशुभ अवसान। नमस्कार कीनो तज मान॥१८॥ पूछ महीदत्त सिर नाय। मैं क्यों दुखी भयो मुनिराय॥ पर उपकारी मुनिजन सही। पूरब जन्म कथा सब कही॥१९॥ निशभोजन तें बिरधो पाप। तातैं भयो जन्म संताप॥ फिर तिन दियो धर्म उपदेश। जातैं बहुर न होय कलेश॥ २० ॥ गुरुक शिक्षा ग्रह व्रत लये। मनके दुक्ख दूर सब गये॥ कर प्रमाण आयो निज गेह। मात पिता अति कियो स्नेह॥२१॥ स्वजन लोक मन अचरज भयो। देख सुलक्षण सब दुख गयो॥ राजा बहुत कियो सनमान। भयो विप्र सुत सब सुख मान॥२२॥ बढ़ी संपदा पुन्यसंयोग। छहों कर्म साधे पुनि योग॥ कियो देव मंदिर बहु भाय। सुवरणमय प्रतिमा पधराय॥२३॥ धर्म शास्त्र लिखवाए जान। बहुविध दियो सुपात्रहि दान॥ ऐसे धर्महेत धन बोय।

---

१३ बड़का बीज जरासा होता है और उसके बोनेसे पेड़का विस्तार बहुतही बड़ा हो जाता है यही हाल पापका है जो करते वक्त तो अपनेको बड़े चतुर चलाक समझकर खुश होते हैं और जब भोगना पड़ता है नरकों निगोदोंका दुख जब रोते हैं याद करते है हाय! मैंने ऐसे पाप क्यों करे॥

उपजो अंत अच्युत सुर होय ॥२४॥ बंढ़िं आव जहां भोग विशाल । सुखमें जात न जानो काल । थिंत अवसान तहां ते चयो । भरत-खंड भूमानुष भयो ॥२५ ॥ देश अवंती नगर उजैन । पिरथीमल राजा बहुसेन ॥ प्रेमकारिणी राणी सती । तिनकै पुत्र भयो शुभ-मती ॥२६ ॥ नाम सुधारस परम सुजान । रूपवंत गुणवंत महान । यौवन वैस विकारन कोय । भोगविमुख वरतै नित सोय ॥२७॥ धर्म कथा रसरागी सदा । गीत निरत भावै नहिं कदा । एक दिना वाड़ीमें गयो । वनविहार देखन चित दियो ॥ २८ ॥ तहां एक जो वृक्ष महान । देखो सघन छांहि छवि वान ॥ शाखा प्रतिशाखा वहु जास । बहु विधि पंछी पथिक निवास ॥ २९ ॥ वन विहार कर फिरियो जवै । वज्र दह्यो वृक्ष देख्यो तवै ॥ उर वैराग थयो तिहुं काल । जानो अथिर जगतको ख्याल ॥३०॥ जो जगमें उपजे कछु लोय । सो सब ही थिर रहै न कोय । विघटत वार लगै नहीं तास । तन धनकी सब झूंठी आस ॥३१॥ काल अगनि जगमें लहलहै । सूके तृण सम सबको दहै ॥ यह अनादिकी ऐसी रीत । मोहि उदय समझै विपरीत ॥ ३२ ॥ यह विधि बुद्ध यथारथ भई । परमार्थ पंथ सन्मुख ठई । राजभोगसों भयो उदास । निस्पृह चित्त गयो गुरु पास ॥ ३३ ॥ सतगुरु साख योग पथ लियो । इच्छा छोड़ घोर तप कियो ॥ ध्यान हुताशन हिरदै जगी समतापवन पाय जगमगी ॥३४॥ कर्म काठ दाहे बहुभेव । भयो मुक्ति अजरामर देव ॥

---

३१ विघटत–विनास होना बिलाय जांना बिगड़ना । ३४। हुताश–अग्नि ।

आतमते परमातम भयो । आवागमनरहित थिर थयो ॥३५॥ रजनी भुंजनकथा बरणई । यथा पुराण समापति भई ॥ पापधर्मको फल यह भाय । भली लगै सो कर मन लाय ॥३६॥

सोरठा छन्द ।

प्रगट दोष अविलोय, निशभोजन करये नहीं ।
इस भव रोग न होय, परभव सब सुख संपजै ॥३७॥

छप्प छन्द ।

कीड़ी बुध बलहरैं कंपगद करै कसारी । मकड़ी कारण पाय-कोढ़ उपजे दुख भारी ॥ जुआं जलोदर जनै फांस गल विथा बढ़ावै । बाल करे सुरभंग बमन माखी उपजावे ॥ तालुवे छिद्र बीच्छु भखत और व्याधि बहु करहि थल । यह प्रगट दोष निश-अशनके । परभव दोष परोक्ष फल ॥३८॥

दोहा छन्द ।

जो अघ इहि दुखकरै, परभव क्यों न करेय ॥ डसत सांप पीडै तुरत, लहर क्यों न दुख देय ॥३९॥ सुवचन सुनके क्रोध हो । मूरख मुदित न होय । मणिधर फण फेरे सही, नदी सांप नहिं सोय ॥ ४० ॥ सुवचंन सतगुरु के वचन, और न सुवचन कोय । सतगुरु वही पिछानिये, जा उर लोभ न होय ॥१४॥ भूधर सुवचन सांभलो, स्वपर पक्ष करवौन । साबुत महामणी जो मिलै, तोड़ेसे गुण कौन ॥ ४२ ॥

॥ इति श्रीभूधरदासकृत निशि भोजन कथा सम्पूर्णम् ॥

———

३८ बमन उलटी छरद माखी खा जाने से होय है ।

(२५) चौवीस दंडक।

दोहा।

बन्दो वीर सुधीरको, महावीर गँभीर।
वर्द्धमान सन्मति महा, देवदेव अतिवीर ॥ १ ॥
गत्यागत्य प्रकाश जो, गत्यागत्य वितीत।
अद्भुत्त अतिगतसु गतिजो, जैनेश्वर जगजीत ॥ २ ॥
जांकी भक्ति विना विफल, गए अनंते काल।
अगिनत गत्यागति धरीं, घटो न जगजंजाल ॥ ३ ॥
चौवीसौ दंडक विषैं, धरीं अनंती देह।
लख्यो न निजपद ज्ञानविन, शुद्ध स्वरूप विदेह ॥४॥
जिनवाणी परसादतैं, लहिये आत्मज्ञान।
दहिये गत्यागत्य सब, गहिये पद निर्वाण ॥५॥
चौवीसौ दंडक तनी, गत्यागति सुनि लेहु।
सुनकर विरकत भाव धर, चहुंगति पानी देहु ॥६॥

चौपाई।

पहिलो दंडक नारिक तनो। भवनपती दस दंडक भनौं ॥ ज्योतीस व्यंतर स्वर्ग निवास। थावर पंच महादुख रास ॥ ७ ॥ विकलत्रय अरु नर तिर्यञ्च। पंचेंद्री धारक परपंच ॥ यह चौवीस दंडके कहे। अब सुन इनमें भेद जु लहे ॥ ८ ॥

२—गत्य—मरकर जिस योनीमें जाना। गत्य—गति जिस योनिमें जन्म लेना।

४ निजपद=अपना सरूप सम्यग्दर्शन। शुद्ध=मुक्तिरूप। ५ जिनवाणी=जैनशास्त्र, निर्वाण=मुक्ति। ८ विकलत्रय—दो इन्द्रिय तियेन्द्री चौइन्द्री।

नारककी गति आगति दोय। नर तिर्यञ्च पंचेंद्री जोय॥ जाय असैनी पहला लगै। मन विन हिंसा कर्म न पगै॥ ९॥ औसर्प्प दुजे लौं जाय। अरु पक्षी तीजे लौं थाय॥ सर्प्प जांय चौथे लौं सही। नाहर पंचम आगैं नहीं॥१०॥ नारी छट्ठे लगही जाय। नर अरु मच्छ सातवें थाय॥ एतौ नारक आगत कही। अब सुन नारककी गति सही॥११॥ नरक सातवें को जो जीव। पशुगति ही पावै दुखदीव॥ और सब नारक मर नर पसु। दोउ गति आवैं पर वसु॥ १२॥ छट्ठेको निकसैं जु कदाप। सम्यक सहित श्रावगनि पाय॥ पंचम निकसौ मुनिहू होय। चौथेको केवलहू कोय॥१३॥ तीजे नर्क-को निकसो जीव। तीर्थंकर भी होय जगईव॥ यह नारक की गत्यागती। भाषी जिनवाणी में सती॥१४॥ तेरह दंडक देवनि-काय। तिनको भेद सुनों मनलाय। नरतिर्यंच पंचेंद्री विना। और-नको नहिं सुरपद गिना॥१५॥ देव मरैं गति पांच लहांहिं। भूजल तरुवर नर तिर मांहि॥ दुजे सुरग उपरले देव। थावर ह्वै न कहियो जिनदेव॥१६॥ सहस्रारतैं ऊंचे स्वरा। मरकर होवैं निश्चय नरा॥ भोगभूमि के तिर्यंच नरा। दूजे देवलोकतैं धरा॥१७॥ जाय नहीं यह निश्चय कही। देवन भोग भूमि नहिं गही॥ कर्मभूमियां नर अरु ढोर। इन विन भोग भूमिकी ठौर॥१८॥ जाइन तातैं आगति दोई॥ गति इनको देवनकी होई॥ कर्म

---

९ नर=मनुष्य। १३। कदाप। कदापि=कभी भी।

१५ सुरपद=देवपद। १६ भू=जमीन। तरु=वृक्ष। १७ सहस्रार १२ बारवां स्वर्ग।

भूमि या तिर्यंग बुद्ध । श्रावकव्रत धर वारमा शुद्ध ॥१९॥ सहस्त्रार ऊपर तिर्यंच ॥ जाय नहीं तज है परपंच । अव्रत सम्यक् दृष्टी नरा ॥ वारमें तैं ऊपर नहिं धरा ॥ २० ॥ अन्यमती पंचागिनि साध । भवनत्र्यक तैं जाइन वाद ॥ परिव्राजक त्रिदंडी देह । पंचम पैं न उपजें जेह ॥२१॥ परमहंस नामें परमती ॥ सहस्त्रार ऊपर नहिं गती । मोक्ष न पावें परमत मांहि । जैन बिना नहिं कर्म नसांहि ॥२२॥ श्रावक आर्य्य अणुव्रत धार । बहुरि श्राविका गण अविकार ॥ सोल्ह स्वर्ग पैं नहिं जाय । ऐसो भेद कहैं जिन राय ॥२३॥ द्रव्य लिंग धारी जे जती । नव ग्रीवक ऊपर नहीं गती ॥ नवहि अनोत्तर पंचोत्तरा ॥ महामुनि त्रिन और नहिं धरा ॥ २४ ॥ कई वार जीव सुर भयो । पणके इक पद नाही गह्यो । इंद्र भयो न शचीहू भयो । लोकपाल कबहु नहीं थयो ॥ २५ ॥ लौकांतिक हूवो न कदापि । नहीं अनोत्तर पहुंचो आप । ए पद धर बहु भवनहिं धरैं । अल्प काल नैं मुक्ति हि वरैं ॥२६॥ है विमान सरवारथ सिद्धि । सबतैं ऊंचो अतुलहु रिद्धि ॥ ताके सिरपर है शिवलोक । पैं अनंतानंत अलोक ॥ २७ ॥ गत्यागत्य देव गति भनी । अब सुन भाई मनुष गति तनी । चौवीसौं दंडकके मांहि । मनुष जांहि यानें

---

२१ परिव्राजक=सन्यासी । त्रिदंडी—जिसको डंडी स्वामी कहे हैं।
२३ । गण=समूह ।

२५ शची=इन्द्राणी । २६ लौकांतिक=लोकपाल अनोत्तर विमानके तीनो जाति के देव बहुत ही जल्दी मोक्ष पदको पावें हैं।

शक नाहि ॥ २८ ॥ मोक्षहू पावै मनुष मुनीश। सकल धराको जो अवनीश ॥ मुनि बिन मोक्ष नहीं कोऊ वरे। मनुष बिना नहिं मुनिको तरे ॥ २९ ॥ सम्यक्‌दृष्टि जे मुनिराय। भवजल उतरैं शिवपुर जाय। जहां जाय अविनाशी होय ॥ फिर पीछैं आवें नहिं कोय ॥ ३० ॥ रहैं शाश्वते शिवपुर मांहि। आतमराम भयो संकं नांहि। गति पचीस कहीं नर तनी। आगति फुनि वाई साहे भनीं ॥३१॥ तेजकाय अरु वाई जु काय। इन बिन और सबै नर थाय। गति पचीस आगत बाईस ॥ मनुषतनी जो भाषी ईस ॥ ३२ ॥ ताहि सुरासुर आतमरूप ॥ ध्यावें चिदानंद चिद्रूप ॥ तौ उतरो भवसागर भया। और न शिवपुर मारग लया ॥ ३३ ॥ यह सामान्य मनुष्यकी कही। अब सुनि पदवी धरकी सही ॥ तीर्थंकरकी दोय आगती। स्वर्ग नरकतैं आवैं सती ॥ ३४ ॥ फेरिन गति धारैं जगदीस। जाय विराजैं जगके सीस ॥ चक्री अर्धचक्री अरु हली। सुरग लोक तैं आवैं वली ॥ ३५ ॥ इनकी आगति एक हि जांन। गतिकी रीति कहूं जो वखांनि। चक्री की गति तीन जो होय। सुरग नरक अरु शिवपुर जोय ॥ ३६ ॥ तप धारैं तौ शिवपुर जांय। मरैं राज मैं नरक हिठांय ॥ आखरि मैं होय पद निर्वाण। पदवी धारक बड़े प्रधान ॥ ३७ ॥ बलभद्रनको दोय हि गती। सुरग जांहिकै है शिव पती ॥ तप धारैं ए निश्चय भया। मुक्ति पात्र ये श्रुत मैं लह्या ॥ ३८ ॥ अर्द्धचक्री को एकै भेद।

---

२९ धरा=जमीन। अवनीश=राजा।
३७ निरवाण=मुक्ति। ३८ श्रुत=जैनशास्त्र।

नारक जांय लहै अति खेद ॥ राज मांहि जायें निश्चय मेरें । तद भव मुक्ति पन्थ नहि धरैं ॥ ३९॥ आखिर पावैं जिनवर लोक । पुरुष शलाका शिवके थोक ॥ ये पद पाए कबहू नहीं जीव ॥ ये पद पाय होय शिव पीव ॥४०॥ और हु पद कइयक नहि गहे । कुलकर नारदपद हू न लहे ॥ रुद्र भए न मदन नहीं भए । जिनवर मातपिता नहि थए ॥४१॥ ये पद पाय जीव नहीं रुले । थोड़े हि दिनमैं जिन सम तुले ॥ इनकी आगति श्रुतमें जांनि । गतिको भेद कहूं जो वखांनि ॥४२॥ कुलकर देव लोक ही गहैं । मदन सुरग शिवपुरको लहैं । नारद रुद्र अधोगति जाय । लहैं कलेश महा दुःख पांय ॥४३॥ जन्मांतर पावैं निरवान । वड़े पुरुष जे सूत्र प्रमान ॥ तीर्थंकरके पिता प्रसिद्ध । स्वर्ग जांय के हो हैं सिद्ध ॥४४॥ माता स्वर्ग लोक ही जांय । आखिर शिवपुर लोक लहांय । ये सब रीति मनुषकी कही । अब सुन तिरयंचन गति सही॥४५॥ पंचेंद्री पशु मरण कराय । चौवीसौं दंडक में जाय ॥ चौवीसौं दंडक तैं मरें । पशु होय तौ नाह न करै ॥ ४६ ॥ गती आगती कही चौवीस । पंचेंद्री पशुकी जिन ईस । ता परमेश्वरको पथ गहौ ॥ चौवीस दंडक नाहीं लहौ ॥४७॥ विकलत्रयकी दश ही गती । दश आगति कहीं जगपती ॥ पांचों थावर विकलजु तीन । नर तिर्यच पंचेंद्री लीन ॥ ४८ ॥ इनहीं दशमें उपजै जाय । पृथिवी पानी तरवर काय ॥ इनहीं तैं विकलत्रय आय ।

---

४० पीव—स्वामि । ४३ मदन—कामदेव । ४४ जन्मांतर—थोड़े भव पीछे मोक्ष पावे हैं ।

४७ पथ—रास्ता । ४८ दश—दस१० । ४९ काय देह ।

इस ही दस में जन्म कराय ॥ ४९ ॥ नारक विनं सब दंडक जोय । पृथ्वी पानी तरु वर सोय ॥ तेज वायु मरि नव मैं जाय । मनुषं होय नहीं सूत्र कहाय ॥५०॥ थावर पंचविकल त्रय ठौर । ये नवगति भाषे मद मोर ॥ दसतैं आवे तेज अरु वाय । होय सहीगामैं जिन राय ॥५१॥ ये चौईस दंड के कहे । इनकूं त्याग परम पद लहे ॥ इनमैं रुलै सु जगको जीव । इनतैं रहित सुत्रभुवन पीव ॥५२॥ जीव ईशमैं और न भेद । एकरमी वे कर्म उछेद ॥ कर्म बंध जोलों जगजीव । नाशे कर्म होय शिव पीव ॥ ५३ ॥

दोहा ।

मिथ्या अव्रत योग अर, मद परमाद कषाय ।
इंद्रिय विषय जु त्याग ये, भ्रमन दूरि ह्वै जाय ॥
जिन विनराग त भवतैं धरीं, भयो नहीं सुर झार ।
जिन मारग उर धारियै, पाइये भवदधि पार ॥५५॥
जिन भज सब परपंच तज, बड़ी बात है येह ।
पंच महाव्रत धारिकै, भव जलको जलदेह ॥ ५६॥
अंतर करणजु सुध है, जिन धर्मी अभिराम ।
भाषा कारण कर सकूं, भाषी दौलतराम ॥ ५७ ॥

इति चौवीस दंडक सम्पूर्णम् ॥

तृतीय खंड।

(१) लघु अभिषेक पाठ।

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्यजगत्त्रयेशं
स्याद्वावादनायकमनन्तचतुष्टयार्हम् ॥
श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतु
जैनेंद्रयज्ञविधिरेष मयाभ्यधायि ॥

(इस श्लोकको पढ़कर जिनचरणोंमें पुष्पांजलि छोड़नी चाहिए)

श्रीमन्मन्दरसुंदरे शुचिजलैर्धौते सदर्भाक्षतैः
पीठेमुक्तिवरंनिधाय, रचितं त्वपादपद्मस्रजः
इंद्रोऽहंनिजभूषणार्थकमिदं यज्ञोपवीतं दधे।
मुद्राकङ्कणशेखरान्यपि तथा जैनाभिषेकोत्सवे ॥

(इस श्लोकको पढ़कर अभिषेक करनेवालोंको यज्ञोपवीत तथा नाना प्रकारके सुंदर आभूषण धारण करना चाहिये)

सौगन्धसंगतमधुव्रतझंकृतेन सौवर्ण्यमानमिव गंधमनिंद्यमादौ।
आरोपयामि बिबुधेश्वरवृन्दवन्द्य पादारविन्दमभिवन्द्य जिनोत्तमानाम्।

(इस श्लोकको पढ़कर अभिषेक करनेवालोंको अपने अंगमें ३ ;०, चन्दनके नव तिलक करना चाहिये।)

ये सन्ति केचिदिह दिव्यकुलप्रसुता नागाः प्रभूतबलदर्पयुता विबोधाः। संरक्षणार्थममृतेन शुभेन तेषां प्रक्षालयामि पुरतः स्नपनस्य भूमिम् ॥

को पढ़कर अभिषेकके लिये भूमिका प्रक्षालन करै)

क्षीरार्णवस्य पयसां शुचिभिः प्रवाहैः प्रक्षालितं सुखैर्यदने-कवारम्। अत्युद्यमुद्यतमहं जिनपादपीठं प्रक्षालयामि भवसंभव तापहारि॥

(जिस पीठपर (सिंहासनपर) विराजमान करके अभिषेक करना होवे उसका प्रक्षालन करना चाहिये।)

श्रीशारदासुमुखनिर्गतबीजवर्णं श्रीमंगलीकवरसर्वजनस्य नित्यं। श्रीमत्स्वयं क्षयतयस्य विनाशविघ्नं श्रीकारवर्णं लिखितं जिनभद्रपीठे।

(इस श्लोकको पढ़कर पीठपर श्रीकार लिखना चाहिये।)

इन्द्राग्निदंडधरनैर्ऋतपाशपाणि--वायूत्तरेशशशिमौलिफणीन्द्र-चन्द्राः। आगत्य यूयमिहसानुचराः सचिह्नाः स्वं स्वं प्रतीच्छत बलिं जिनपाभिषेके॥

(नीचेलिखे मंत्रोंको पढ़कर क्रमसे दश दिक्पालोंके लिये अर्घ्य चढ़ावो।)

१ ॐ आँ क्रौं ह्रीं इन्द्र आगच्छ आगच्छ इन्द्राय स्वाहा।
२ ॐ आँ क्रौं ह्रीं अग्ने आगच्छ आगच्छ अग्नये स्वाहा।
३ ॐ आँ क्रौं ह्रीं यम आगच्छ आगच्छ यमाय स्वाहा।
४ ॐ आँ क्रौं ह्रीं नैर्ऋत आगच्छ आगच्छ नैर्ऋताय स्वाहा।
५ ॐ आँ क्रौं ह्रीं वरुण आगच्छ आगच्छ वरुणाय स्वाहा।
६ ॐ आँ क्रौं ह्रीं पवन आगच्छ आगच्छ पवनाय स्वाहा।
७ ॐ आँ क्रौं ह्रीं कुवेर आगच्छ आगच्छ कुवेराय स्वाहा।
८ ॐ आँ क्रौं ह्रीं ऐशान आगच्छ आगच्छ ऐशानाय स्वाहा।
९ ॐ आँ क्रौं ह्रीं धरणीन्द्र आगच्छ आगच्छ धरणीन्द्राय स्वाहा।
१० ॐ आँ क्रौं ह्रीं सोम आगच्छ आगच्छ सोमाय स्वाहा

इति दिक्पालमंत्राः ।

दध्युज्वलाक्षतमनोहरपुष्पदीपैः पात्रार्पितं प्रतिदिनं महता-दरेण । त्रैलोक्यमंगलसुखानलकामदाह मारार्तिकं तवविभोरवतार-यामि ॥ [दधि अक्षत पुष्प और दीप रकाबीमें लेकर मङ्गलपाठ तथा अनेक वादित्रोंके साथ त्रैलोक्यनाथकी आरती उतारनी चाहिये ।]

यः पांडुकामलशिलागतमादिदेवमस्नापयन्सुरवराः सुरशैल-मूर्ध्नि । कल्याणमीप्सुरहमक्षततोयपुष्पैः संभावयामि पुर एव तदीयबिम्बम् ॥

जल अक्षत पुष्प क्षेपकर श्रीकार लिखित पीठपर जिन-बिम्बकी स्थापना करनी चाहिये ।

सत्पल्लवार्चितमुखान्कलधौतरूप्य ताम्रारकूटघटितान्पयसासु-पूर्णान् । संवाह्यतामिव गतांश्चतुरः समुद्रान् संस्थापयामि कलशान् जिनवेदिकान्ते ।

जलपूरित सुन्दर पत्तोंसे ढके हुये सुवर्णादि धातुओंके चार कलश वेदीके कोनोंमें स्थापन करना चाहिये ।

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमलबहुले नामुना चन्दनेन
श्रीदृक्पेयैरमीभिः शुचिसदकचयैरुद्गमैरेभिरुद्धैः ।
हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मखभवनमिमैर्दीपयद्भिः प्रदीपैः
धूपैः प्रायोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरीशं यजामि ॥

(इस मंत्र गर्भित श्लोकको पढ़कर यजामि शब्दके पूर्ण होते होते अर्घ चढ़ा देना चाहिये ।)

दूरावनम्रसुरनाथकिरीटकोटी संलग्नरत्नकिरणच्छविधूसरा-

ङ्मिम् । प्रस्वेदतापमलमुक्तमपि प्रकृष्टैर्भक्त्या जलै जिनपतिं बहुधा-भिषिञ्चे ॥

(इस श्लोकको पढ़कर जिन प्रतिमापर जलके कलशसे धारा छोड़नी चाहिये ।)

उत्कृष्टवर्णनवहेमरसाभिराम देहप्रभावलयसंगमलुप्तदीप्तिम् । धारां घृतस्य शुभगन्धगुणानुमेयां वन्देऽर्हतां सुरभिसंस्नपनोपयुक्ताम् ॥

(इस श्लोकको पढ़कर घृतके कलशसे स्नपन करना चाहिये ।)

सम्पूर्णशारदशशाङ्कमरीचिजालस्यन्दैरिवात्मयशसामिव सुप्रवाहैः । क्षीरैर्जिनाः शुचितरैरभिषिच्यमाणाः सम्पादयन्तु मम चित्त-समीहितानि ॥

(इस श्लोकको पढ़कर दुग्धके कलशसे अभिषेक करना चाहिये ।)

दुग्धाब्धिवीचिपयसंचितफेनराशिपांडुत्वकान्तिमवधारयताम-तीव । दध्नागता जिनपते प्रतिमां सु धारा सम्पद्यतां सपदि वांछित-सिद्धये वः ॥

(इस श्लोकको पढ़कर दधिके कलशसे अभिषेक करना चाहिये ।)

भक्त्या ललाटतटदेशनिवेशितोच्चैः हस्तैश्च्युताः सुरवराऽसुर-मर्त्यनाथैः । तत्कालपीलितमहेक्षुरसस्यधारा सद्यः पुनातु जिनबिम्ब-गतैव युष्मान् ॥

(इस श्लोकको पढ़कर इक्षुरसके कलशसे अभिषेक करना चाहिये।)

संस्नापितस्यघृतदुग्धदधीक्षुवाहैः सर्वाभिरौषधिभिरर्हतमुज्ज्व-लाभिः । उद्वर्तितस्य विदधाम्यभिषेकमेला कालेयकुङ्कुमरसोत्क-टवारिपूरैः ॥

(इस श्लोकको पढ़कर सर्वौषधीके कलशसे अभिषेक करना चाहिये।)

द्रव्यैरनल्पघनसारचतुःसमाद्यैरामोदवासितसमस्तदिगन्तरालैः।
मिश्रीकृतेनपयसा जिनपुङ्गवानां त्रैलोक्यपावनमहं स्नपनं करोमि ॥

(इस श्लोकको पढ़कर केसर कस्तूरी कर्पूरादिसे बनाये हुये सुगन्धित जलसे स्नपन करना चाहिये।)

इष्टैर्मनोरथशतैरिव भव्यपुंसां पूर्णैः सुवर्णकलशैर्निखिलैर्वसानैः।
संसारसागरविलंघनहेतुसेतुमाप्लावये त्रिभुवनैकपतिं जिनेन्द्रम् ॥

(इस श्लोकको पढ़कर शेष बचे हुये सम्पूर्ण कलशोंसे अभिषेक करना चाहिये।)

मुक्ति श्रीवनिताकरोदकमिदं पुण्यांकुरोत्पादकम्।
नागेन्द्रत्रिदशेन्द्रचक्रपदवीराज्याभिषेकोदकम् ॥
सम्यग्ज्ञानचरित्रदर्शनलता संवृद्धिसम्पादकम्।
कीर्तिश्रीजयसाधकं तवजिन ! स्नानस्य गन्धोदकम् ॥

(इस श्लोकको पढ़कर अपने अङ्गमें गन्धोदक लगाना चाहिये।)

इति श्री लघुरभिषेक विधिः समाप्तः ॥

---

१. घृत दुग्ध दधि आदिके मिलानेसे सर्वौषधि होती है तथा कर्पूरादि सुगन्धद्रव्योंके मिलानेसे भी सर्वौषधि होती है।

(२) विनयपाठ।

इहि विधि ठाडो होय के प्रथम पढ़े जो पाठ ॥
धन्य जिनेश्वर देव तुम नाशे कर्म जु आठ ॥१॥
अनंत चतुष्टयके धनी तुमही हो शिरताज ॥
मुक्ति बधुके कंथ तुम तीन भुवनके राज़ ॥२॥
तिहुँ जगकी पीड़ा हरण भवदधि शोषनहार ॥
ज्ञायक हो तुम विश्वके शिव सुखके करतार ॥३॥
हरता अघ अंधियारके करता धर्म प्रकाश ॥
थिरता पद दातार हो धरता निजगुण रास ॥ ४ ॥
धर्मामृत उर जलधसों ज्ञान भानु तुम रूप
तुमरे चरण शरोजको नावत तिहुँ जग भूप ॥ ५ ॥
मैं वंदों जिनदेवको कर अति निरमल भाव ॥
कर्म बंधके छेदने और न कोई उपाय ॥ ६ ॥
भविजनको भवि कूपतें तुमही काढ़नहार ॥
दीनदयाल अनाथ पति आतम गुण भंडार ॥ ७ ॥
चिदानंद निर्मल कियौ धोय कर्म रज मैल ॥
शरल करांया जगतमैं भविजनको शिव गैल ॥ ८ ॥
तुम पद पंकज पूजतें विघ्न रोग टर जाय ॥
शत्रु मित्र ताको धरें विष निर विषता थाय ॥ ९ ॥
चक्री खग धर इंद्र पद मिलें आपतें आप ॥
अनुक्रम कर शिव पद लहैं नेम सकल हन पाप ॥१०॥
तुम विन मैं व्याकुल भयो जैसे जल विन मीन॥

जन्म जरा मेरी हरो करो मोह स्वाधीन ॥ ११ ॥
पतित बहुत पावन किये गिनती कौन करेव ॥
अंजनसे तारे कुधी जु जय जय २ जिनदेव ॥१२॥
थकी नाव भवि दधि विषैं तुम प्रभु पार करेय ॥
खेवटिया तुम हो प्रभु सो जय २ जिनदेव ॥ १३ ॥
राग सहित जगमें रुले मिले सरागी देव ॥
वीतराग भेटो अबै मेटी राग कुटेव ॥ १४ ॥
कित निगोद कित नारकी कित तिर्यंच अज्ञान ॥
आज धन्य मानुष भयो पायो जिनवर थान ॥ १५ ॥
तुमको पूजें सुर पति अहिपति नरपति देव ॥
धन्य भाग मेरो भयो करन लगो तुम सेव ॥ १६ ॥
अशरणके तुम शरण हो निराधार आधार ॥
मैं डूबत भवसिंधुमें खेओ लगायो पार ॥ १७ ॥
इंद्रादिक गणपति थके तुम विन्ती भगवान ॥
विनती आपनी टारि कै कीजे आप समान ॥ १८ ॥
तुमरी नेक सुदृष्टिसे जग उतरत है पार ॥
हाहा डूबौ जात हों नेक निहार निकार ॥ १९ ॥
जोमैं कहाहूं और सों तोन मिटै उर झार ॥
मेरी तो मोसो बनी तातैं करत पुकार ॥ २० ॥
वंदौं पाचौं परमगुरू सुरगुरु वंदत जास ॥
विघन हरन मंगळ करन पूरन परम प्रकाश ॥ २१ ॥
चौबिसौ जिन पद नमों नमों सारदा माय ॥
शिवमग साधक साधु नमि रच्यौ पाठ सुखदाय ॥२२॥

(३) देवशास्त्रगुरुपूजा ।

ॐ जय जय जय। नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु। णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥

ॐ अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः।

(यहां पुष्पाञ्जलि क्षेपण करना चाहिये)

चत्तारि मंगलं—अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंतलोगुत्तमा, सिद्धलोगुत्तमा, साहूलोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारिसरणं पव्वज्जामि—अरहंतसरणं पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहूसरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मोसरणं पव्वज्जामि॥

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा।

(यहां पुष्पाञ्जलि क्षेपण करना चाहिये)

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा
ध्यायेत्पञ्चनमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ १॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः॥२॥
अपराजितमन्त्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनम्।
मङ्गलेषु च सर्वेषु प्रथमं मङ्गलं मतः॥ ३॥
एसो पंच णमोयारो सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मंगलं॥ ४॥

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म वाचकं परमेष्ठिनः ।

सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥५॥

कर्माष्टकविनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम् ।

सम्यक्त्वादिगुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥६॥

(यहां पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये ।)

(यदि अवकाश हो, तो यहांपर सहस्रनाम पढ़कर दश अर्घ देना चाहिये, नहीं तो नीचे लिखा श्लोक पढ़कर एक अर्घ चढ़ाना चाहिये ।

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।

धवलमङ्गलगानरवाकुले जिनगृहे जिननाथमहं यजे ॥७॥

ॐ श्री भगवज्जिनसहस्रनामभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं

स्याद्वादनायकमनन्तचतुष्टयार्हम् ।

श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतु-

र्जैनेन्द्रयज्ञविधिरेष मयाऽभ्यधायि ॥८॥

स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुङ्गवाय

स्वस्ति स्वभावमहिमोदयसुस्थिताय ।

स्वस्ति प्रकाशसहजोर्जितदृङ्मयाय

स्वस्ति प्रसन्नललिताद्भुतवैभवाय ॥९॥

स्वस्त्युच्छलद्विमलबोधसुधाप्लवाय

स्वस्ति स्वभावपरभावविभासकाय ।

स्वस्ति त्रिलोकविततैकचिदुद्गमाय

स्वस्ति त्रिकालसकलायतविस्तृताय ॥१०॥

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः ।
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्
भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञम् ॥ ११ ॥
अर्हत्पुराणपुरुषोत्तमपावनानि
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव ।
अस्मिन् ज्वलद्विमलकेवलबोधवह्नौ
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥ १२ ॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करना)

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः । श्रीसंभवः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनन्दनः श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः । श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभः । श्रीपुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः । श्रीश्रेयान्स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः । श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति, श्रीअनन्तः । श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः । श्रीकुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः । श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः । श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः । श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः ।

(पुष्पांजलि क्षेपण)

नित्याप्रकम्पाद्भुतकेवलौघाः स्फुरन्मनःपर्ययशुद्धबोधाः ।
दिव्यावधिज्ञानबलप्रबोधाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥१॥

आगे प्रत्येक श्लोकके अन्तमें पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये।

कोष्टस्थधान्योपममेकबीजं संभिन्नसंश्रोतृपदानुसारि ।

चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥२॥
संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादनघ्राणविलोकनानि ।
दिव्यान्मतिज्ञानबलाद्वहन्तः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥३॥
प्रज्ञाप्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः प्रत्येकबुद्धा दशसर्वपूर्वैः ।
प्रवादिनोऽष्टाङ्गनिमित्तविज्ञाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥४॥
जङ्घावलिश्रेणिफलाम्बुतन्तुप्रसूनबीजाङ्कुरचारणाह्वाः ।
नभोऽङ्गणस्वैरविहारिणश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥५॥
अणिम्नि दक्षाः कुशला महिम्नि लघिम्नि शक्ताः कृतिनो गरिम्णि ।
मनोवपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥६॥
सकामरूपित्ववशित्वमैश्यं प्राकाम्यमन्तर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः ।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥७॥
दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं घोरं तपो घोरपराक्रमस्थाः ।
ब्रह्मापरं घोरगुणाश्चरन्तः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥८॥
आमर्षसर्वौषधयस्तथाशी विषंविषा दृष्टिविषंविषाश्च ।
सखिल्लविड्जल्लमलौषधीशाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥९॥
क्षीरं स्रवन्तोऽत्र घृतं स्रवन्तो मधु स्रवन्तोऽप्यमृतं स्रवन्तः ।
अक्षीणसंवासमहानसाश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥१०॥

इति स्वस्तिमङ्गलविधानं ।

सार्वः सर्वज्ञनाथः सकलतनुभृतां पापसन्तापहर्ता
त्रैलोक्याक्रान्तकीर्तिः क्षतमदनरिपुर्घातिकर्मप्रणाशः ।
श्रीमन्निर्वाणसम्पद्वरयुवतिकरालीढकण्ठः सुकण्ठै-
र्देवेन्द्रैर्वन्द्यपादो जयति जिनपतिः प्राप्तकल्याणपूजः ॥१॥
जय जय जय श्रीसत्कान्तिप्रभो जगतां पते

जय जय भवानेव स्वामी भवाम्भसि मज्जताम्।
जय जय महामोहध्वान्तप्रभातकृतेऽर्चनम्
जय जय जिनेश त्वं नाथ प्रसीद करोम्यहम् ॥२॥

ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। (इत्याह्वानम्।) ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। (इति स्थापनम्।) ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र। अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्। (इति सन्निधिकरणम्)

देवि श्रीश्रुतदेवते भगवति त्वत्पादपङ्केरुह-
द्वन्द्वे यामि शिलीमुखत्वमपरं भक्त्या मया प्रार्थ्यते।
मातश्चेतसि तिष्ठ मे जिनमुखोद्भुते सदा त्राहि मां
दृग्दाने मयि प्रसीद भवतीं सम्पूजयामोऽधुना ॥३॥

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भुतद्वादशाङ्गश्रुतज्ञान! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशाङ्गश्रुतज्ञान! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भुतद्वादशाङ्गश्रुतज्ञान! अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट्।

संपूजयामि पूज्यस्य पादपद्मयुगं गुरोः।
तपःप्राप्तप्रतिष्ठस्य गरिष्ठस्य महात्मनः ॥४॥

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह! अत्र अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

देवेन्द्रनागेन्द्रनरेन्द्रवन्द्यान् शुम्भत्पदान् शोभितसारवर्णान्।
दुग्धाब्धिसंस्पर्धिगुणैर्जलौघैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन्यजेऽहम् ॥१॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशदगुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशाङ्गश्रुतज्ञानाय जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

ताम्यत्त्रिलोकोदरमध्यवर्तिसमस्तसत्त्वाऽहितहारिवाक्यान् ।
श्रीचन्दनैर्गन्धविलुब्धभृङ्गैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥२॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद् गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अपारसंसारमहाम्बुराशिप्रोत्तारणे प्राज्यतरीन् सुभक्त्या ।
दीर्घाक्षताङ्गैर्धवलक्षतौघैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन्यजेऽहम् ॥३॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदो रहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

विनीतभव्याब्जविबोधसूर्य्यान्वर्यान् सुचर्य्याकथनैकधुर्य्यान् ।
कुन्दारविन्दप्रमुखैः प्रसूनैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥४॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशाङ्गश्रुतज्ञानाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

कुदर्पकन्दर्पविसर्प्पसर्प्पप्रसह्यनिर्णाशनवैनतेयान् ।
प्राज्याज्यसारैश्चरुभीरसाढ्यैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन्यजेऽहम् ॥५॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद् गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

ध्वस्तोद्यमान्धीकृतविश्वविश्वमोहान्धकारप्रतिघातदीपान् ।
दीपैःकनत्काञ्चनभाजनस्थैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥६॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्रादिगुणविराजमाना-चार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

दुष्टाष्टकर्मेन्धनपुष्टजालसंधूपने भासुरधूमकेतून् ।
धूपैर्विधूतान्यसुगन्धगन्धैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥७॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

क्षुभ्यद्विलुभ्यन्मनसाप्यगम्यान् कुवादिवादाऽस्खलितप्रभावान् ।
फलैरलं मोक्षफलाभिसारैर्जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

सद्वारिगन्धाक्षतपुष्पजातैर्नैवेद्यदीपामलधूपधूम्रैः ।
फलैर्विचित्रैर्घनपुण्ययोगान् जिनेन्द्रसिद्धान्तयतीन् यजेऽहम् ॥९॥

ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानाय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीनि स्वाहा ।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्याय सर्वसाधुभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

ये पूजां जिननाथशास्त्रयमिनां भक्त्या सदा कुर्वते
त्रैसन्ध्यं सुविचित्रकाव्यरचनामुच्चारयन्तो नराः ।
पुण्याढ्या मुनिराजकीर्तिसहिता भूत्वा तपोभूषणा-
स्तेभव्याः सकलावबोधरुचिरां सिद्धिं लभन्ते पराम् ॥१॥

इत्याशीर्वाद (पुष्पांजलि क्षेपण करना)

वृषभोऽजितनामा च संभवश्चाभिनन्दनः ।
सुमतिः पद्मभासश्च सुपार्श्वो जिनसत्तमः ॥१॥
चन्द्राभः पुष्पदन्तश्च शीतलो भगवान्मुनिः ।
श्रेयांश्च वासुपूज्यश्च विमलो विमलद्युतिः ॥२॥
अनन्तो धर्मनामा च शान्तिः कुंथुर्जिनोत्तमः ।
अरश्च मल्लिनाथश्च सुव्रतो नमितीर्थकृत् ॥३॥
हरिवंशसमुद्भूतोऽरिष्टनेमिर्जिनेश्वरः ।
ध्वस्तोपसर्गदैत्यारिः पार्श्वो नागेन्द्रपूजितः ॥४॥
कर्मान्तकृन्महावीरः सिद्धार्थकुलसम्भवः ।

एते सुरासुरौघेण पूजिता विमलत्विषः ॥५॥
पूजिता भरताद्यैश्च भूपेन्द्रैर्भूरिभूतिभिः ।
चतुर्विधस्य सङ्घस्य शान्तिं कुर्वन्तु शाश्वतिम् ॥६॥
जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिः सदाऽस्तु मे
सम्यक्त्वमेव संसारवारणं मोक्षकारणम् ॥७॥
(पुष्पांजलि क्षेपण)
श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः सदाऽस्तु मे ।
सज्ज्ञानमेव संसारवारणं मोक्षकारणम् ॥८॥
(पुष्पांजलि क्षेपण)
गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिः सदाऽस्तु मे ।
चारित्रमेव संसारवारणं मोक्षकारणम् ॥९॥
(पुष्पांजलि क्षेपण)

अथ देवजयमाला प्राकृत ।

वत्ताणुट्ठाणे जणधणुदाणे पइंपोसिउ तुहु खत्तधरु । तुहु चरणविहाणे केवलणाणे तुहु परमप्पउ परमपरु ॥ १ ॥

जय रिसह रिसिसर णमियपाय । जय अजिय जियंगमरोसराय । जय संभव संभवकय विओय । जय अहिणंदण णंदिय पओय ॥२॥

जय सुमइ सुमइ सम्मयपयास । जय पउमप्पह पउमाणिवास । जय जयहि सुपास सुपासगत्त । जय चंदप्पह चंदाहवत्त ॥३॥

जय पुप्फयंत दंतंतरंग । जय सीयल सीयलवयणभंग । जय सेय सेयकिरणोहसुज्ज । जय वासुपुज्ज पुज्जाणपुज्ज ॥४॥

जय विमल विमलगुणसेढिठाण । जय जयहि अणंताणंतणाण । जय धम्म धम्मतित्थियर संत । जय सांति सांति विहियायवत्त ॥ ५ ॥

जय कुंथु कुंथुपहुअंगिसदय । जय अर अर माहर विहियसमय । जय मल्लि मल्लि आदामगंध । जय मुणिसुव्वय सुव्वयणिबंध ॥६॥

जय णमि णमियामरणियरसामि । जय णेमि धम्मरहचक्कणेमि । जय पास पासछिंदणकिवाण । जय वड्ढमाण जसवड्ढमाण ॥७॥

घत्ता ।

इह जाणिय णामहिं, दुरियविरामहिं, परहिंवि णमिय सुरावलिहिं । अणहणहिं अणाइहिं, समियकुवाइहिं, पणविमि अरहंतावलिहिं ॥

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरान्तेभ्योऽर्घं महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

अथ शास्त्रजयमाला प्राकृत ।

संपइ सुहकारण, कम्मवियारण, भवसमुद्दतारण तरणं । जिणवाणि णमस्समि, सत्तपयास्समि, सग्गमोक्खसंगमकरणं ॥१॥

जिणंदमुहाओ विणिग्गयतार । गणिंदविगुंफिय गंथपयार । तिलोयहिमंडण धम्मह खाणि । सयापणमामि जिणिंदहवाणि ॥२॥

अवग्गहईहअवायजुएहि । सुधारणभेयहिं तिण्णिसएहि । भई छत्तीस बहुप्पमुहाणि । सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥३॥

सुदं पुण दोण्णि अणेयपयार । सुवारहभेय जगत्तयसार । सुरिंदणरिंदसमच्चिओ जाणि । सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥४॥

जिणिंदगणिंदणरिंदह रिद्धि। पयासइ पुण्यपुराकिउलद्धि।
णिउग्गु पहिल्लउ एहु वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि॥५॥

जु लोयअलोयह जुत्ति जणेइ। जु तिण्णविकालसरूव भणेइ।
चउगइलक्खण दुज्जउ जाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणी॥६॥

जिणिंदचरित्तविचित्त मुणेइ। सुसावयधम्महिं जुत्ति जणेइ।
णिउग्गुवितिज्जउ इत्थु वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणी॥७॥

सुजीवअजीवह तच्चह चक्खु। सुपुण्ण विपाव विबंध विमुक्खु। चउत्थुणिउग्गु विभासिय जाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणी॥ ८॥

तिभेयहिं ओहि विणाण विचित्तु। चउत्थु रिजोविउलमइ उत्तु।
सुखाइय केवलणाण वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणी॥९॥

जिणिंदह णाणु जगत्तयभाणु। महातमणासिय सुक्खणिहाणु।
पयच्चहुभत्तिभरेण वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणी॥१०॥

पयाणि सुबारहकोडिसयेण। सुलक्खतिरासिय जुत्ति भरेण।
सहससअठावण पंच वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणी॥११॥

इक्कावण कोडि ३ लक्ख अठेव सहस चुलसीदिसया छक्केव।
सढाइगवीसह गंथपयाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणी॥१२॥

घत्ता।

इह जिणवरवाणि विसुद्धमई। जो भवियणणियमण धरई।
सो सुरणरिंदसंपय लहिवि। केवलणाण विउत्तरई॥१३॥

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशाङ्गश्रुतज्ञानाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

अथ गुरुजयमाला प्राकृत ।

भवियह भवतारण, सोलह कारण, अज्जवि तित्थय रत्तणहं ।
तव कम्म असंगइ दयधम्मंगइ पालवि पंच महाव्ययहं ॥ १ ॥

वंदामि महारिसि सीलवंत । पंचेंदियसंजम जोगजुत्त । जे
ग्यारह अंगह अणुसरंति । जे चउदहपुव्वह मुणि थुणंति ॥ २ ॥

पादाणु सारवर कुट्ठबुद्धि । उप्पण्णजाह आयासरिद्धि । जे
पाणाहारी तोरणीय । जे रुक्खमूल आतावणीय ॥ ३ ॥

जे मोणिधाय चंदाहणीय । जे जत्थत्थवणि णिवासणीय । जे
पंचमहव्वय धरणधीर । जे समिदि गुत्ति पालणहि वीर ॥ ४ ॥

जे वड्ढहि देह विरत्तचित्त । जे रायरोसभयमोहचत्त । जे
कुगइहि संवरु विगयलोह । जे दुरियविणासण कामकोह ॥ ५ ॥

जे जल्लमल्ल तिणलित्त गत्त । आरंभ परिग्गह जे विरत्त ।
जे तिण्णकाल बाहर गमंति । छट्ठट्ठम दसमउ तउचरंति ॥६॥

जे इक्कगास दुइगास लिंति । जे णीरसभोयण रइ करंति ।
ते मुणिवर वंदउँ ठियमसाण । जे कम्म डहइवरसुक्कझाण ॥ ७ ॥

बारह विह संजम जे धरंति । जे चारिउ विकहा परहरंति ।
बावीस परीसह जे सहंति । संसारमहण्णउ ते तरंति ॥८॥

जे धम्मबुद्ध महियलि थुणंति । जे काउस्सग्गो णिस गमंति ।
जे सिद्धिविलासणि अहिलसंति । जे पक्खमास आहार लिंति ॥९॥

गोदूहण जे वीरासणीय । जे धणुह सेज वज्जासणीय ।
जे तववलेण आयास जंति । जे गिरिगुहकंदर विवर थंति ॥१०॥

जिणिंदगणिंदणरिंदह रिद्धि। पयासइ पुण्यपुराकिउलद्धि।
णिउग्गु पहिल्लउ एहु वियाणि। सया पणमामि जिणिंदहवाणि॥५॥

जु लोयअलोयह जुत्ति जणेइ। जु तिण्णविकालसरूव भणेइ।
चउग्गइलक्खण दुज्जउ जाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणी॥६॥

जिणिंदचरित्तविचित्त मुणेइ। सुसावयधम्महिं जुत्ति जणेइ।
णिउग्गुवितिज्जउ इत्थु वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणी॥७॥

सुजीवअजीवह तच्चह चक्खु। सुपुण्ण विपाव विबंध विमुक्खु। चउत्थुणिउग्गु विभासिय जाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणी॥ ८॥

तिभेयहिं ओहि विणाण विचित्तु। चउत्थु रिजोविउलमइ उत्तु।
सुखाइय केवलणाण वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणी॥९॥

जिणिंदह णाणु जगत्तयभाणु। महातमणासिय सुक्खणिहाणु।
पयच्चहुभत्तिभरेण वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणी॥१०॥

पयाणि सुवारहकोडिसयेण। सुलक्खतिरासिय जुत्ति भरेण।
सहस्सअठावण पंच वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणी॥११॥

इकावण कोडि उ लक्ख अठेव सहस चुलसीदिसया छक्केव।
सढाइगवीसह गंथपयाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणी॥१२॥

घत्ता।

इह जिणवरवाणि विसुद्धमई। जो भवियणणियमण धरई।
सो सुरणरिंदसंपय लहिवि। केवलणाण विउत्तरई॥१३॥

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशाङ्गश्रुतज्ञानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अथ गुरुजयमाला प्राकृत ।

भवियह भवतारण, सोलह कारण, अज्जवि तित्थय रत्तणहं । तव कम्म असंगइ दयधम्मंगइ पालवि पंच महाव्ययहं ॥ १ ॥

वंदामि महारिसि सीलवंत । पंचेंद्रियसंजम जोगजुत्त । जे ग्यारह अंगह अणुसरंति । जे चउदहपुव्वह मुणि थुणंति ॥ २ ॥

पादाणु सारवर कुट्ठबुद्धि । उप्पण्णजाह आयासरिद्धि । जे पाणाहारी तोरणीय । जे रुक्खमूल आतावणीय ॥ ३ ॥

जे मोणिधाय चंदाहणीय । जे जत्थत्थवणि णिवासणीय । जे पंचमहव्वय धरणधीर । जे समिदि गुत्ति पालणहि वीर ॥ ४ ॥

जे वड्ढहि देह विरत्तचित्त । जे रायरोसभयमोहचत्त । जे कुगइहि संवरु विगयलोह । जे दुरियविणासण कामकोह ॥ ५ ॥

जे जल्लमल्ल तिणलित्त गत्त । आरंभ परिग्गह जे विरत्त । जे तिण्णकाल बाहर गमंति । छट्ठट्ठम दसमउ तउचरंति ॥ ६ ॥

जे इक्कगास दुइगास लिंति । जे णीरसभोयण रइ करंति । ते मुणिवर वंदऊँ ठियमसाण । जे कम्म डहइवरसुक्कझाण ॥ ७ ॥

बारह विह संजम जे धरंति । जे चारिउ विकहा परहरंति । बावीस परीसह जे सहंति । संसारमहण्णउ ते तरंति ॥ ८ ॥

जे धम्मबुद्ध महियलि थुणंति । जे काउस्सग्गो णिस गमंति । जे सिद्धिविलासणि अहिलसंति । जे पक्खमास आहार लिंति ॥ ९ ॥

गोदूहण जे वीरासणीय । जे धणुह सेज वज्जासणीय । जे तववलेण आयास जंति । जे गिरिगुहकंदर विवर थंति ॥ १० ॥

जे सत्तुमित्त समभावचित्त । ते मुणिवरवंदउं दिढचरित्त ।
चउवीसह गंथह जे विरत्त । ते मुणिवरवंदउं जगपवित्त ॥११॥
जे सुज्झा णिज्झा एकचित्त । वंदामि महारिसि मोखपत्त ।
रयणत्तयरंजिय सुद्धभाव । ते मुणिवर बंदउं ठिदिसहाव ॥ १२ ॥

घत्ता।

जे तपसूरा, संजमधीरा, सिद्धवधूअणुराईया ।
रयणत्तयरंजिय, कम्मह गंजिय, ते रिसिवर मइ झाईया ॥ १३ ॥

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

(४) देवशास्त्रगुरुकी भाषा पूजा।

अडिल्ल छन्द ।

प्रथमदेव अरहंन्त सु श्रुतसिद्धान्तजू ।
गुरु निरग्रंथ महन्त मुकतिपुरपन्थजू ॥
तीन रतन जगमाहिं सो ये भवि ध्याइये ।
तिनकी भक्तिप्रसाद परमपद पाइये ॥ १ ॥

दोहा—पूजों पद अरहंतके, पूजों गुरुपद सार ।
पूजों देवी सरस्वती, नितप्रति अष्टप्रकार ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र अवतर २ संवौषट् ।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव ।
वषट् ।

गीता छन्द।

सुरपति उरगनरनाथ तिनकर, वन्दनीक सुपदप्रभा।
अति शोभनीकसुवरण उज्जल, देख छवि मोहित सभा॥
वर नीर क्षीर समुद्रघटभरि, अग्र तसु बहुविधि नचूं।
अरहंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रन्थ नितपूजा रचं॥ १॥

दोहा—मलिनवस्तु हर लेत सब, जलस्वभाव मलछीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ १॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जे त्रिजग उदरमँझार प्रानी, तपत अति दुद्धर खरे।
तिन अहितहरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे॥
तसु भ्रमरलोभित घ्राण पावन, सरस चंदन घसि सचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं॥२॥

दोहा—चंदन शीतलता करै, तपतवस्तु परवान।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ २॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा॥ २॥

यह भवसमुद्र अपार तारण-के निमित्त सुविधि ठई।
अति दृढ़ परमपावन जथारथ, भक्ति वर नौका सही॥
उज्जल अखंडित सालि तंदुल,-पुंज धरि त्रयगुण जचूं।
अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ३॥

दोहा—तंदुल सालि सुगंधि अति, परम अखंडित बीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ ३॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

जे विनयवंत सुभव्यउरअंबुजप्रकाशन भान हैं ।
जे एकमुखचारित्र भाषत, त्रिजगमाहिं प्रधान हैं ॥
लहि कुंदकमलादिक पहुप, भव भव कुवेदनसों बचूं ।
अरहंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिर्ग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ४ ॥

दोहा—विविधभांति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन ।
तासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

अति सबल मद कंदर्प जाको, क्षुधा उरग अमान है ।
दुस्सह भयानक तासु नाशनको सु गरुडसमान है ॥
उत्तम छहों रसयुक्त नित नैवेद्य करि घृतमें पचूं ।
अरहंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिर्ग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशाय चरुं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

जे त्रिजग उद्यम नाश कीनें मोहतिमिर महाबली ।
तिहिकर्मघाती ज्ञानदीपप्रकाशजोति प्रभावली ॥
इह भांति दीप प्रजाल कंचनके सुभाजनमें खचूं ।
अरहंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रन्थ नितपूजा रचूं ॥६॥

दोहा—स्वपरप्रकाशक जोति अति, दीपक तमकरि हीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा॥ ६॥

जो कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूह सम उद्धत लसै।
वर धूप तासु सुगन्धि ताकरि सकलपरिमलता हँसै॥
इह भाँति धूप चढ़ाय नित, भवज्वलनमाहिं नहिं पचूं।
अरहंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ७॥

दोहा—अग्निमाहिं परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ ७॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा॥ ७॥

लोचन सुरसना घ्राण उर, उत्साहके करतार हैं।
मोपै न उपमा जाय वरणी, सकलफलगुणसार हैं॥
सो फल चढ़ावत अर्थ पूरन, परम अमृतरस सचूं॥
अरहंत श्रुत सिद्धांत गुरु, निरग्रंथ नितपूजा रचूं॥ ८॥

दोहा—जे प्रधान फल फलविषैं, पंचकरण-रसलीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ ८॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल परम उज्जवल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूं।
वर धूप निरमल फल विविध, बहु जनमके पातक हरूं॥
इहभाँति अर्घ चढ़ाय नित भवि, करत शिवपंकति मचूं।
अरहंत श्रुत सिद्धांत गुरु, निरग्रंथ नितपूजा रचूं॥९॥

दोहा—वसुविधि अर्घ संजोयके, अति उछाह मन कीन।

जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥९॥

अथ जयमाला।

देवशास्त्रगुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।
भिन्न भिन्न कहुँ आरती. अल्प सुगुण विस्तार ॥१॥

पद्धड़ि छन्द।

चउकर्मकी त्रेसठ प्रकृति नाशि। जीते अष्टादशदोषराशि। जे परम सगुण हैं अनँत धीर। कहवतके छ्यालिस गुण गँभीर ॥२॥

शुभ समवसरणशोभा अपार। शत इंद्र नमत कर शीस धार। देवाधिदेव अरहंत देव। वंदो मनवचतनकरि सु सेव ॥३॥

जिनकी धुनि है ओंकाररूप। निरअक्षरमय महिमा अनूप। दश अष्ट महाभाषा समेत। लघु भाषा सात शतक सुचेत ॥४॥

सो स्यादवादमय सप्त भंग। गणधर गूँथे बारह सु अंग। रवि शशि न हरै सो तमहराय। सो शास्त्र नमों बहु प्रीति ल्याय ॥५॥

गुरु आचारज उवझाय साध। तन नगन रतनत्रयनिधि अगाध। संसारदेह वैराग धार। निरवांछि तपै शिवपद निहार ॥६॥

गुण छत्तिस पच्चिस आठवीस। भवतारनतरन जिहाज ईस। गुरुकी महिमा वरनी न जाय। गुरु नाम जपों मनवचनकाय ॥७॥

सोरठा—कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति विना सरधा धरै।
'द्यानत' सरधावान, अजर अमरपद भोगवै ॥८॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सूचना—आगे जिस भाईको निराकुलता व स्थिरता हो, वह नीचे लिखे अनुसार वीस तीर्थंकरोंकी भाषा पूजा करे। यदि स्थिरता नहीं हो, तो इस पूजाके आगे पत्र १८२ में जो अर्घ लिखा है, उसको पढ़कर अर्घ चढ़ावे।

[५] वीसतीर्थंकर पूजा भाषा।

दीप अढ़ाई मेरु पन, अब तीर्थंकर वीस।
तिन सबकी पूजा करूं, मनवचतन धरि सीस॥१॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरा! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरा! अत्र तिष्ठत तिष्ठत। ठः ठः।

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरा! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

इंद्रफणींद्रनरेंद्रवंद्य, पद निर्मलधारी।
शोभनीक संसार, सार गुण हैं अविकारी।
क्षीरोदधिसम नीरसों (हो), पूजों तृषा निवार॥
सीमंधर जिन आदि दे, बीस विदेहमँझार॥
श्रीजिनराज हो भव, तारणतरणजिहाज॥ १॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥

(इस पूजामें यदि वीस पुंज करना हो तो इस प्रकार मंत्र बोलना चाहिये।)

ॐ ह्रीं सीमन्धर-युग्मंधर-बाहु-सुबाहु-संजात-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-अनन्तवीर्य्य-सूरप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-चन्द्रबाहु-भुजंगम-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरषेण-महापद्म-देवयशाऽजितवीर्य्येति विंशतिविद्यमानतीर्थंकरेभ्यो जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

तीन लोकके जीव, पाप आताप सताये।
तिनकों साता दाता, शीतल वचन सुहाये ॥
बावन चंदनसों जजूं (हो), भ्रमनतपन निरवार । सीमं०॥२॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥ (इसके स्थानमें यदि इच्छा हो, तों बड़ा मंत्र पढ़े ।)

यह संसार अपार, महासागर जिनस्वामी
तातैं तारे बड़ी भक्ति-नौका जग नामी ॥
तंदुल अमल सुगंधसों (हो), पूजों तुम गुणसार । सीमं०॥३. ॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वं० ॥ ३ ॥

भविक-सरोज-विकाश, निंद्यतमहर रविसे हो।
जतिश्रावकआचार कथनको, तुम्हीं बड़े हो ॥
फूलसुवास अनेकसों (हो), पूजों मदनप्रहार । सीमं०॥४॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वं० ॥ ५ ॥

कामनाग विषधाम,-नाशको गरुड़ कहे हो ।
छुधा महादवज्वाल, तासुको मेघ लहे हो ॥

नेवज बहुघृत मिष्टसों (हो), पूजों भूखविडार । सीमं० ॥५ ॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वं० ॥ ५ ॥

उद्यम होन न देत, सर्व जगमांहि भरचो है ।

मोह महातम घोर, नाश परकाश करचौ है ॥

पूजों दीपप्रकाशसों (हो) ज्ञानज्योतिकरतार । सीमं० ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो: मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वं० ॥ ६ ॥

कर्म आठ सब काठ,-भार विस्तार निहारा ।

ध्यान अगनिकर प्रगट, सरव कीनों निरवारा ॥

धूप अनूपम खेवतें (हो), दुःख जलै निरधार । सीमं० ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वं० ।

मिथ्यावादी दुष्ट, लोभऽहंकार भरे हैं ।

सबको छिनमें जीत, जैनके मेर खरे हैं ।

फल अति उत्तमसों जजों (हो), वांछित फलदातार । सी० ॥८॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो: मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल फल आठों दर्व, अरघ कर प्रीत धरी है ।

गणधर इंद्रनिहूतैं, थुति पूरी न करी है ।

'द्यानत' सेवक जानके (हो), जगतैं लेहु निकार । सीमं० ॥९॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अथ जयमाला आरती ।

सोरठा ।

ज्ञानसुधाकर चंद, भविकखेतहित मेघ हो ।
भ्रमतमभान अमंद, तिर्थंकर वीसों नमों ॥१॥

चौपाई ।

सीमंधर सीमंधर स्वामी । जुगमंधर जुगमंधर नामी ।
बाहु बाहु जिन जगजन तारे । करम सुबाहु बाहुबल दारे ॥१॥
जात सुजात केवलज्ञानं । स्वयंप्रभू प्रभू स्वयं प्रधानं ।
ऋषभानन ऋषि भानन दोषं । अनंत वीरज वीरजकोषं ॥ २ ॥
सौरीप्रभ सौरीगुणमालं । सुगुण विशाल विशाल दयालं ।
वज्रधार भवगिरिवज्जर हैं । चन्द्रानन चन्द्रानन वर है ॥३॥
भद्रबाहु भद्रनिके करता । श्रीभुजंग भुजंगम भरता ।
ईश्वर सबके ईश्वर छाजैं । नेमिप्रभु जस नेमि विराजैं ॥४॥
वीरसेन वीरं जग जानें । महाभद्र महाभद्र वखानें ।
नमों जसोधर जसधरकारी । नमों अजितवीरज बलधारी ॥५॥
धनुष पांचसै काय विराजै । आव कोडिपूरब सब छाजै ।
समवसरण शोभित जिनराजा । भवजलतारनतरन जिहाजा ॥६॥
सम्यक रत्नत्रयनिधि दानी । लोकालोकप्रकाशक ज्ञानी ।
शत इन्द्रनिकरि वंदित सोहैं । सुरनर पशु सबके मन मोहैं ॥७॥

दोहा ।

तुमको पूजै वंदना, करै धन्य नर सोय ।
'द्यानत' सरधा मन धरै, सो भी धरमी होय ॥८॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितिर्थंकरेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अथ विद्यमानवीसतीर्थंकरोंका अर्घ ।

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमङ्गलगानरवाकुले जिनगृहे जिनराजमहं यजे ॥१॥

ॐ ह्रीं सीमंधरयुगमंधरबाहुसुबाहुसंजातस्वयंप्रभऋषभानन-अनन्तवीर्यसूरप्रभविशालकीर्तिवज्रधरचन्द्राननचन्द्रबाहुभुजंगमईश्वर नेमिप्रभवीरसेनमहाभद्रदेवयशअजित वीर्येतिविंशतिविद्यमानतीर्थ-करेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

(६) अकृत्रिम चैत्यालयोंका अर्घ ।

कृत्याऽकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान्नित्यं त्रिलोकीगतान्
वन्दे भावनव्यन्तरान्द्युतिवरान्कल्पामरान्सर्वगान् ।
सद्गन्धाक्षतपुष्पदामचरुकैर्दीपैश्च धूपैः फलै-
र्नीराद्यैश्च यजे प्रणम्य शिरसा दुष्कर्मणां शान्तये ॥१॥

ॐ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसम्बन्धिजिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

वर्षेषु वर्षान्तरपर्वतेषु नन्दीश्वरे यानि च मन्दरेषु ।
यावन्ति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वन्दे जिनपुङ्गवानाम् ॥१॥

अवनितलगतानां कृत्रिमाऽकृत्रिमाणां
वनभवनगतानां दिव्यवैमानिकानाम् ।
इह मनुजकृतानां देवराजार्चितानां
जिनवरनिलयानां भावतोऽहं स्मरामि ॥२॥

जम्बूधातकिपुष्करार्द्धवसुधाक्षेत्रत्रये ये भवा-
श्चन्द्राम्भोजशिखण्डिकण्ठकनकप्रावृड्घनाभाजिनः ।
सम्यग्ज्ञानचरित्रलक्षणधरा दग्धाष्टकर्मेन्धना
भूतानागतवर्त्तमानसमये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ॥३॥

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जम्बुवृक्षे
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकररुचिके कुण्डले मानुषाङ्के ।
इष्वाकारेऽञ्जनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यन्तरे स्वर्गलोके
ज्योतिर्लोकेऽभिवन्दे भुवनमहितले यानि चैत्यालयानि ॥४॥

द्वौ कुन्देन्दुतुषारहारधवलौ द्वाविन्द्रनीलप्रभौ
द्वौ बन्धूकसमप्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियङ्गुप्रभौ ।
शेषाः षोडशजन्ममृत्युरहिताः सन्तप्तहेमप्रभा-
स्ते संज्ञानदिवाकराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः ॥५॥

ॐ ह्रीं त्रिलोकसम्बन्धिअकृत्रिमचैत्यालयेभ्योऽर्घं निर्वपामि ॥

इच्छामिभंते—चेइयभत्ति काओसग्गो कओ तस्सालोचेओ अहलोय तिरियलोय उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिण-चेइयाणि ताणि सव्वाणि । तीसुवि लोएसु भवणवासियवाणविंतर-जोयसियकप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गन्धेण दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेण धुव्वेण दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ह्णाणेण । णिच्चकालं अच्चंति पुज्जंति वंदंति णमस्संति । अहमवि इह संतो तत्थ संताइ णिच्चकालं अच्चेमि वंदामि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

(इत्याशीर्वादः । परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्)

अथ पौर्वाह्निकमाध्याह्निकअपराह्निकदेववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं श्रीपञ्चमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(कायोत्सर्ग करना और नीचे लिखे मंत्रका नौवार जाप करना)

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥
ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

(७) सिद्धपूजा ।

ऊर्ध्वा घोरयुतं सबिन्दुसपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं
वर्गापूरितदिग्गताम्बुजदलं तत्सन्धितत्त्वान्वितम् ।
अन्तःपत्रतटेष्वनाहतयुतं ह्रींकारसंवेष्टितं
देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकण्ठीरवः ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठःठः।

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

निरस्तकर्मसम्बन्धं सूक्ष्मं नित्यं निरामयम् ।
वन्देऽहं परमात्मानममूर्त्तमनुपद्रवम् ॥ १ ॥

(सिद्धयन्त्रकी स्थापना)

सिद्धौ निवासमनुगं परमात्मगम्यं
हीनादिभावरहितं भववीतकायम्।
रेवापगावरसरो–यमुनोद्भवानां
नीरैर्यजे कलशगैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

आनन्दकन्दजनकं घनकर्ममुक्तं
सम्यक्त्वशर्मगरिमं जननार्तिवीतम्।
सौरभ्यवासितभुवं हरिचन्दनानां
गन्धैर्यजे परिमलैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्व०॥

सर्वावगाहनगुणं सुसमाधिनिष्ठं
सिद्धं स्वरूपनिपुणं कमलं विशालम्।
सौगन्ध्यशालिवनशालिवराक्षतानां
पुञ्जैर्यजे शशिनिभैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्व० ॥ ३ ॥

नित्यं स्वदेहपरिमाणमनादिसंज्ञं
द्रव्यानपेक्षममृतं मरणाद्यतीतम्।
मन्दारकुन्दकमलादिवनस्पतीनां
पुष्पैर्यजे शुभतमैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व० ॥ ४ ॥

ऊर्द्धस्वभावगमनं सुमनोव्यपेतं
ब्रह्मादिबीजसहितं गगनावभासम् ।
क्षीरान्नसाज्यवटकै रसपूर्णगर्भै-
र्नित्यं यजे चरुवरैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुद्रोगविध्वंसनाय नैवेद्य निर्व० ॥ ५ ॥

आतङ्कशोकभयरोगमदप्रशान्तं
निर्द्वन्द्वभावधरणं महिमानिवेशम् ।
कर्पूरवर्तिबहुभिः कनकावदातै-
र्दीपैर्यजे रुचिवरैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्व० ॥ ६ ॥

पश्यन्समस्तभुवनं युगपन्नितान्तं
त्रैकाल्यवस्तुविषये निविडप्रदीपम् ।
सद्द्रव्यगन्धघनसारविमिश्रितानां
धूपैर्यजे परिमलैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामिती स्वाहा ॥ ७ ॥

सिद्धसुरादिपतियक्षनरेन्द्रचक्रै-
र्ध्येयं शिवं सकलभव्यजनैः सुवन्द्यम् ।

नारिङ्गपूगकदलीफलनारिकेलैः
सोऽयं यजे वरफलैर्वरसिद्धचक्रम् ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्टिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

गन्धाढ्यं सुपयो मधुव्रतगणैः सङ्गं वरं चन्दनं
पुष्पौघं विमलं सदक्षतचयं रम्यं चरुं दीपकम् ।
धूपं गन्धयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये
सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वाञ्छितम् ॥९

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं
सूक्ष्मस्वभावपरमं यदनन्तवीर्यम् ।
कर्मौघकक्षदहनं सुखशस्यबीजं
वन्दे सदा निरुपमं वरसिद्धचक्रम् ॥१०॥

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥१०॥

त्रैलोक्येश्वरवन्दनीयचरणाः प्रापुः श्रियं शाश्वतीं
यानाराध्य निरुद्धचण्डमनसः सन्तोऽपि तीर्थङ्कराः ।
सत्सम्यक्त्वविबोधवीर्यविशदाऽव्याबाधताद्यैर्गुणै—
र्युक्तांस्तानिह तोष्टवीमि सततं सिद्धान् विशुद्धोदयान्
(पुष्पांजलिं क्षिपेत्) ॥११॥

अथ जयमाला।

विराग सनातन शान्त निरंश। निरामय निर्भय निर्मल हंस ॥
सुधाम विबोधनिधान विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥१॥
विदूरितसंसृतभाव निरङ्ग। समामृतपूरित देव विसङ्ग॥
अबन्ध कषायविहीन विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥२॥
निवारितदुष्कृतकर्मविपास। सदामलकेवलकेलिनिवास ॥
भवोदधिपारग शान्त विमोह। प्रसिद्ध विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥३॥
अनन्तसुखामृतसागर धीर। कलङ्करजोमलभूरिसमीर ॥
विखण्डितकाम विराम विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥४॥
विकारविवर्जित तर्जितशोक। विबोसुधनेत्रविलोकितलोक ॥
विहार विराव विरङ्ग विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥५॥
रजोमलखेदविमुक्त विगात्र। निरन्तर नित्य सुखामृतपात्र ॥
सुदर्शनराजित नाथ विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥६॥
नरामरवन्दित निर्मलभाव। अनन्तमुनीश्वरपूज्य विहाव ॥
सदोदय विश्वमहेश विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥७॥
विदंभ वितृष्ण विदोष विनिद्र। परात्पर शङ्कर सार वितन्द्र ॥
विकोप विरूप विशङ्क विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह॥८॥
जरामरणोज्झित वीतविहार। विचिन्तित निर्मल निरहङ्कार ॥
अचिन्त्यचरित्र विदर्प विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह॥९॥
विवर्ण विगन्ध विमान विलोभ। विमाय विकाय विशब्द विशोभ ॥
अनाकुल केवल सर्व विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥१०॥
असमसमयसारं चारुचैतन्यचिह्नं। परपरणतिमुक्तं पद्मनन्दीन्द्रवन्द्यम् ॥

निखिलगुणनिकेतं सिद्धचक्रं विशुद्धं स्मरति नमति यो वा स्तौति सोऽभ्येति मुक्तिम् ॥ ११ ॥

ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

अडिल्ल छन्द।

अविनाशी अविकार परमरसधाम हो।
समाधान सर्वज्ञ सहज अभिराम हो ॥
शुद्धबोध अविरुद्ध अनादि अनंत हो।
जगतशिरोमणि सिद्ध सदा जयवंत हो ॥१॥
ध्यानअगनिकर कर्म कलंक सबै दहे।
नित्य निरंजनदेव सरूपी हो रहे ॥
ज्ञायकके आकार ममत्वनिवारिके।
सो परमातम सिद्ध नमूं सिर नायके ॥२॥

दोहा।

अविचलज्ञानप्रकाशते, गुण अनंतकी खान।
ध्यान धरै सो पाइये, परम सिद्ध भगवान ॥३॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

(८) सिद्धपूजाका भावाष्टक।

निजमनोमणिभाजनभारया, समरसैकसुधारसधारया, सकलबोधकलारमणीयकं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ १ ॥ जलम् ॥

सहजकर्मकलङ्कविनाशनैरमलभावसुभावितचन्दनैः। अनुपमानगुणावलिनायकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥२॥ चन्दनम्।

सहजभावसुनिर्मलतन्दुलैः सकलदोषविशालविशोधनैः। अनुपरोधसुबोधनिधानकं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥३॥ अक्षतान्।

समयसारसुपुष्पसुमालया सहजकर्मकरेण विशोधया। परमयोगबलेन वशीकृतं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥४॥ पुष्पम्।

अकृतबोधसुदिव्यनिवेद्यकैर्विहितजातजरामरणांतकैः। निरवधिप्रचुरात्मगुणालयं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥५॥ नैवेद्यम् ॥

सहजरत्नरुचिप्रतिदीपकै रुचिविभूतितमः प्रविनाशनैः। निरवधिस्वविकाशविकाशनैः सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥७॥ दीपम्।

निजगुणाक्षयरूपसुधूपनैः स्वगुणघातिमलप्रविनाशनैः। विशद्बोधसुदीर्घसुखात्मकं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥७॥ धूपम्।

परमभावफलावलिसम्पदा सहजभावकुभावविशोधया। निजगुणाऽऽस्फुरणात्मनिरञ्जनं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥८॥ फलम्।

नेत्रोन्मीलिविकाशभावनिवहैरत्यन्तबोधाय वै
वार्गन्धाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलैः।
यश्चिन्तामणिशुद्धभावपरमज्ञानात्मकैरर्चयेत्
सिद्धं स्वादुमगाधबोधमचलं संचर्चयामो वयम् ॥९॥ अर्घ्यम्।

सोलहकारणका अर्घ ।

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमङ्गलगानरवाकुले जिनगृहे जिनहेतुमहं यजे ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

दशलक्षणधर्मका अर्घ ।

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमङ्गलगानरवाकुले जिनगृहे जिनधर्ममहं यजे ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्भूतोत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्य्यदशलक्षणिकधर्मेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

रत्नत्रयका अर्घ ।

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमङ्गलगानरवाकुले जिनगृहे जिनरत्नमहं यजे ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशप्रकारसम्यक्चारित्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

अथ पञ्चपरमेष्ठिजयमाला (प्राकृत)

मणुय-णाइन्द-सुरधरियछत्तत्तया । पञ्चकल्लाणसुक्खावली पत्तया ॥ दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं । ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं ॥ १ ॥

जेहिं झाणग्गिवाणेहिं अइथद्धयं । जम्मजरमरणणयरत्तयं दड्ढयं ॥ जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं । ते महा दिंतु सिद्धा वरं णाणयं ॥ २ ॥

पंचहाचारपंचग्गिसंसाहया । बारसंगाइ सुयजलहि अवगाहया ॥ मोक्खलच्छी महंती महं ते सया । सूरिणो दिंतु मोक्खं गया संगया ॥ ३ ॥

घोरसंसारभीमाडवीकाणणे । तिक्खवियरालणहपावपंचाणणे । णट्ठमग्गाण जीवाण पहदेसया । वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया॥४॥

उग्गतवचरणकरणेहिं झीणं गया । धम्मवरझाणक्केक्कझाणं गया । णिब्भरं तवसिरिए समालिंगया । साहओ ते महामोक्खपहमग्गया ॥ ५ ॥

एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदए । गुरुयसंसारघणवेल्लि सो छिंदए ॥ लहइ सो सिद्धसुक्खाइ वरमाणणं । कुणइकम्मिंधणं पुंजपज्जालणं ॥ ६ ॥

आर्या ।

अरुहा सिद्धाइरिया, उवझाया साहु पंचपरमेट्ठी ।

एयाण णमुक्कारो, भवे भवे मम सुहं दिंतु ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुपञ्चपरमेष्ठिभ्योऽर्घं-महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

इच्छामि भंते पञ्चगुरुभक्ति काओसग्गो कओ । तरलोचेओ अट्ठमहापडिहेरसंजुत्ताणं अरहंताणं । अट्ठगुण संपण्णाणं उड्ढलोयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं । अट्ठपवयणमाउसंजुत्ताणं आइरियाणं । आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं ! तिरयण गुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं । णिच्चकालं अच्चेमि पुजेमि वंदामि णमस्सामि । दुःखक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुण संपत्ति होउ मज्झं । इत्याशीर्वादः ।

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

(१) समुच्चयचौवीसी पूजा ।

कविवर वृन्दावनजीकृत

छंद कवित्त ।

वृषभ अजित संभव अभिनंदन, सुमति पदम सुपास जिनराय ।
चंद पुहुप शीतल श्रेयांस नमि, वासुपूज पुजितसुरराय ॥
विमल अनंत धरमजसउज्जल, शांति कुंथु अर मल्लि मनाय ।
मुनिसुव्रत नमिनेमि पासप्रभु, वर्द्धमानपद पुष्प चढ़ाय ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशतिजिनसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् । ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशति-जिनसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः । ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचतुर्विंशति जिनसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

(चाल—द्यानतरायकृत नंदीश्वरद्वीपाष्टककी तथा गर्भाराग-आदि अनेक चालोंमें)

मुनिमनसम उज्वल नीर, प्रासुक गंध भरा ।
भरि कनककटोरी धीर, दीनीं धार धरा ॥
चौवीसों श्रीजिनचंद, आनँदकंद सही ।
पदजजत हरत भवफंद, पावत मोच्छमही ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशाय जलं निर्वपामी० ॥

गोशीर कपुर मिलाय, केशर रंगभरी ।
जिनचरनन देत चढ़ाय, भवआताप हरी ॥ चौवीसों० ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामि० ॥

तंदुल सित सोमसमान, सुंदर अनियारे ।
मुक्ताफलकी उनमान, पुंज धरों प्यारे ॥ चौवीसों० ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामी० ॥

वरकंज कदंब कुरंड, सुमन सुगंध भरे ।
जिन अग्र धरौं गुनमंड, कामकलंक हरे ॥ चौवीसों० ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यः कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामी० ॥

मनमोदनमोदक आदि, सुंदर सद्य बने ।
रसपूरित प्रासुक स्वाद, जजत छुधादिं हने ॥ चौवीसों ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामी० ॥

तमखंडन दीप जगाय, धारों तुम आगे ।
सब तिमिरमोह छय जाय, ज्ञानकला जागे ॥ चौवीसों ० ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो: मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामी० ॥

दशगंध हुताशनमाहिं, हे प्रभु खेवत हों ।
मिस धूम करम जरि जाहिं, तुम पद सेवत हों ॥ चौवीसों० ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपा० ॥

शुचि पक सुरस फल सार, सब ऋतुके ल्यायो ।
देखत दृगमनको प्यार, पूजत सुख पायो ॥ चौवीसों० ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपा० ॥

जलफल आठों शुचि सार, ताको अर्घ करों।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोच्छ वरों ॥
चौवीसों श्रीजिनचंद, आनंदकंद सही।
पदजजत हरत भवफंद, पावत मोच्छमही ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामि० ॥

जयमाला।

दोहा।

श्रीमत तीरथनाथपद, माथ नाय हितहेत।
गाऊं गुणमाला अवै, अजर अमरपददेत ॥ १ ॥

छंद घत्तानंद।

जय भवतमभंजन जनमनकंजन, रंजन दिनमनि स्वच्छकरा।
शिवमगपरकाशक अरिगननाशक, चौवीसों जिनराज वरा ॥ २ ॥

छंद पद्धरी।

जय रिषभदेव रिषिगन नमंत। जय अजित जीत वसुअरि तुरंत ॥
जय संभव भवभय करत चूर। जय अभिनंदन आनंदपूर ॥ ३ ॥
जय सुमति सुमतिदायक दयाल। जय पद्म पद्मदुति तनरसाल ॥
जय जय सुपास भवपासनाश। जय चंद चंदतनदुतिप्रकाश ॥४॥
जय पुष्पदंत दुतिदंत सेत। जय शीतल शीतलगुननिकेत ॥
जय श्रेयनाथ नुतसहसभुज्ज। जय वासवपूजित वासुपुज्ज ॥ ५ ॥
जय विमल विमलपददेनहार। जय जय अनंत गुनगन अपार ॥

जय धर्म धर्म शिवशर्मदेत। जय शांति शांतिपुष्टीकरेत॥ ६ ॥
जय कुंथु कुंथुवादिक रखेय। जय अर जिन वसुअरि छय करेय॥
जय मल्लि मल्ल हतमोहमल्ल। जय मुनिसुव्रत व्रतशल्लदल्ल॥ ७ ॥
जय नमि नित वासवनुत सपेम। जय नेमिनाथ वृषचक्रनेम॥
जय पारसनाथ अनाथनाथ। जय वर्द्धमान शिवनगरसाथ॥ ८ ॥

घत्तानंद छंद।

चौवीस जिनंदा आनँदकंदा, पापनिकंदा सुखकारी।
तिनपदजुगचंदा उदय अमंदा, वासववंदा हितधारी॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिचतुर्विंशतिजिनेभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

सोरठा।

भुक्तिमुक्तिदातार, चौवीसौं जिनराजवर।
तिनपद मनवचधार, जो पूजै सो शिव लहै॥ १० ॥

इत्याशीर्वादः। (पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

[१०] सप्तऋषिपूजा।

छप्पय छन्द।

प्रथम नाम श्रीमन्व दुतिय स्वर मन्व ऋषीश्वर।
तीसर मुनि श्रीनिचय सर्वसुन्दर चौथो वर॥
पंचम श्रीजयवान विनयलालस षष्ठम भनि।
सप्तम जयमित्राख्य सर्वचारित्रधामगनि॥

ये सातों चारणऋद्धिधर, करूं तासु पद थापना।
मैं पूजूं मनवचकायकरि, जो सुख चाहूं आपना॥

ॐ ह्रीं चारणर्द्धिधरश्रीसप्तर्षीश्वरा! अत्रावतरत अवतरत संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

गीता छंद।

शुभतीर्थउद्भव जल अनूपम, मिष्ट शीतल लायके॥
भव तृषा कंद निकंद कारण, शुद्ध घट भरवायके॥
मन्वादि चारण ऋद्धिधारक, मुनिनकी पूजा करूं।
ता करें पातिक हरें सारे, सकल आनँद विस्तरूं॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्वस्वरमन्वनिचयसर्वसुन्दरजयवानविनयलालसमव निसप्तर्षिभ्यो जलं॥ १॥

श्रीखण्ड कदलीनन्द केशर, मन्द मन्द घिसायके।
तसु गंध प्रसरति दिगदिग तर, भर कटोरी लायके॥म०॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्वस्वरमन्वनिचयसर्वसुन्दरजयवानविनयलाल-सनत्रमित्रर्षिभ्यो चन्दनं॥ २॥

अति धवल अक्षत खण्डवर्जित, मिष्ट राजनभोगके।
कलधौत थारा भरत सुंदर, चुनित शुभ उपयोगके॥म०॥

ॐ ह्रीं मन्वादिसप्तर्षिभ्यो अक्षतान् निर्वपामि॥ ३॥

बहु वर्ण सुवरण सुमन आछे, अमल कमल गुलाबके।
केतकी चम्पा चारु मरुआ, चुने निज कर चावके॥म०॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो पुष्पं निर्वपामि॥ ४॥

पकवान नाना भांति चातुर, रचित शुद्ध नये नये।

सद्‌शिष्ट लाड्डू आदि भर बहु, पुरटके थारा लये ॥ म० ॥
ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो नैवेद्यं निर्वपामि ॥ ५ ॥
कलधौत दीपक जड़ित नाना, भरित गोघृतसारसो ।
अति ज्वलित जगमग जोति जाकी, तिमिर नाशनहार सो ॥म०॥
ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो दीपं निर्वपामि ॥ ६ ॥
दिक्‌चक्र गंधित होत जाकर, धूप दशअंगी कही ।
सो लाय मम वच काय शुद्ध, लगायकर खेऊं सही ॥ म० ॥
ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो धूपं निर्वपामि ॥ ७ ॥
वर दाख खारक अमित प्यारे, मिष्ट चुष्ट चुनायके ।
द्रावड़ी दाड़िम चारु पुंगी, थाल भर भर लायके ॥ म० ॥
ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो फलं निर्वपामि ॥ ८ ॥
जल गन्ध अक्षत पुष्प चरु वर, दीप धूप सु लावना ।
फल ललित आठों द्रव्य मिश्रित, अर्घ कीजे पावना ॥ म० ॥
ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामि ॥ ९ ॥

अथ जयमाला ।

त्रिभंगी छन्द ।

वंदूं ऋषिराजा, धर्मजहाजा, निज पर काजा, करत भले ।
करुणाके धारी, गगनविहारी, दुख अपहारी, भरम दले ॥
काटत यमफन्दा, भविजन वृन्दा, करत अनंदा, चरण नमें ।
जो पूजें ध्यावें, मंगल गावें, फेर न आवें, भववनमें ॥

पद्धरी छन्द ।

जय श्रीमनु मुनिराजा महंत । त्रस थावरकी रक्षा करंत ॥ जय मिथ्यातमनाशक पतंग । करुणारसपूरित अंग अंग ॥१॥

जय श्रीस्वरमनु अकलंकरूप । पद सेव करत नित अमर भूप ॥ जय पंच अक्ष जीते महान । तप तपत देह कंचन समान ॥२॥

जय निचय सप्त तत्त्वार्थभास । तप रमातनो तनमें प्रकाश ॥ जय विषय रोध संबोध मान । परणतिके नाशन अचल ध्यान ॥३॥

जय जयहि सर्वसुंदर दयाल । लखि इंद्रजालवत जगतजाल ॥ जय तृष्णाहारी रमण राम । निज परणतिमें पायो विराम ॥ ४ ॥

जय आनँदघन कल्याणरूप । कल्याण करत सबको अनूप ॥ जय मदनाशन जयवान देव । निरमद विरचित सब करत सेव ॥५॥

जय जेय विनयलालस अमान । सब शत्रु मित्र जानत समान ॥ जै कृशितकाय तपके प्रभाव । छवि छटा उड़ति आनंददाय ॥ ६ ॥

जै मित्र सकल जगके सुमित्र । अनगिनत अधम कीने पवित्र ॥ जै चंद्रवदन राजीव-नयन । कबहूं विकथा बोलत न वयन ॥ ७ ॥

जै सातों मुनिवर एक संग । नित गगन गमन करते अभंग ॥ जय आये मथुरापुरमँझार । तहँ मरी रोगको अति प्रचार ॥ ८ ॥

जय जय तिन चरणोंके प्रसाद । सब मरी देवकृत भई वाद ॥ जय लोक करे निर्भय समस्त । हम नमत सदा तिन जोरी हस्त ॥ ९ ॥

जय ग्रीषम ऋतु पर्वतमझार। नित करत करत अतापन योग सार॥ जय तृषा परीषद करत जेर। कहुं रंच चलत नहिं मन सुमेर॥ १०॥

जय मूल अठाइस गुणन धार। तप उग्र तपत आनन्दकार॥ जय वर्षा ऋतुमें वृक्षतीर। तहँ अति शीतल झेलत समीर॥११॥

जय शीत काल चौपटमँझार। कै नदी सरोवर तट विचार॥ जय निवसतध्यानारूढ होय। रंचक नहिं मटकत रोम कोय॥१२॥

जय मृतकासन वज्रासनीय। गौदूहन इत्यादिक गनीय॥ जय आसन नाना भांति धार। उपसर्ग सहत ममता निवार॥१३॥

जय जपत तिहारो नाम कोय। लख पुत्र पौत्र कुल वृद्धि होय॥ जय भरे लक्ष अतिशय भंडार। दारिद्रतनो दुख होय छार॥१४॥

जय चोर अग्नि डांकिन पिशाच। अरु इतिभीत सब नशत सांच॥ जय तुम सुमरत सुख लहत लोक। सुर असुर नवत पद देत धोक॥ १५॥

रोला।

ये सातों मुनिराज महातपलछमी धारी।
परम पूज्य पद धरें सकल जगके हितकारी॥
जो मन वच तन शुद्ध होय सेवै औ ध्यावैं।
सो जन मनरंगलाल अष्ट ऋद्धनको पावै॥

दोहा।

नमत करत चरनन परत, अहो गरीब निवाज।
पंच परावर्तन नितैं, निरवारो ऋषिराज॥

ॐ ह्रीं सप्तर्षिभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(११) अथ सोलहकारण पूजा ।

अडिल्ल ।

सोलहकारण भाय तीर्थंकर जे भये ।
हरषे इंद्र अपार मेरूपै ले गये ॥
पूजा करि निज धन्य लख्यो बहु चावसों ।
हमहू षोडशकारण भावैं भावसों ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणानि ! अत्रावतरतावतरंत । संवौषट् ।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र मम सन्निहितानि भव भव वषट् ।

चौपाई ।

कंचनझारी निरमल नीर । पूजौं जिनवर गुणगंभीर ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ॥
दर्शनविशुद्धि भावना भाय । सोलह तीर्थंकरपददाय ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो जन्ममृत्युविनाशाय जलं नि० ॥

चंदन घसौं कर्पूर मिलाय, पूजौं श्रीजिनवरके पाय ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दर्शन० ॥२॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं० ॥

तंदुल धवल सुगंध अनूप। पूजों जिनवर तिहुँजगभूप।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दर्शनवि० ॥३॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि० ॥

फूल सुगंध मधुपगुंजार। पूजों जिनवर जगआधार।
परमगुरु हो जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दर्शन० ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि० ॥

सदनेवज बहुविध पकवान। पूजों श्रीजिनवर गुणखान।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दर्शनवि० ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि० ॥

दीपकजोति तिमर छयकार। पूजूं श्रीजिन केवलधार।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥
दर्शनविशुद्ध भावना भाय। सोलह तीर्थंकरपद पाय।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि० ॥

अगर कपूर गंध शुभ खेय। श्रीजिनवर आगें महकेय।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दर्शन० ॥७॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामि ॥ ७ ॥

श्रीफल आदि बहुत फलसार। पूजों जिन वांछितदातार।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दर्शन० ॥८॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामि ॥ ८ ॥

जल फल आठों दरब चढ़ाय। 'द्यानत' वरत करों मनलाय परम-गुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दर्शन० ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामि ॥ ९ ॥

अथ जयमाला।

दोहा।

षोडशकारण गुण करै, हरै चतुरगतिवास।
पापपुण्य सब नाशकै. ज्ञानभान परकास ॥ १ ॥

चौपाई १६ मात्रा।

दर्शनविशुद्ध धरै जो कोई। ताको आवागमन न होई ॥
विनय महा धारै जो प्रानी। शिववनिताकी सखी बखानी ॥२॥
शील सदा दिढ़ जो नर पालै। सो औरनकी आपद टालै ॥
ज्ञानाभ्यास करै मनमाहीं। ताकै मोहमहातम नाहीं ॥३॥
जो संवेगभाव विस्तारै। सुरगमुकतिपद आप निहारै ॥
दान देय मन हरष विशेखै। इह भव जस परभव सुख देखै ॥४॥

जो तप तपै खपै अभिलाषा । चूरै करमशिखर गुरु भाषा ॥
साधुसमाधि सदा मन लावै । तिहुंजगभोगि भोग शिव जावै ॥५॥
निशदिन वैयावृत्त करैया । सो निहचै भवनीर तिरैया ॥
जो अरहंतभगति मन आनै । सो मन विषय कषाय न जानै ॥६॥
जो आचारजभगति करै है । सो निर्मल आचार धरै है ॥
बहुश्रुतवंतभगति जो करई । सो नर संपूरन श्रुत धरई ॥ ७ ॥
प्रवचनभगति करै जो ज्ञाता । लहै ज्ञान परमानँददाता ॥
षट्आवश्य काल जो साधै । सो ही रतनत्रय आराधै ॥ ८ ॥
धरमप्रभाव करैं जे ज्ञानी । तिन शिवमारग रीति पिछानी ॥
वत्सलअंग सदा जो ध्यावै । सो तीर्थंकरपदवी पावै ॥ ९ ॥

दोहा ।

एही सोलहभावना, सहित धरै व्रत जोय ।
देवइन्द्रनरवंद्यपद, 'द्यानत' शिवपद होय ॥१०॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामि स्वाहा ॥

(अर्घ्यके बाद विसर्जन भी करना चाहिये)

(१२) दशलक्षणधर्मपूजा ।

अडिल्ल ।

उत्तम छिमा मारदव आरजवभाव हैं ।
सत्य शौच संजम तप त्याग उपाव हैं ॥

आकिंचन ब्रह्मचरज धरम दश सार हैं ।
चहुंगतिदुखतैं काढ़ि मुकतकरतार हैं ॥१॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्रावतर अवतर! संवौषट् ।
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

सोरठा ।

हेमाचलकी धार, मुनिचित सम शीतल सुरभ ।
भव आताप निवार, दसलच्छन पूजों सदा ॥ १ ॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय जलं निर्वपामि ॥१॥
चंदन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा । भवआ० ॥ २ ॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय चंदनं निर्वपामि ॥ २ ॥
अमल अखंडित सार, तंदुल चंद्रसमान शुभ ॥ भवआ० ॥ ३ ॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षतान् निर्वपामि ॥३॥
फूल अनेकप्रकार, महकैं ऊरधलोक लों । भवआ० ॥ ४ ॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय पुष्पं निर्वपामि ॥ ४ ॥
नेवज विविध निहार, उत्तम षटरससंजुगत ॥ भवआ० ॥ ५ ॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय नैवेद्य निर्वपामि ॥ ५ ॥
बाति कपूर सुधार, दीपकजोति सुहावनी । भवआ० ॥ ६ ॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय दीपं निर्वपामि ॥ ६ ॥
अगर धूप विस्तार, फैलै सर्व सुगंधता ॥ भवआ० ॥ ७ ॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय धूपं निर्वपामि ॥ ७ ॥
फलकी जाति अपार, घ्रान नयन मनमोहने ॥ भवआ० ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय फलं निर्वपामि ॥ ८ ॥

आठों दरब संवार, 'द्यानत' अधिक उछाहसों ॥ भवआ० ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मायार्घ्यं निर्वपामि ॥ ९ ॥

अंगपूजा।

सोरठा।

[१]पीडैं दुष्ट अनेक, बांध मार बहुविधि करैं।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजे पीतमा ॥१॥

चौपाई मिश्रित गीताछंद।

उत्तमछिमा गहो रे भाई। इहभव जस परभव सुखदाई ॥
गाली सुनि मन खेद न आनो। गुनको औगुन कहै अयानो ॥
कहि है अयानो वस्तु छीनै, बांध मार बहुविधि करै।
घरतैं निकारै तन विदारै, वैर जो न तहां धरै ॥
तैं करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा।
अति क्रोध अगनि बुझाय प्रानि, साम्य जल ले सियरा ॥१॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

मान महाविषरूप करहि नीचगति जगतमें।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा ॥ २ ॥

उत्तम मार्दवगुन मन माना। मान करनको कौन ठिकाना ॥
वस्यो निगोदमाहितैं आया। दमरी रूकन भाग विकाया ॥

---

१ कहीं २ सोरठा कह कर प्रत्येक धर्मकी स्थापना करते हैं और फिर आगेकी चौपाई तथा गीता कह कर अर्घ चढ़ाते हैं और कहीं २ सोरठाके अन्तमे भी अर्घ चढ़ाते हैं और चौपाई गीताके अन्तमें भी अर्घ चढ़ाते हैं। यथार्थमे सोरठा और चौपाई गीताके अन्तमें एक २ धर्मका अङ्ग २ एक २ अर्घ चढ़ाना चाहिये।

कूकन विकाया भागवशतें, देव इकइंद्री भया ।
उत्तम मुआ चंडाल हूआ, भूप कीड़ोंमें गया ॥
जीतव्य-जोवन-धनगुमान, कहा करै जलबुदबुदा ।
करि विनय बहुगुन बड़े जनकी, ज्ञानका पावे उदा ॥२॥
ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

कपट न कीजे कोय, चोरनके पुर ना बसै ।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु संपदा ॥ ३ ॥
उत्तमआर्जवरीति बखानी । रंचक दगा बहुत दुखदानी ॥
मनमें हो सो वचनउचरये । वचन होय सो तनसौं करिये ॥
करिये सरल तिहुंजोग अपने, देख निरमल आरसी ।
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपटप्रीति अँगारसी ॥
नहिं लहै लछमी अधिक छलकरि, करमबंधविसेखता ।
भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता ॥ ३ ॥
ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

धरि हिरदै संतोष, करहु तपस्या देहसौं ।
शौच सदा निरदोष, धरम बड़ो संसारमें ॥ ४ ॥
उत्तम शौच सर्व जग जाना । लोभ पापको बाप बखाना ॥
आसापास महा दुखदानी । सुख पावै संतोषी प्रानी ॥
प्रानी सदा शुचि शीलजपतप, ज्ञानध्यानप्रभावतैं ।

तत्त्वार्थसूत्रमें सत्यसे पहले शौचधर्मको कहा है, इस कारण इस पूजामें भी हमने तत्वार्थसूत्रके पाठानुसार शौचधर्मको पहले कर दिया है।

नित गंगजमुन समुद्र न्हाये, अशुचिदोष सुभावतैं ।
ऊपर अमल मल भर्‌यो भीतर, कौन विध घट शुचि कहै ॥
बहु देह मैली सुगुनथैली, शौचगुन साधू लहै ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

कठिन वचन मति बोल, परनिंदा अरु झूठ तज ।
सांच जवाहर खोल, सतवादी जगमें सुखी ॥ ५ ॥
उत्तम सत्य वरत पालीजै । परविश्वास घात नहिं कीजै ।
सांचे झूठे मानुष देखो । आपनपूत स्वपास न पेखो ॥
पेखो तिहायत पुरुष सांचेको, दरब सब दीजिये ।
मुनिराज श्रावककी प्रतिष्ठा, सांचगुन लख लीजिये ॥
ऊंच सिंहासन बैठ वसुनृप, धरमका भूपति भया ।
बच झूठसेती नरक पहुंचा, सुरगमें नारद गया ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

काय छहों प्रतिपाल, पंचेन्द्री मन वश करो ।
संजम रतन संभाल, विषयचोर बहु फिरत हैं ॥ ६ ॥
उत्तम संजम गहु मन मेरे । भवभवके भाजैं अघ तेरे ।
सुरग नरक पशुगतिमें नाहीं । आलसहरन करन सुख ठाहीं ॥
ठाहीं पृथी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो ।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो ॥
जिस विना नहिं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जगकीचमें ।
इक घरी मत विसरो करो नित, आव जमसुखबीचमें ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमसंयमधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥

तप चाहैं सुरराय, करमसिखरको वज्र है।
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकति सम॥ ७॥
उत्तम तप सबमाहिं बखाना। करमशिखरको वज्र समाना॥
बस्यो अनादिनिगोदमझारा। भूविकलत्रय पशुतन धारा॥
धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आव निरोगता।
श्रीजैनवानी तत्त्वज्ञानी, भई विषयपयोगता॥
अति महादुर्लभ त्याग विषय, कषाय जो तप आदरैं।
नरभवअनूपमकनकघरपर, मणिमयी कलसा धरैं॥ ७॥

ॐ ह्रीं उत्तमतपोधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥७॥

दान चार परकार, चार संघको दीजिये।
धन बिजुली उनहार, नरभव लाहो लीजिये॥ ८॥
उत्तमत्याग कह्यो जगसारा। औषध शास्त्र अभय आहारा॥
निहचै रागद्वेष निरवारै। ज्ञाता दोनों दान संभारै॥
दोनों संभारै कूपजलसम, दरब घरमें परिनया।
निजहाथ दीजे साथ लीजे, खाय खोया बह गया॥
घनि साध शास्त्र अभयदिवैया, त्याग राग विरोधको॥
विन दान श्रावक साध दोनों, लहै नाहीं बोधको॥ ८॥

ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥८॥

परिग्रह चौबिस भेद, त्याग करैं मुनिराजजी।
तिसनाभाव उछेद, घटती जान घटाइये॥ ९॥
उत्तम आकिंचन गुण जानौं। परिग्रहचिंता दुख ही मानौं॥
फाँस तनकसी तनमें सालै। चाह लंगोटीकी दुख भालै॥

पाळै न समता सुख कभी नर विना मुनिमुद्रा धरैं ।
धनि नगनपर तन—नगन ठाड़े, सुर असुर पायन परैं ॥

ॐ ह्रीं उत्तमाकिञ्चन्यधर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामिति स्वाहा ॥९॥

घरमांही तिरना जो घटावैं, रुचि नहीं संसारसौं ।
बहु धन बुरा हू भला कहिये, लीन पर उपगारसौं ॥ ९ ॥
शीलबाड़ि नौ राख, ब्रह्मभाव अंतर लखो ।
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नरभव सदा ॥ १० ॥
उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ । माता बहिन सुता पहिचानौ ॥
सहैं बनबरषा बहु सूरे । टिकें न नैन बान लखि कूरे ॥
कूरे तियाके अशुचितनमें, कामरोगी रति करैं ।
बहु मृतक सड़हिं, मसानमांहीं, काक ज्यों चोंचैं भरैं ।
संसारमें बिषबेल नारी, तजि गये जोगीश्वरा ।
'द्यानत' धरमदशपैड़ि चढ़िकैं, शिवमहलमें पग धरा ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामिति स्वाहा ॥ १० ॥

अथ जयमाला ।

दोहा ।

दशलच्छन वंदौं सदा, मनवंछित फलदाय ।
कहौं आरती भारती, हमपर होहु सहाय ॥ १ ॥

वेसरी छंद ।

उत्तम छिमा जहां मन होई । अंतरबाहर शत्रु न कोई ॥
उत्तममार्दव विनय प्रकासै । नाना भेद ज्ञान सब भासै ॥ २ ॥
उत्तमआर्जव कपट मिटावै । दुरगति त्यागी सुगति उपजावै ॥

उत्तमशौच लोभ परिहारी। संतोषी गुनरतनभँडारी ॥ ३ ॥
उत्तमसत्यवचन मुख बोले। सो प्रानी संसार न डोले।
उत्तमसंयम पाले ज्ञाता। नरभव सफल करे ले साता॥ ४ ॥
उत्तमतप निरवांछित पाले। सो नर करमशत्रुको टाले॥
उत्तमत्याग करे जो कोई। भोगभूमि-सुर-शिवसुख होई ॥ ५ ॥
उत्तमआकिंचनव्रत धारे। परमसमाधिदशा विसतारे॥
उत्तमब्रह्मचर्य मन लावे। नरसुरसहित मुकतिफल पावे ॥ ६ ॥

दोहा।

करे करमकी निरजरा, भवपींजरा विनाशि।
अजर अमरपदको लहे, 'द्यानत' सुखकी राशि ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्य ब्रह्मचर्यदशलक्षणधर्माय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

(अर्घ्यके बाद विसर्जन करना)

———

(१३) पंचमेरुपूजा।

गीताछंद।

तीर्थंकरोंके न्हवनजलतैं, भये तीरथ शर्मदा।
तातैं प्रदच्छन देत सुरगन, पंचमेरनकी सदा॥
दो जलधि ढाईदीपमें सब, गनतमूल विराजही।
पूजौं असी जिनधाम प्रतिमा, होंहि सुख, दुख भाजही ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्रावतरावतर। संवौषट्।

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।—

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र ममसन्निहितो भव भव वषट्।

अथाष्टक।

चौपाई आंचलीबद्ध (१५ मात्रा)

सीतलमिष्टसुवास मिलाय। जलसौं पूजौं श्री जिनराय॥
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥
पांचों मेरु असी जिनधाम। सब प्रतिमाको करौं प्रनाम॥
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥ १॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो जलं निर्वपामि॥ १॥

जल केसरकरपूरमिलाय। गंधसौं पूजौं श्रीजिनराय॥
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥ पांचों०॥२॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः चन्दनं निर्वपामि॥

अमल अखंड सुगंध सुहाय। अच्छतसौं पूजौं जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥ पांचों०॥३॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थबिम्बेभ्यो अक्षतान् नि०॥

वरन अनेक रहे महकाय, फूलनसौं पूजौं जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥ पांचों०॥४॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः पुष्पं नि०॥

मनवांछित बहु तुरत बनाय। चरुसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥ पांचों०॥५॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो नैवेद्यं नि० ॥
तमहर उज्जल जोति जगाय। दीपसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पांचों० ॥६॥
ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो दीपं नि० ॥
खेउं अगर परिमल अधिकाय। धूपसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पांचों० ॥७॥
ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो धूपं नि० ॥
सुरस सुवर्ण सुगंध सुभाय। फलसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय, ॥ पांचों० ॥८॥
ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः फलं नि० ॥
आठ दरबमय अरघ बनाय। 'द्यानत' पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पांचों० ॥९॥
ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं नि०॥

अथ जयमाला।

सोरठा।

प्रथम सुदर्शन स्वाम, विजय अचल मंदर कहा।
विद्युन्माली नाम, पंचमेरु जगमैं प्रगट ॥ १ ॥

वेसरी छंद।

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजै। भद्रशाल वन भूपर छाजै।
चैत्यालय चारों सुखकारी। मनवचतन वंदना हमारी ॥ २ ॥
ऊपर पंच शतकपर सोहै। नंदनवन देखत मन मोहै ॥ चै० ॥३॥
साढ़े बासठ सहस ऊंचाई। वन सुमनस शोभै अधिकाई ॥चै० ॥४॥

ऊंचा जोजन सहस छतीसं। पांडुकवन सोहै गिरिसीसं ॥चै० ॥५॥
चारों मेरु समान बखानो। भूपर भद्रसाल चहुं जानो ॥चै० ॥६॥
चैत्यालय सोलह सुखकारी। मनवचतन वंदना हमारी ॥चै० ॥७॥
ऊंचे पांच शतकपर भाखें। चारों नंदनवन अभिलाखे ॥चै० ॥८॥
चैत्यालय सोलह सुखकारी। मनवचतन वंदना हमारी ॥चै० ॥९॥
साढे पचपन सहस उतंगा। वन सौमनस चार बहुरंगा ॥चै० ॥१०॥
चैत्यालय सोलह सुखकारी। मनवचतन वंदना हमारी ॥चै० ॥११॥
उच्च अठाइस सहस बताये। पांडुक चारों नव शुभ गाये ॥चै० ॥१२॥
चैत्यालय सोलह सुखकारी। मनवचतन वंदना हमारी ॥चै० ॥१३॥
सुरनर चारन वंदन आवैं। सो शोभा हम किह मुख गावैं ॥चै० ॥१४॥
चैत्यालय अस्सी सुखकारी। मनवचतन वंदना हमारी ॥चै० ॥१५॥

दोहा।

पंचमेरकी आरती, पढ़े सुनै जो कोय।
'द्यानत,' फल जानैं प्रभू, तुरत महासुख होय ॥ १६ ॥

ॐ ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामि ॥

(अर्घ्यके बाद विसर्जन करना चाहिये)

(१४) रत्नत्रयपूजा।

दोहा।

चहुंगतिफनिविषहरनमणि, दुखपावक जलधार
शिवसुखसुधासरोवरी, सम्यकत्रयी निहार ॥१॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय ! अत्रावतरावतर। संवौषट्।

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय ! अत्र मम सन्निहितं भव भव । वषट् ।

सोरठा ।

क्षीरोदधि उनहार, उज्ज्वल जल अति सोहना ।

जनमरोगनिरवार, सम्यकरत्नत्रय भजों ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय जन्मरोगविनाशनाय जलं निर्व० ॥१॥

चंदन केसर गारि, परिमल महा सुरंग मय । जन्मरो० ॥२॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामि ॥ २ ॥

तंदुल अमल चितार, वासमती सुखदायके । जन्मरो० ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामि ॥ ३ ॥

महकें फूल अपार, अलि गुंजें ज्यों थुति करें । जन्मरो० ॥४॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामि ॥ ४ ॥

लाडू बहु विस्तार, चीकन मिष्ट सुगंधयुत । जन्मरो० ॥५॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामि ॥ ५ ॥

दीपरतनमय सार, जोत प्रकाशै जगतमें । जन्मरो० ॥६॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामि ॥ ६ ॥

धूप सुवास विथार, चंदन अगर कपूरकी । जन्मरो० ॥७॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामि ॥७॥

फलशोभा अधिकार, लौंग छुहारे जायफल। जन्मरो० ॥८॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामि ॥८॥

आठदरब निरधार, उत्तमसों उत्तम लिये। जन्मरो० ॥९॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामि ॥९॥

सम्यकदरसनज्ञान, व्रत शिवमग तीनों मयी।
पार उतारन यान, 'द्यानत' पूजौं व्रतसहित ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामि ॥ १० ॥

दर्शनपूजा।

दोहा।

सिद्ध अष्टगुणमय प्रगट, मुक्तजीवसोपान।
जिहवीन ज्ञानचरित अफल, सम्यकदर्श प्रधान ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शन! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। सन्निहितं भव भव वषट्।

सोरठा।

नीर सुगंध अपार, त्रिषा हरै मल छय करै।
सम्यकदर्शनसार, आठ अंग पूजौं सदा ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

जल केसर घनसार, ताप हरै सीतल करै। सम्यकद० ॥२॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै। सम्यक० ॥३॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।३।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै। सम्यकद० ॥४॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

नेवज विविधप्रकार, छुधा हरै थिरता करै । सम्यकद० ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

दीपज्योति तमहार, घटपट परकाशै महा । सम्यकद० ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥

धूप घ्रानसुखकार, रोग विघन जड़ता हरै । सम्यकद० ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥

श्रीफलआदि विथार, [illegible] सुरशिवफल करै । सम्यकद०॥८॥

ॐ ह्रीं [illegible]दर्शनाय फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥८॥

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु । सम्यकद० ॥९॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति ॥ ९ ॥

जयमाला ।

दोहा ।

आपआप निहचै लखै, तत्वप्रतीति व्योहार ।
रहितदोष पच्चीस है, सहित अष्ट गुन सार ॥ १॥

चौपाइमिश्रित गीता छंद ।

सम्यकदरसन रतन गहीजै । जिनवचनमैं संदेह न कीजै ।
इहभव विभवचाह दुखदानी । परभवभोग चहै मत प्रानी ॥
प्रानी गिलान न करि अशुचि लखि, धरमगुरुप्रभु परखिये ।
परदोष ढकिये धरम डिगतेको सुथिर कर हरखिये ॥
चहुसंघको वात्सल्य कीजे, धरमकी परभावना ।
गुन आठसों गुन आठ लहिके, इहां फेर न आवना ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसहितपञ्चविंशतिदोषरहिताय सम्यग्दर्शनाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

ज्ञानपूजा ।

दोहा ।

पंचभेद जाके प्रगट, ज्ञेयप्रकाशन भान ।
मोह–तपन–हर–चंद्रमा, सोई सम्यकज्ञान ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।
ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान अत्र मम सन्निहितं भव भव । वषट् ॥

सोरठा ।

नीर सुगंध अपार, त्रिषा हरै मल छय करै ।
सम्यक्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

जलकेसर घनसार, ताप हरै शीतल करै । सम्यकज्ञा० ॥२॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

अछत अनुप निहार, दारिद नाशै सुख भरै । सम्यकज्ञा० ॥३॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

पहुपसुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै । सम्यकज्ञा० ॥४॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

नेवज विविधप्रकार, छुधा हरै थिरता करै । सम्यकज्ञा० ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

दीपज्योतितमहार, घटपट परकाशै महा । सम्यकज्ञा० ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥

धूप घ्रानसुखकार, रोग विघन जड़ता हरै। सम्यकज्ञा० ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुरशिवफल करै। सम्यकज्ञा० ॥८॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥८॥

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु। सम्यकज्ञा० ॥९॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥९॥

अथ जयमाला।

दोहा।

आप आप जानैं नियत, ग्रंथपठन व्योहार।
संशय विभ्रम मोह विन, अष्टअंग गुनकार ॥ १ ॥

चौपाई मिश्रित गीता छंद।

सम्यक्ज्ञान रतन मन भाया। आगम तीजा नैन बताया।
अच्छर शुद्ध अरथ पहिचानौ। अच्छर अरथ उभय सँग जानौ ॥
जानौं सुकालपठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइये।
तपरीति गहि बहु मान देकैं, विनयगुन चित लाइये ॥
ए आठ भेद करम उछेदक, ज्ञानदर्पन देखना।
इस ज्ञानहीसों भरत सीझा, और सब पटपेखना ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

चारित्र पूजा।

दोहा।

विषयरोग औषध महा, दवकषायजलधार।
तीर्थंकर जाकौं धरैं, सम्यकचारितसार ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र ! अत्र मम सन्निहितं भव भव। वषट्।

सोरठा।

नीर सुगंध अपार, त्रिषा हरे मल छय करै।

सम्यकचारित धार, तेरहविध पूजौं सदा॥ १॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

जल केशर घनसार, ताप हरै शीतल करै। सम्यकचा० ॥२॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै। सम्यकचा० ॥३॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।३।

पुहपसुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै। सम्यकचा० ॥४॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यकचारित्राय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

नेवज विविधप्रकार, छुधा हरैं थिरता करै। सम्यकं० ॥५॥

दीपजोती तमहार, घटपट प्रकाशै महा। सम्यकचा०॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥

धूप घ्रान सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै। सम्यकचा० ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशसम्यक्चारित्राय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

श्रीफलआदि विथार, निहचै सुरशिवफल करै। सम्यक०॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय फलं निर्वपामिति स्वाहा॥ ८ ॥

जल गंगाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु। सम्यक० ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अर्घ्यं निर्वपामिति स्वाहा॥ ९ ॥

अथ जयमाला ।

दोहा ।

आपआप थिर नियत नय, तपसंजम व्योहार ।
स्वपर दया दोनों लिये, तेरहविध दुखहार ॥ १ ॥

चौपाई मिश्रित गीता छंद ।

सम्यकचारित रतन संभालो । पांच पाप तजिकैं व्रत पालो ।
पंचसमिति त्रय गुपति गहीजै । नरभव सफल करहु तन छीजै ॥
छीजै सदा तनको जतन यह, एक संजम पालिये ।
बहु रुल्यो नरकनिगोदमाहिं, कषायविषयनि टालिये ॥
शुभ करमजोग सुघट आया पार हो दिन जात है ।
'द्यानत' धरमकी नाव बैठो, शिवपुरी कुशलात है ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधिसम्यक्चारित्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

अथ समुच्चय जयमाला ।

दोहा ।

सम्यकदरशन ज्ञान व्रत, इन विन मुकत न होय ।
अंध पंगु अरु आलसी, जुदे जले दव-लोय ॥ १ ॥

चौपाई १६ मात्रा ।

तापै शिवतिय प्रीति बढ़ावै । जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै ॥ ९ ॥
ताकों चहुंगतिके दुख नाहीं । सो न परै भवसागरमांहीं ॥
जनमजरामृतु दोष मिटावै । जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै ॥ ३ ॥
सोई दशलच्छनको साधै । सो सोलहकारण आराधै ॥
सो परमातम पद उपजावै । जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै ॥ ४ ॥

सोई शक्रचक्रिपद लेई। तीनलोकके सुख विलसेई ॥
सो रागादिक भाव वहावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै ॥ ५ ॥
सोई लोकालोक निहारै। परमानंददशा विसतारै ॥
आप तिरै औरन तिरवावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै ॥ ६ ॥

दोहा।

एकस्वरूपप्रकाश निज, वचन कह्यो नहिं जाय।
तीनभेद व्योहार सब, द्यानतको सुखदाय ॥ ७ ॥
सम्यग्रत्नत्रयाय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।
(अर्घ्यके बाद विसर्जन करना चाहिये)

---

(१५) श्रीनन्दीश्वरपूजा।

अडिल्ल।

सरब परवमें बड़ो अठाई परव है।
नंदीश्वर सुर जाहिं लेय वसु दरब है ॥
हमें सकति सो नाहिं इहां करि थापना।
पूजों जिनगृह प्रतिमा है हित आपना ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

कंचनमणिमय भृंगार, तीरथनीरभरा ।
तिहुँ धार दयी निरवार, जामन मरन जरा ॥
नंदश्वर श्रीजिनधाम, बावन पुंज करों ।
वसुदीन प्रतिमा अभिराम, आनँदभाव धरों ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जिना-लयस्थजिनप्रतिमाभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

भवतपहर शीतलवास, सो चंदनमाहीं ।
प्रभु यह गुन कीजे सांच, आया तुम ठांही ॥ नंदी० ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणे द्विपञ्चाश-ज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो भवतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामि ॥ २ ॥

उत्तम अक्षत जिनराज, पुंज धरे सोहै ॥
सब जीते अक्षसमाज, तुम सम अरको है ॥ नंदी० ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जि-नालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामि ॥ ३ ॥

तुम कामविनाशक देव, ध्याऊं फूलनसों ।
लहिं शील लच्छमी एव, छूटूँ सूलनसौं ॥ नंदी० ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जि-नालयस्थजिनप्रतिमाभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामि ॥ ४ ॥

नेवज इन्द्रियबलकार, सो तुमने चुरा ।
चरु तुम ढिग सोहै सार, अचरज है पूरा ॥ नन्दी ० ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जि-नालयस्थजिनप्रतिमाभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामि ॥ ५ ॥

दीपककी ज्योति प्रकाश, तुम तनमाहिं लसे ॥
टूटै करमनकी राश, ज्ञानकणी दरसै ॥ नन्दी० ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वर द्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामि ॥ ६ ॥

कृष्णागरुधूपसुवास दशदिशिनारि वरै ।
अति हरसभाव परकाश, मानों नृत्य करै ॥ नंदी० ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामि ॥ ७ ॥

बहुविधफल ले तिहुंकाल, आनँद राचत हैं ।
तुम शिवफल देहु दयाल, तो हम जाचत हैं ॥
नंदीश्वरश्रीजिनधाम, बावन पुंज करों ।
वसुदिन प्रतिमा अभिराम. आनँदभाव धरों ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामि ॥ ८ ॥

यह अरघ कियो निज हेत, तुमको अरपत हों ।
'द्यानत' कीनो शिवखेत, भूपै समरपत हों ॥ नन्दी० ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामि ॥ ९ ॥

अथ जयमाला ।

दोहा ।

कातिक फागुन साढ़के, अंत आठ दिनमाहिं ।
नंदीसुर सुर जात हैं, हम पूजें इह ठाहिं ॥ १ ॥

एकसौ तरेसठ कोड़ि जोजनमहा ।
　लाख चौरासिया एक दिशमें लहा ॥
आठमों द्वीप नंदीश्वरं भास्वरं ।
　भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं ॥ १ ॥

चारदिशि चार अंजनगिरी राजहीं ।
　सहस चौरासिया एकदिश छाजहीं ।
ढोलसम गोल ऊपर तले सुंदरं । भौन० ॥ ३ ॥
　एक इक चार दिशि चार शुभ बावरी ।
एक इक लाख जोजन अमल जलभरी ॥
　चहुंदिशा चार वन लाखजोजन वरं ॥ भौन० ॥ ४ ॥
सोल वापीनमधि सोल गिरि दधिमुखं ।
　सहस दश महा जोजन लखत ही सुखं ॥
बावरीकोंन दोमाहिं दो रतिकरं । भौन० ॥ ५ ॥
　शैल बत्तीस इक सहस जोजन कहे ।
चार सोलै मिले सर्व बावन लहे ॥
　एक इक सीसपर एक जिनमदिरं । भौन० ॥ ३ ॥
बिंब अठ एकसौ रतनमई सोह ही ।
　देवदेवी सरव नयनमन मोह ही ॥
पांचसै धनुष तन पद्मआसनपरं । भौन० ॥ ७ ॥
　लाल नख मुख नयन स्याम अरु स्वेत हैं ।
स्यामरँग भौंह सिरकेश छवि देत हैं ॥
　वचन बोलत मनों हँसत कालुषहरं । भौन० ॥ ८ ॥

कोटिशशि भानदुति तेज छिप जात है ।
महावैराग परिणाम ठहरात है ॥
वयन नहिं कहैं लखि होत सम्यकधरं । मौन० ॥ ९ ॥

सोरठा ।

नंदीश्वर जिनधाम, प्रतिमामहिमाको कहे ।
'द्यानत' लीनों नाम, यहै भगति सब सुख करे ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यः पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

[अर्घ्यके बाद विसर्जन करना चाहिये]

(१६) निर्वाणक्षेत्रपूजा ।

सोरठा ।

परम पूज्य चौवीस, जिहँ जिहँ थानक शिव गये ।
सिद्ध भूमि निशदीस, मनवचतन पूजा करौं ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र अवतरत अवतरत । संवौषट् । ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत । ठः ठः । ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि अत्र मम सन्निहितानि भवत भवत । वषट् ।

गीता छंद ।

शुचि क्षीरदधिसम नीर निरमल, कनकझारीमें भरौं ।
संसारपार उतार स्वामी, जोर कर विनती करौं ॥
सम्मेदगिरि गिरनार चंपा, पावापुरी कैलासकौं ।

पूजों सदा चौबीसजिननिर्वाणभूमिनिवासकौं ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

केशर कपूर सुगंध चंदन, सलिल शीतल विस्तरौं ।
भवपापको संताप मेटौ, जोर कर विनती करौं ॥सम्मे०॥२॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

मोतीसमान अखंड तंदुल, अमल आनँदधरि तरौं ।
औगुन हरौ गुन करौ हमको, जोर कर विनती करौं ॥सम्मे०॥३॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

शुभफूलरास सुवासवासित, खेद सब मनके हरौं ।
दुखधाम काम विनाश मेरो, जोर कर विनती करौं ॥सम्मे०॥४॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

नेवज अनेक प्रकार जोग, मनोग धरि भय परिहरौं ।
यह भूखदूखन टार प्रभुजी, जोर कर विनती करौं ॥सम्मे०॥५॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

दीपक प्रकाश उजास उज्जल, तिमिरसेती नहिं डरौं ।
संशयविमोहविभरम-तमहर, जोर कर विनती करौं ॥सम्मे०॥६॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

शुभ धूप परम अनूप पावन, भाव पावन आचरौं।
सब करमपुंज जलाय दीजे, जोर कर विनती करौं ॥सम्मे०॥७॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

बहु फल मँगाय चढ़ाय उत्तम, चारगतिसों निरवरौं।
निहचै मुकतफल देहु मोकौं, जोर कर विनती करौं ॥सम्मे०॥८॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल गंध अच्छत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरौं।
'द्यानत' करो निरभय जगततैं, जोर कर विनती करौं ॥सम्मे०॥९॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

अथ जयमाला।

सोरठा।

श्रीचौबीसजिनेश, गिरिकैलासादिक नमौं।
तीरथ महाप्रदेश महापुरुष निरवाणतैं ॥१॥

चौपाई १६ मात्रा।

नमौं रिषभ कैलासपहारं। नेमिनाथ गिरनार निहारं॥
वासुपूज्य चंपापुर वंदौं। सनमति पावापुर अभिनंदौं ॥२॥
वंदौं अजित अजितपददाता। वंदौं संभवभवदुखघाता॥
वंदौं अभिनंदन गणनायक। वंदौं सुमति सुमतिके दायक ॥३॥
वंदौं पदम मुकतिपदमाधर। वंदौं सुपार्श आशपासाहर॥

वंदौं चंद्रप्रभ प्रभु चंदा । वंदौं सुविधि सुविधिनिधिकंदा ॥४॥
वंदौं शीतल अघतपशीतल । वंदौं श्रियांस श्रियांस महीतल ॥
वंदौं विमल विमल उपयोगी । वंदौं अनंत अनंतसुभोगी ॥५॥
वंदौं धर्म धर्मविसतारा । वंदौं शांति शांतमनधारा ॥
वंदौं कुंथु कुंथुरखवालं । वंदौं अरि अरहर गुनमालं ॥६॥
वंदौं मल्लि काममल चूरन । वं ौं मुनिसुव्रत व्रतपूरन ॥
वंदौं नमि जिन नमित सुरासुर । वंदौं पास पासभ्रमजरहर ॥७॥
बीसों सिद्धभूमि जा ऊपर, सिखर समेद महागिरि भूपर ॥
एकबार वंदै जो कोई । ताहि नरक पशुगति नहिं होई ॥८॥
नरगतिनृप सुर शक्र कहावै । तिहुँ जग भोग भोगि शिव पावै ॥
विघनविनाशक मंगलकारी । गुण विलास वंदैं नरनारी ॥९॥

छंद घत्ता ।

जो तीरथ जावै पाप मिटावै, ध्यावैं गावै भगति करै ।
ताको जस कहिये संपति लहिये, गिरिके गुणको बुध उचरै ॥१०॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

(अर्घ्यके ब द विसर्जन करना चाहिये)

(१७) देवपूजा ।

दोहा ।

प्रभु तुम राजा जगतके, हमें देय दुख मोह ।
तुम पद पूजा करत हुं, हमपै करुना होहि ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्र-भगवन् अत्र अवतरावतर । संवौषट् ।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्र-भगवन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्र-भगवन् अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

छंद त्रिभंगी ।

बहु तृषा सतायो, अति दुख पायो, तुमपै आयो, जल लायो ।
उत्तम गंगाजल, शुचि अति शीतल, प्राशुक निर्मल, गुन गायो ॥
प्रभु अंतरजामी, त्रिभुवननामी, सबके स्वामी, दोष हरो ।
यह अरज सुनीजे, ढील न कीजे, न्याय करीजे, दया धरो ॥१॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्र-भगवद्भ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

अघतपत निरंतर, अगनिपटंतर, मो उर अंतर, खेद करयो ।
ले बावन चंदन, दाहनिकंदन, तुमपदवंदन, हरष धरयो ॥ प्रभु० ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो भवतापनाशाय चन्दनं० ॥

---

१ संवौषडिति देवोद्देशेन हविस्त्यागे । २ ठः ठः इति वृहद्ध्वनौ । ३ वषडिति देवोद्देश्यकहविस्त्यागे ।

औगुन दुखदाता, कह्यो न जाता, मोहि असाता, बहुत करे ।
तंदुल गुनमंडित, अमल अखंडित, पूजत पंडित, प्रीति धरे ॥प्रभु०॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशसद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति ॥ ३ ॥

सुरनर पशुको दल, काम महाबल, बात कहत छल, मोहि लिया ।
ताके शर लाऊं फूल चढाऊं, भगति बढाऊं, खोल हिया ॥ प्रभु०

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारींशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामि ॥ ४ ॥

सब दोषनमाहीं, जासम नाहीं, भूख सदा ही, मो लागे ।
सद घेवर बावर, लाडू बहु धर, थार कनक भर तुम आगे ॥प्रभु०

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो क्षुद्रोगनाशाय नैवेद्यं० ॥

अज्ञान महातम, छाय रह्यो मम, ज्ञान ढक्यो हम, दुख पावें ।
तम मेटनहारा, तेज अपारा, दीप सँवारा, जस गावें ॥ प्रभु०

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारींशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामि ॥ ६ ॥

इह कर्म महावन, भूल रह्यो जन, शिवमारग नहिं पावत है ।
कृष्णागरुधूपं, अमलअनूपं, सिद्धस्वरूपं, ध्यावत है ॥
प्रभु अंतरजामी, त्रिभुवननामी, सबके स्वामी, दोष हरो ।
यह अरज सुनीजे, ढील न कीजे, न्याय करीजे, दया धरो ॥७॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं० ॥

सबतैं जोरावर, अंतराय अरि, सुफल विघ्न करि डारत हैं।
फलपुंज विविध भर, नयनमनोहर, श्रीजिनवरपद धारत हैं ॥ प्र०
ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं० ॥
आठौं दुखदानी, आठनिशानी, तुम ढिग आनी, बारन हो।
दीननिस्तारन, अधमउधारन, 'द्यानत' तारन, कारन हो ॥ प्रभु०
ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वरिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्र-भगवद्भ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

जयमाला।

दोहा।

गुण अनंत को कहि सकै, छियालीस जिनराय।
प्रगट सुगुन गिनती कहूं, तुम ही होहु सहाय ॥ १ ॥

चौपाई (१६ मात्रा।

एक ज्ञान केवल जिनस्वामी। दो आगम अध्यातम नामी ॥
तीन काल विधि परगट जानी। चार अनंतचतुष्टय ज्ञानी ॥२॥
पंच परावर्तन परकासी। छहों दरवगुनपरजयभासी ॥
सातभंगवानी परकाशक। आठों कर्म महारिपुनाशक ॥ ३ ॥
नव तत्त्वनके भाखनहारे। दश लच्छनसौं भविजन तारे।
ग्यारह प्रतिमाके उपदेशी। बारह सभा सुखी अकलेशी ॥४॥
तेरहविधि चारितके दाता। चौदह मारगनांके ज्ञाता ॥
पंद्रह भेद प्रमाद निवारी। सोलह भावन फल अविकारी ॥ ५ ॥
तारे सत्रह अंक भरत भुव। ठारै थान दान दाता तुव ॥
भाव उनीस जु कहे प्रथम गुन। वीस अंक गणधरजीकी धुन ॥६॥

इकइस सर्व घातविधि जाने। बाइस बंध नवम गुन थाने॥
तेइस निधि अरु रतन नरेश्वर। सो पूजैं चौवीस जिनेश्वर॥७॥
नाश पचीस कषाय करी हैं। देशघाति छव्वीस हरी हैं॥
तत्व दरब सत्ताइस देखे। मति विज्ञान अठाइस पेखे॥८॥
उनतिस अंक मनुष सब जाने। तीस कुलाचल सर्व बखाने॥
इकतिस पटल सुधर्म निहारे। बत्तिस दोष समाइक टारे॥९॥
तेतिस सागर सुखकर आये। चोतिस भेद अलब्धि बताये॥
पैंतिस अच्छर जप सुखदाई। छत्तिस कारन रीति मिटाई॥१०॥
सैंतिस मग कहि ग्यारह गुनमें। अठतिस पद लहि नरक अपुनमें॥
उनतालीस उदीरन तेरम। चालिस भवन इंद्र पूजैं नम॥११॥
इकतालीस भेद आराधन। उदै बियालीस तीर्थंकर मन॥
तेतालीस बंध ज्ञाता नहिं। द्वार चवालिस नर चौथेमहिं॥१२॥
पैंतालीस पल्यके अच्छर। छियालीस विन दोष मुनीश्वर॥
नरक उदै न छियालीस मुनिधुन। प्रकृति छियालीस नाश दशम गुन॥१३॥
छियालीस घन राजु सात भुव। अंक छियालीस सरसो कहि कुव॥
भेद छियालीस अंतर तपवर। छियालीस पूरन गुन जिनवर॥१४॥

अडिल्ल।

मिथ्या तपन निवारन चन्द समान हो
मोहतिमिर वारनको कारन भान हो॥
काल कषाय मिटावन मेघ मुनीश हो
'द्यानत' सम्यकरतनत्रय गुनईश हो॥१५॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्र-भगवद्भ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामि ॥

(पूर्णार्घ्यके बाद विसर्जन करना चाहिये)

इति श्रीजिनेन्द्रपूजा समाप्ता।

(१८) सरस्वतीपूजा।

दोहा।

जनम जरा मृतु छय करै, हरै कुनय जड़रीति।
भवसागरसों ले तिरै, पूजैं जिनवचप्रीति ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

त्रिभंगी।

छीरोदधि गंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा, सुखगंगा।
भरि कंचन झारी, धार निकारी, तृषा निवारी, हित चंगा ॥
तीर्थंकरकी धुनि, गनधरने सुनि, अंग रचे चुनि, ज्ञानमई।
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी, पूज्य भई ॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै जलं निर्वपामि इति स्वाहा ॥ १ ॥

करपूर मंगाया, चंदन आया, केशर लाया, रंग भरी।
शारदपद वंदौं, मन अभिनंदौं, पापनिकंदौं, दाह हरी ॥तीर्थं०॥२॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

सुखदास कमोदं, धारकमोदं, अतिअनुमोदं, चंदसमं।
बहुभक्ति बढाई, कीरति गाई, होहु सहाई, मात ममं ॥तीर्थ०॥३॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अक्षतान् निर्वपामि॥३॥

बहुफूलसुवासं, विमलप्रकाशं, आनँदरासं, लाय धरे।
मम काम मिटायौ, शील बढ़ायौ, सुख उपजायौ, दोष हरे ॥तीर्थ०॥४॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै पुष्पं निर्वपामि ॥४॥

पकवान बनाया, बहुघृत लाया, सब विध भाया, मिष्ट महा।
पूजूं थुति गाऊं, प्रीति बढ़ाऊं, क्षुधा नशाऊं, हर्ष लहा ॥तीर्थ०॥५॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै नैवेद्यं निर्वपामि ॥५॥

करि दीपक ज्योतं, तमछय होतं, ज्योति उदोतं, तुमहिं चढ़ै।
तुम हो परकाशक, भरमविनाशक, हम घट भासकं ज्ञान बढ़ै ॥तीर्थ०॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै दीपं निर्वपामि० ॥६॥

शुभगंध दशोंकर, पावकमें धर, धूप मनोहर, खेवत हैं।
सब पाप जलावैं, पुण्य कमावैं, दास कहावैं, सेवत हैं ॥तीर्थ०॥७॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै धूपं निर्वपामि०॥७॥

बादाम छुहारी, लौंग सुपारी, श्रीफल भारी, ल्यावत हैं।
मनवांछित दाता, मेट असाता, तुम गुन माता, ध्यावत हैं ॥तीर्थ०॥८॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै फलं निर्वपामि ॥८॥

नयननसुखकारी, मृदुगुनधारी, उज्वलभारी, मोल धरै।
शुभगंधसम्हारा, वसननिहारा, तुमतर धारा, ज्ञान करै ॥

तीर्थंकरकी धुनि, गनधरने सुनि, अंग रचे चुनि, ज्ञानमई ।
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी, पूज्य भई ॥९॥
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै वस्त्रं निर्वपामि ॥९॥
जलचंदन अच्छत, फूल चरू चत, दीप धूप अति, फल लावै ।
पूजाको ठानत, जो तुम जानत, सो नर द्यानत सुख पावै ॥तीर्थं०॥
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अर्घ्यं निर्वपामि ॥१०॥

अथ जयमाला ।

सोरठा ।

ओंकार धुनिसार, द्वादशांग वाणी विमल ।
नमों भक्ति उर धार, ज्ञान करै जड़ता हरै ॥

वेसरी ।

पहला आचारांग बखानो । पद अष्टादश सहस प्रमानो ।
दूजा सूत्रकृतं अभिलाषं । पद छत्तीस सहस गुरु भाषं ॥१॥
तीजा ठाना अंग सुजानं । सहस बियालिस पदसरधानं ॥
चौथो समवायांग निहारं । चौसठ सहस लाख इकधारं ॥२॥
पंचम व्याख्याप्रगपति दरशं । दोय लाख अट्ठाइस सहसं ।
छट्टा ज्ञातृकथा विसतारं । पांचलाख छप्पन हज्जारं ॥३॥
सप्तम उपासकाध्ययनंगं । सत्तर सहस ग्यारलख भंगं ।
अष्टम अंतकृतंदस ईसं । सहस अठाइस लाख तेइसं ॥४॥
नवम अनुत्तरदश सुविशालं । लाख बानवे सहस चवालं ।
दशम प्रश्नव्याकरण विचारं । लाख तिरानवैं सोल हजारं ॥५॥
ग्यारम सूत्रविपाक सु भाखं । एक कोड़ चौरासी लाखं ।
चार कोड़ि अरु पंद्रह लाखं । दोहजार सब पद गुरुशाखं ॥६॥

द्वादश दृष्टिवाद पनभेदं। इकसौ आठ कोड़ि पन वेदं॥
अड़सठ लाख सहस छप्पन हैं। सहित पंचपद मिथ्या हन हैं॥७॥
इक सौ बारह कोड़ि बखानो। लाख तिरासी ऊपर जानो॥
ठावन सहस पंच अधिकाने। द्वादश अंग सर्व पद माने॥ ८॥
कोड़ि इकावन आठ हि लाखं। सहस चुरासी छहसौ भाखं।
साढ़े इकीस शिलोक बताये। एक एक पदके ये गाये॥ १०॥

घत्ता।

जा बानीके ज्ञानमें, सूझे लोक अलोक।
'द्यतन' जग जयवंत हो, सदा देत हौं धोक॥

इति सरस्वतीपूजा।

---

(११) गुरुपूजा।

दोहा।

चहुं गति दुखसागरविषै, तारनतरनजिहाज।
रतनत्रयनिधि नगन तन, धन्य महा मुनिराज॥ १॥

ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह। अत्रावतरावतर। संवौषट्॥

ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह। अत्र तिष्ठ तिष्ठ॥ ठः ठः।

ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह। अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

गीता छंद।

शुचि नीर निर्मल छीरदधिसम, सुगुरु चरन चढाइया।
तिहु धार तिहु गदटार स्वामी, अति उछाह बढाइया॥
भवभोगतनवैराग्य धार, निहार शिव तप तपत हैं।
तिहुं जगतनाथ अराध साधु सु, पूज नित गुन जपत हैं॥ १॥

ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो जलं नि०॥१॥

करपूर चंदन सलिलसौं घसि, सुगुरुपद पूजा करौं।
सब पाप ताप मिटाय स्वामी, धरम शीतल विस्तरौं।
भवभोगतनवैराग धार निहार, शिवतप तपत हैं।
तिहु जगतनाथ अराध साधु सु, पूज नितगुन जपत हैं॥ २॥

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो भवतापविनाशनाय चन्दनं नि०

त्रिनवा कमाद सुवास उज्जल, सुगुरुपगतर धरत हैं।
गुनधार औगुनहार स्वामी, वंदना हम करत हैं॥ भव भो०॥३॥

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि०

शुभफुलरासप्रकाश परिमल, सुगुरुपांयनि परत हो।
निरवार मार उपाधि स्वामी, शील दृढ़ उर धरत हों॥भव०॥४॥

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं।

पकवान मिष्ट सलौन सुंदर, सुगुरु पांयन प्रीतिसौं।
कर छुधारोग विनाश स्वामी, सुथिर कीजे रीतिसौं॥भव०॥५॥

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं।

दीपक उदोत सजोत जगमग, सुगुरुपद पूजों सदा।
तमनाश ज्ञानउजास स्वामी, मोहि मोह न हो कदा॥भव०॥६॥

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि०

बहु अगर आदि सुगंध खेऊं सुगुरु पद पद्महिं खरे ।
दुख पुंज काट जलाय स्वामी गुण अछय चित्तमें धरे ॥भव०॥७॥
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं नि०॥७॥
भर थार पूग बदाम बहुविधि, सुगुरुक्रम आगें धरों ।
मंगल महाफल करो स्वामी, जोर कर विनती करों ॥भव०॥८॥
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि०॥८॥
जल गंध अक्षत फूल नेवज, दीप धूप फलावली ।
'द्यानत' सुगुरुपद देहु स्वामी, हमहिं तार उतावली भव०॥९॥
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व० ॥ ९ ॥

अथ जयमाला ।

दोहा ।

कनककामिनी विषयवश, दीसै सब संसार ।
त्यागी वैरागी महा, साधु सुगुनभंडार ॥ १ ॥
तीन घाटि नवकोड़ सब, वंदों सीस नवाय ।
गुन तिन अट्ठाईस लों, कहूँ आरती गाय ॥ २ ॥

वेसरी छंद ।

एक दया पालैं मुनिराजा, रागदोष द्वै हरन परं ।
तीनों लोक प्रगट सब देखैं, चारों आराधननिकरं ॥
पंच महाव्रत दुद्धर धारैं, छहो दरब जानैं सुहितं ।
सातभंगवानी मन लावैं, पावैं आठ रिद्ध उचितं ॥ ३ ॥

नवो पदारथ विधिसों भाखैं, बंध दशो चूरन सरनं।
ग्यारह शंकर जानै मानें, उत्तम बारह वृत धरनं।
तेरह भेद काठिया चूरे, चौदह गुनथानक लखियं।
महाप्रमाद पंचदश नाशे, सोलकषाय सबै नखियं ॥ ४ ॥
बंधादिक सत्रह सुतर लाख, ठारह जन्म न मरन मुनं ॥
एक समय उनईस परिषह, बीस प्ररूपनिमें निपुनं ॥
भाव उदीक इकीसों जानै, बाइस अभखन त्याग करं।
अहिमिंदर तेईसों वंदैं, इन्द्र सुरग चौवीस वरं ॥ ५ ॥
पच्चीसों भावन नित भावें, छहसौं अंगउपंग पढैं।
सत्ताईसों विषय विनाशैं, अट्ठाईसों गुण सु बढैं ॥
शीतसमय सर चौपटवासी, ग्रीषमगिरिसिर जोग धरैं।
वर्षा वृक्ष तरैं थिर ठाढ़े, आठ करम हनि सिद्ध वरैं ॥ ६ ॥

दोहा।

कहाँ कहाँ लों भेद मैं, बुध थोरी गुन भूर।
हेमराज, सेवक हृदय, भक्ति करौ भरपूर ॥ ७ ॥
आचार्योपाध्यायसर्वसाधु गुरुभ्यो अर्घ्यं निर्वपामि।

(इति गुरुपूजा समाप्ता)

(२०) श्रीपार्श्वनाथ पूजा।

दोहा।

श्री पारस परमेशजी, शिखर शीर्ष शिवधार।
यहां पूजता भाव से, थापनकर त्रयवार ॥

ॐ ह्रीं श्रीमक्सीपार्श्वजिनेभ्यो अत्रवत्रवतरः सम्वौषटोह्वननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं॥ अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्धीसकरणं॥

अथाष्टकं।

अष्टपदी छंद।

लै निर्मल नीर सुछान, प्राशुक ताहि करों।
मन वच तन कर वर आन, तुम ढिग धार धरों॥
श्री मक्सी पारसनाथ, मन वच ध्यावत हों॥
मम जन्म जरामृत्यु नाश, तुम गुण गावत हों॥
ॐ ह्रीं श्री मक्सीपार्श्वनाथ जिनेन्द्रेभ्यो जलं॥ १॥
घिस चन्दनसार सुवास, केसर ताहि मिलै।
मैं पूजों चरण हुलास, मन में आनन्द लै॥
श्री मक्सी पारसनाथ, मन वच ध्यावतहों।
मम मोहाताप विनाश, तुम गुण गावत हों॥ सुगंधं॥ २॥
तन्दुल उज्ज्वल अति आन, तुम ढिग पुञ्ज धरों।
मुक्ताफलके उन्मान, लेकर पूज करों॥
श्रीमक्सी पारसनाथ, मन वच ध्यावत हों।
संसार वास निवार, तुम गुण गावत हों॥ अक्षतं॥ ३॥
ले सुमन विविधिके एव, पूजो तुम चरणा।
हो काम विनाशक देव, काम व्यथा हरणा॥
श्रीमक्सी पारसनाथ, मन वच ध्यावत हों।
मन वच तन शुद्ध लगाय, तुम गुण गावत हों॥ पुष्पं॥४॥

संजथाल सुवें वजधार, उज्ज्वल तुरंत किया ।
लाडू मेवा अधिकार, देखत हर्ष हिया ॥
श्रीमक्सी पारसनाथ, मन वच पूज करों ।
मम क्षुधा रोग निर्वार, चरणों चित्त धरों ॥ नैवेद्यं ॥ ५ ॥
अति उज्ज्वल ज्योति जगाय, पूजत तुम चरणा ।
मम मोहांधेर नशाय, आयो तुम शरणा ॥
श्री मक्सी पारसनाथ, मन वच ध्यावत हों ।
तुमहो त्रिभुवन के नाथ, तुम गुण गावत हों ॥ दीपं ॥६॥
वर धूप दशांग बनाय, सार सुगंध सही ।
अति हर्ष भाव उर ल्याय, अग्नि मझार दही ॥
श्रीमक्सी पारसनाथ, मन बच ध्यावत हों ।
वसु कर्महि कीजे क्षार, तुम गुण गावत हों ॥ धूपं ॥ ७ ॥
बादाम छुहारे दाख, पिस्ता धर य धरों ।
ले आम अनार सुपक्व, शुचिकर पूज करों ॥
श्रीमक्सी पारसनाथ, मन वच ध्यावत हों ।
शिवफल दीजे भगवान, तुम गुण गावत हों ॥ फलं ॥८॥
जल आदिक द्रव्य मिलाय, वसुविधि अर्घ किया ।
वर साज रकेबी ल्याय, नाचत हर्ष हिया ॥
श्रीमक्सो पारसनाथ, मन वच ध्यावत हों ।
तुम भव्योंको शिव साथ, तुम गुण गावत हों ॥अर्घं ॥९॥

अडिल्ल ।

जल गंधाक्षत पुष्प सो नेवज ल्यायके ।
दीप धूप फल लेकर अर्घ बनायके ॥

नाचों गाय बजाय हर्ष उर धारकर।
पूरण अर्घ चढ़ाय सु जयजयकार करं ॥ पूर्णार्घं ॥ १० ॥

जयमाला।

दोहा।

जयजयजय जिनरायजी, श्रीपारसपरमेश।
गुण अनंत तुममांहि प्रभु, पर कछु गाऊं लेश ॥ १ ॥

पद्धड़ि छन्द ॥

श्रीबानारस नगरी महान। सुरपुर समान जानो सुथान।
तहां विश्वसेन नामा सुभूप। बामादेवो रानी अनूप ॥२॥

आये तसु गर्भविर्षे सुदेव। वैशाखवदी दोइज स्वयमेव।
माताको सेवें सची आन। आज्ञा तिनकी धर शीश मान ॥३॥

पुनः जन्म भयो आनंदकार। एकादशि पौष वदी विचार॥
तब इन्द्र आय आनंद धार। जन्माभिषेक कीनो सुसार ॥४॥

शतवर्ष तनी तुम आयु जान। कुंवरावय तीस बरस प्रमाण॥ नव हाथ तुंग राजत शरीर। तन हरित वरण सोहै सुधीर॥ ५ ॥

तुम उरग चिन्ह वर उरग सोई। तुम राजऋद्धि भुगती न कोई॥ तप धारा फिर आनन्द पाय। एकादशि पौष वदी सुहाय॥ ६ ॥

फिर कर्म घातिया चार नाश। वर केवलज्ञान भयो प्रकाश॥ वदि चैत्र चौथि वेला प्रभात। हरि समोसरण रचियो विख्यात ॥ ७॥

नाना रचना देखन सुयोग । दर्शनको आवत भव्य लोग ॥
सावन सुदि सप्तमि दिन सुधारि । तब विधि अघातिया नाश
चारि ॥ ८ ॥

शिव थान लयो वसुकर्म नाशि । पद सिद्ध भयो आनन्द
राशि ॥ तुम्हरी प्रतिमा मक्सी मझार । थापी भविजन आनंदकार ॥९॥

तहां जुरत बहुत भवि जीव आय । कर भक्तिभावसे शीश
नाय ॥ अतिशय अनेक तहां होत जान । यह अतिशय क्षेत्र
भयो महान ॥ १० ॥

तहां आय भव्य पूजा रचात । कोई स्तुति पढ़ते भांति
भांति ॥ कोई गावत गांन कला विशाल । स्वरताल सहित
सुंदररसाल ॥ ११ ॥

कोई नाचत मंन आनंद पाय । तत थेई थेई थेई थेई ध्वनि
कराय ॥ छम छम नूपुर बाजत अनूप । अति नटत नाट सुंदर
सरूप ॥ १२ ॥

द्रुम द्रुम द्रुमता बाजत मृदंग । सननन सारंगी बजति संग ॥
झननन नन झल्लरि बजे सोई । घनन घननन ध्वनि घण्ट
होई ॥ १३ ॥

इस विधि भवि जीव करें अनंद । लहैं पुण्यबंध करें पापमंद ॥
हम भी वन्दन कीनी अवार । सुदि पौष पंचमी शुक्रवार ॥१४॥

मन देखत क्षेत्र बढ़ो प्रयोग । जुरमिल पूजन कीनी सुलोग ॥
जयमाल गाय आनंद पाय । जय जय श्रीपारस जगति राय ॥१५॥

घत्ता ।

जय पार्श्व जिनेशं नुत नाकेशं चक्रधरेशं ध्यावत हैं ।
मन वच आराधें भव्य समाधें ते सुरशिवफल पावत हैं ॥

इत्याशीर्वादः ॥

(इति श्रीमक्सीपार्श्वनाथपूजा संपूर्णम् ।)

---

(२१) श्री गिरनारक्षेत्र पूजा ।

दोहा ।

वंदों नेमि जिनेश पद, नेम धर्म दातार ।
नेम धुरंधर परम गुरु, भविजन सुख कर्तार ॥ १ ॥
जिनवाणीको प्रणमिकर, गुरु गणधर उरधार ।
सिद्धक्षेत्र पूजा रचों, सब जीवन हितकार ॥ २ ॥
उर्जयंत गिरिनाम तस, कहो, जगति विख्यात ।
गिरिनारी तासे कहत, देखन मन हर्षात ॥ ३ ॥

अडिल्ल ।

गिरि सुउन्नत सुभगाकार है । पंचकूट उतंग सुधार है ॥
वन मनोहर शिला सुहावनी । लखत सुंदर मनको भावनी ॥४॥
और कूट अनेक बने तहां । सिद्ध थान सुअति सुन्दर जहां ॥
देखि भविजन मन हर्षावते । सकल जन वन्दनको आवते ॥५॥

त्रिभंगी छंद ।

तहां नेम कुमारा व्रत तप धारा कर्म विदारा शिव पाई ।
मुनि कोडि बहत्तर सात शतक धरता गिरि ऊपर सुखदाई ॥

भये शिवपुरवासी गुणके राशी विधिथिति नाशी ऋद्धि घरा ।
तिनके गुण गाऊं पूज रचाऊं मन हर्षाऊं सिद्धि करा ॥

दोहा ।

ऐसो क्षेत्र महान, तिहि पूजत मन वच काय ।
स्थापत त्रय वारकर, तिष्ठ तिष्ठ इत आय ॥

ॐ ह्रीं श्री गिरिनारि सिद्धक्षेत्रेभ्यो ॥ अत्र अत्रवतरः संवौषटाह्वाननं । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं ॥ अत्र ममसन्निहितो भव भव वषट् संधीसकरण ।

अथाष्टकं ।

माधवी वा किरीट छन्द ।

लेकर नीरसुक्षीरसमान महा सुखदान सुपासुक भाई ।
दे त्रय धारजजों चरणा हरना मम जन्मजरा दुःखदाई ॥
नेम पती तज राजमती भये बालयती तहांसे शिवपाई ।
कोडि बहत्तरि सातसौ सिद्ध मुनीश भये सुजजों हरषाई ॥

ॐ ह्रीं श्रीगिरिनारि सिद्धक्षेत्रेभ्योः । जलं ॥ १ ॥

चन्दनगारि मिलाय सुगंध सु ल्याय कटोरीमें धरना । मोह महातप मैंटन काज सो चर्चतु हों तुम्हरे चरणा ॥ नेमिपती० ॥ सुगंधं ॥ २ ॥

अक्षत उज्ज्वल ल्याय धरों तहां पुंज करो मनको हर्षाई । देउ अक्षयपद प्रभु करुणा कर फेर नया भव वास कराई ॥ नेमपती० ॥ अक्षत ॥ ३ ॥

फूल गुलाब चमेली वेल कदंब सुचंपक तीर सुल्याई । प्राशुक पुष्प लवंग चढ़ाय सुगाय प्रभु गुणकाम नशाई ॥ नेमपती० ॥ पुष्पं ॥ ४ ॥

नेवज नव्य करों भर थाल सुकंचन भाजनमें धर भाई। मिष्ट मनोहर क्षेपत हों यह रोग क्षुधा हरियो जिनराई॥ नेमपती० ॥ नैवेद्यं ॥ ५ ॥

दीप बनाय धरों मणिका अथवा घृतवार्ति कपूर जलाई। नृत्य करोंकर आरति ले मम मोह महातम जाय पलाई॥ नेमपती० ॥ दीपं ॥ ६ ॥

धूप दशांग सुगंध मईकर खेवहुं अग्नि मझार सुहाई। लौकर अर्ज सुनो जिनजी मन कर्म महावन देउ जराई॥ नेमपती० ॥ धूपं ॥ ७ ॥

ले फल सार सुगंधमई रसनाहृद नेत्रनको सुखदाई। क्षेपत हों तुम्हरे चरणा प्रभु देहु हमें शिवकी ठकुराई॥ नेमपती० ॥ फलं ॥ ८ ॥

ले वसु द्रव्यसु अर्घ करों धरथाल सु मध्य महा हर्षाई। पूजत हों तुम्हरे चरणा हरिये वसुकर्म बली दुःखदाई॥ नेमपती० ॥ अर्घ ॥ ९ ॥

दोहा।

पूजत हों वसु द्रव्य ले, सिद्धक्षेत्र सुखदाय।
निजहित हेतु सुहावनो, पूर्ण अर्घ चढ़ाय॥ पूर्णार्घं ॥ १० ॥

पंच कल्याणार्घ।

पाइत्ता छंद।

कार्तिक सुदिकी छठि जानो। गर्भागम तादिन मानो॥
उत इन्द्र जजे उस थानी। इत पूजत हम हर्षानी॥

ॐ ह्रीं कार्तिक सुदि छठि गर्भमंगल प्राप्तेभ्योः अर्घं ॥१॥

श्रावण सुदि छठि सुखकारी । तब जन्ममहोत्सव धारी ॥
सुरराजगिरिः अन्हवाई । हम पूजत इत सुख पांई ॥

ॐ ह्रीं श्रावण सुदी छठी जन्ममंगल धारणेभ्यो॥ अर्घं ॥२॥

सित सावनकी छठि प्यारी । तादिन प्रभु दिक्षाधारी ॥
तप घोर बीर तहां करना । हम पूजत तिनके चरणा ॥

ॐ ह्रीं सावन सुदि छठि दिक्षा धारणेभ्यो ॥ अर्घं ॥ ३ ॥

एकम सुदि अश्विन मासा ॥ तब केवलज्ञान प्रकाशा ॥
हरि समवशरण तब कीना । हम पूजत इत सुख लीना ॥

ॐ ह्रीं अश्विन सुदि एकम केवलकल्याणप्राप्ताय॥अर्घं॥४॥

सित अष्टमि मास आषाढा । तब योग प्रभूने छांडा ॥
जिन लई मोक्ष ठकुराई । इत पूजत चरणा भाई ॥

ॐ ह्रीं आषाढ सुदी अष्टमी मोक्षमङ्गलप्राप्ताय ॥ अर्घं॥५॥

अडिल्ल ।

कोड़ि बहत्तरि सप्त सैकड़ा जानिये ॥
मुनिवर मुक्ति गये तहांसे सुप्रमाणिये ॥
पूजों तिनके चरण सु मनवचकायके ।
वसुविधि द्रव्य मिलाय सुगाय बजायके ॥ पूर्णार्घं ॥

जयमाला ।

दोहा ।

सिद्धक्षेत्र जग उच्च थल, सब जीवन सुखदाय ।
कहों तास जयमालका, सुनते पाप नशाय ॥ ९ ॥

पद्धड़ी छंद ।

जय सिद्धक्षेत्र तीरथ महान । गिरिनारि सु गोरि उन्नत बखान ॥ तहां जूनागढ़ है नगर सार । सौराष्ट्र देशके मध्य-सार ॥ २ ॥

जब जूनागढ़से चले सोई । समभूमि कोस बर तीन होई ॥ दरवाजेसे चल कोस आध । एक नदी बहत है जल अगाध ॥३॥

पर्वत उत्तर दक्षिण सु दोय । मध्य नदी वहति उज्वल सु तोय ॥ ता नदी मध्य कई कुण्ड जान । दोनों तट मंदिर बने मान ॥ ४ ॥

तहां वैरागी वैष्णव रहांय । भिक्षा कारण तीरथ करांय ॥ इक कोस तहां यह मचो ख्याल । आगे इक वरनदी नाल ॥५॥

तहां श्रावकजन करते स्नान । धो द्रव्य चलत आगे सुजान ॥ फिर मृगीकुंड इक नाम जान । तहां वैरागिनके बने थान ॥६॥

वैष्णव तीर्थ जहां रचो सोई । विष्णुः पूजत आनंद होई ॥ आगे चल डेढ़सु कोश जाव । फिर छोटे पर्वतको चढ़ाव ॥७॥

तहां बंधी पैरकारी सुजान । चल तीन कोश आगे प्रमाण । तहां तीन कुंड सोहैं महान । श्रीजिनके युग मंदिर बखान ॥८॥

दिगाम्बरके जिनके सुथान । श्वेताम्बरके बहुते प्रमाण ॥ जहां बनी धर्मशाला सु जोय । जलकुंड तहां निर्मल सुतोय ॥९॥

फिर आगे पर्वतपर चढ़ाव । चढ़ प्रथम कूटको चले जाव ॥ तहां दर्शनकर आगे सुजाय । तहां द्वितिय टोंकका दर्श पाय ॥१०॥

तहां नेमनाथके चरण जान । फिर है उतार भारी महान ॥ तहां चढ़कर पंचम टोंक जाय । अति कठिन चढ़ाव तहां लखाय॥११॥

श्रीनेमनाथका मुक्ति थान। देखत नयनों अति हर्ष मान॥
इक बिम्ब चरणयुग तहां जान। भवि करत बन्दना हर्ष ठान॥ ११॥

कोई करते जय जय भक्ति लाय। कोई स्तुति पढ़ते तहां बनाय॥ तुम त्रिभुवन पति त्रैलोक्य पाल। मम दुःख दूर कीजे दयाल॥ १२॥

तुम राज ऋद्धि भुगति न कोई। यह अथिररूप संसार जोई॥ तज मातपिता घर कुटुमद्वार। तज राजमतीसी सती नार॥ १४॥

द्वादश भावना भाई निदान। पशुवन्दि छोड़ दे अभय दान॥
शेसावन में दिक्षा सुधार। तप कर तहां कर्म किये सुक्षार॥१५॥

ताही वन केवल ऋद्धि पाय। इन्द्रादिक पूजे चरण आय॥
तहां समोशरण रचियो विशाल। मणिपंच वर्णकर अति रसाल॥१६॥

तहां वेदी कोट सभा अनूप। दरवाजे भूमि बनी सुरूप॥
वसु प्रातिहार्य छत्रादि सार। वर द्वादश सभा बनी अपार॥१७॥

करके विहार देशों मझार। भवि जीव करे भवसिंधु पार॥
पुनः टोंक पंचमीको सुनाय। शिव थान लहो आनंद पाय॥१८॥

सो पूजनीक वह थान जान। बंदत जन तिनके पाप हान॥
तहांसे सुवहत्तर कोड़ि और। मुनि सात शतक सब कहे जोर॥ १९॥

उस पर्वतसे शिवनाथ पाय। सब भूमि पूजने योग्य थाय॥
तहां देश देशके भव्य आय। वंदन कर बहु आनंद पाय॥२०॥

पूजन कर कीनो पाप नाश। बहु पुण्य बंध कीनो प्रकाश॥
यह ऐसा क्षेत्र महान जान। हम बंदना कीनी हर्ष ठान॥२१॥

उनईस शतक उनतीस जान। सम्वत अष्टमि सित फाग नान॥ सब संग सहित वंदन कराय। पूजा कीनी आनन्द पाय॥ २१॥

सब दुःख दूर कीजे दयाल। कहैं चन्द्र कृपा कीजे कृपाल॥ मैं अल्प बुद्धि जयमाल गाय। भवि जीव शुद्ध लेकी बनाय॥ २२॥ घत्ता।

तुम दया विशाला सब क्षितिपाला तुम गुणमाला कण्ठधरी।
ते भव्य विशाला तज जग जाला नावत भाला मुक्तिवरी॥

इत्याशीर्वादः॥

॥ इति श्रीगिरिनारक्षेत्रपूजा सम्पूर्ण॥

——※——

(२१) सोनागिरि पूजा।

अडिल्ल छंद।

जम्बू द्वीप मझार भरत क्षेत्र सुकह्यो। आर्यखण्ड सुजान भद्रदेश लह्यो॥ सुवर्णगिरि अभिराम सुपर्वत है तहां। पंचकोड़ि अरु अर्द्ध गये मुनि शिव जहां॥ १॥

दोहा।

सोनागिरिके शीसपर, बहुत जिनालय जान।
चन्द्रप्रभू जिन आदिदे, पूजों सब भगवान॥२॥

ॐ ह्रीं अत्रवत्रवतरः संवौषटाह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं॥ अत्र ममऽसन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

अथाष्टकं ।

सारंग छंद ।

पद्मद्रहको नीर ल्याय गंगासे भरके ।
कनक कटोरि माहिं हेम थारन में धरके ॥
सोनागिरिके शीस भूमि निर्वाण सुहाई ।
पंचकोड़ि अरु अर्द्धमुक्ति पहुंचे मुनिराई ॥
चन्द्र प्रभु जिन आदि सकल जिनवर पद पूजो ।
स्वर्ग मुक्ति फल पाय जाय अविचल पद दूजो ॥

दोहा ।

सोनागिरि के शीसपर, जेते सब जिनराय ।
तिनपद धारा तीन दे, तृषा हरणके काज ॥
ॐ ह्रीं श्रीसोनागिरि निर्वाणक्षेत्रेभ्यो ॥ जलं ॥ १ ॥

केसर आदि कपूर मिले मलयागिरि चन्दन । परमल अधिकी तास और सब दाह निकन्दन ॥ सोनागिरि० ॥

दोहा ।

सोनागिरिके शीसपर । जेते सब जिनराज ।
ते सुगन्धकर पूजिये, दाह निकन्दन काज । सुगन्धं ॥२॥

तंदुल धवल सुगन्ध ल्याय जल धोय पखारो । अक्षय पदके हेतु पुंज द्वादश तहां धारो । सोनागिरि० ॥

दोहा ।

सोनागिरिके शीसपर । जेते सब जिनराज । तिन पद पुजा कीजिये । अक्षय पदके काज ॥ अक्षतं ॥ ३ ॥

बेला और गुलाब मालती कमल मंगाये । पारिजातके पुष्प ल्याय जिन चरण चढ़ाये ॥ सोनागिरि० ॥

दोहा ।

सोनागिरिके शीसपर । जेते सब जिनराज । ते सब पूजों पुष्प ले । मदन विनाशन काज ॥ पुष्पं ॥ ४ ॥

विंजन जो जगमाहि खांडघृत माहि पकाये । मीठे तुरत बनाय हेम थारी भर ल्याये ॥ सोनागिरि० ॥

दोहा ।

सोनागिरिके शीसपर । जेते सब जिनराज । ते पूजों नैवेद्य ले । क्षुधा हरणके काज ॥ नैवेद्यं ॥ ५ ॥

मणिमय दीप प्रजाल धरों पंकति भरथारी । जिन मन्दिर तम हार करहु दर्शन नरनारी ॥ सोनागिरि० ॥

दोहा ।

सोनागिरिके शीसपर । जेते सब जिनराज । करों दीपले आरती । ज्ञान प्रकाशन काज ॥ दीपं ॥ ६ ॥

दशविधि धूप अनूप अग्नि भोजनमें डालों । जाकी धूम सुगन्ध रहे भर सर्व दिशालों ॥ सोनागिर० ॥

दोहा ।

सोनागिरिके शीसपर । जेते सब जिनराज । धूप कुम्भ आगे धरों । धर्म दहनके काज ॥ ७ ॥

उत्तम फल जग मांहि बहुत मीठे अरु पाके । अनित अनार सचार आदि अमृत रस छाके ॥ सोनागिरि० ॥

दोहा ।

सोनागिरिके शीसपर । जेते सब जिनराज । उत्तम फल तिन ले मिलो । कर्म विनाशन काज ॥ फलं ॥ ८ ॥

जल आदिके वसु द्रव्य अर्घ करके घर नाचो ! बाजे बहुत बजाय पाठ पढ़के मुख सांचो ॥ सोनागिरि० ॥

सोनागिरके शीसपर जेते सब जिनराज । ते हम पूजें अर्घ ले । मुक्ति रमणके काज ॥ अर्घं ॥ ९ ॥

अडिल्ल छंद ।

श्री जिनवरकी भक्ति सो जे नर करत हैं । फल वांछा कुछ नाहिं प्रेम उर धरत हैं ॥ ज्यों जगमाहिं किसानसु खेतीको करें । नाज काज जिय जान सुशुभ आपही झरें ॥ ऐसे पूजादान भक्ति वश कीजिये । सुख सम्पति गति मुक्ति सहज कर लीजिये ॥ पूर्णार्घं ॥ १० ॥

अथ जयमाल ।

दोहा ।

सोनागिरिके शीसपर । जिन मंदिर अभिराम ।
तिन गुणकी जयमालिका । वर्णत आशाराम ॥ १ ॥

पद्धडि छंद ।

गिरि नीचे जिन मंदिर सुचार । ते यतिन रचे शोभा अपार ॥
तिनके अति दीर्घ चौक जान । तिनमें यात्रा मेलें सु आन ॥२॥
गुमठी छज्जे शोभित अनूप । ध्वज पंकति सोहैं विविधरूप ॥
वसु प्रातिहार्य तहां धरे आन । सब मंगलद्रव्यनि की सुखान ॥३॥
दरवाजोंपर कलशा निहार । करजोर सुजय जय ध्वनि उचार ॥

अति तनक बुद्धि आशासुपाय। बश भक्ति कही इतनी सुगाय॥
मैं मन्दबुद्धि किम लहों पार। बुद्धिवान चूक लीजो सुधार॥१६॥

घत्ता दोहा।

सोनागिरि जय मालिका, लघुमती कही बनाय।
पढ़े सुने जो प्रीतिसे, सो नर शिवपुर जाय॥१७॥

इत्याशीर्वादः।

इतिश्री सोनागिरि पूजा सम्पूर्ण।

---

(२३) रविव्रतपूजा।

अडिल्ल।

यह भवजन हितकार, सु रविव्रत जिन कही। करहु भव्य-जन लोग, सुमन देकें सही॥ पूजों पार्श्व जिनेन्द्र त्रियोग लगायकें। मिटै सकल संताप मिले निध आपकें॥ मति सागर इक सेठ कथा ग्रन्थन कहीं। उनही ने यह पूजा कर आनंद लही॥ तातें रविव्रत सार, सो भविजन कीजिये। सुख संपति सन्तान, अतुल निध लीजिये। दोहा। प्रणमो पार्श्व जिनेशको, हाथ जोड़ सिर नाय। परभव सुखके कारने, पूजा करूं बनाय॥ एतवार व्रतके दिना, एही पूजन ठान। ता फल सुरंग सम्पति कहैं, निश्चय लीजे मान॥ ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अत्र अवतर अवतर तिष्ठ २ ठः ठः अत्र मम सन्निहितो।

अष्टक ।

उज्जल जल भरके अति लायो रतन कटोरन माहीं । धार देत अति हर्ष वढ़ावत जन्म जरा मिट जाहीं ॥ पारसनाथ जिनेश्वर पूजों रविवृत के दिन माईं । सुख सम्पति बहु होय तुरत ही, आनंद मंगलदाई ॥ ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ मलयागिर केशर अति सुंदर कुमकुम रंग बनाई । धार देत जिन चरनन आगे भव आताप नसाई ॥ पारसनाथ० ॥ सुगंधं ॥ मोती सम अति उज्जल तन्दुल ल्यावो नीर पखारो । अक्षय पदके हेतु भावसो श्री जिनवर ढिग धारो ॥ पारस० ॥ अक्षतं ॥ वेला अरमच कुन्द चमेली पारजातके ल्यावो । चुन चुन श्री जिन अग्र चढ़ाऊं मनवांछित फल पावो ॥ पारस० ॥ पुष्पं ॥ वावर फेनी गोजा आदिक घृतमें लेत पकाई । कंचन थार मनोहर भरके चरनन देत चढ़ाई ॥ पारस० ॥ नैवेद्यं ॥ मनमय दीप रतनमय लेकर जगमग जोत जगाई । जिनके आगे आरति करके मोह तिमिर नस जाई ॥ पारस० ॥ दीपं ॥ चूरन कर मलयागिर चन्दन धूप दशांग बनाई । तट पावकमें खेय भावसो कर्म नाश हो जाई ॥ पारसनाथ० ॥ धूपं ॥ श्रीफल आदि बदाम सुपारी भांत भांत के लावो । श्री जिन चरन चढ़ाय हरस कर तातें शिव फल पावो ॥ पारस० ॥ फलं ॥ जल गंधादिक अष्ट दरब ले अर्घ बनावो भाई । नाचत गावत हर्ष भाव सो कंचन थार भराई ॥ पारस ० ॥ अर्घं ॥ गीतका छंद ॥ मन वचन काय त्रिशुद्ध करके पार्श्वनाथ सु पूजिये । जल

आदि अर्घ बनाय भविजन भक्तिवन्त सुहूजिये ॥ पूज्य पारसनाथ जिनवर सकल सुख दातारजी । जे करत हैं नरनार पूजा लहत सुख अपारजी ॥ पूर्ण अर्घ ॥ दोहा ॥ यह जगमें विख्यात हैं, पारसनाथ महान । जिनगुनकी जयमालका, भाषा करों बखान ॥ पद्धरी छंद ॥ जय जय प्रणमो श्री पार्श्व देव । इन्द्रादिक तिनकी करत सेव ॥ जय जय सु बनारस जन्म लीन । तिहु लोक विषे उद्योत कीन ॥ १ ॥ जय जिनके पितु श्री विश्वसेन । तिनके घर भये सुख चैन एन ॥ जय वामादेवी, माय जान । तिनके उपजे पारस महान ॥ २ ॥ जय तीन लोक आनन्द देन । भवि-जनके दाता भये हैं पेन ॥ जय जिनने प्रभुका शरन लीन । तिनकी सहाय प्रभुजी सो कीन ॥ ३ ॥ जय नाग नागनी भये अधीन । प्रभु चरणन लाग रहे प्रवीन ॥ तजके सो देत स्वर्गं सु जाय । धरनेंद्र पद्मावति भये आय ॥ ४ ॥ जे चोर अंजना अधम जान । चोरी तज प्रभुको धरो ध्यान ॥ जे मृत्यु भये स्वर्गं सु जाय । रिद्धि अनेक उनने सु पाय ॥ ५ ॥ जे मति-सागर इक सेठ जान । जिन रविवृत पूजा करी ठान । तिनके सुत थे परदेशमांहि । जिन अशुभ कर्म काटे सु ताहि ॥ ६ ॥ जे रविवृत पूजन करी शेठ । ताफलकर सबसे भई भेंठ ॥ जिन जिनने प्रभुका शरन लीन । तिन रिद्धिसिद्धि पाई नवीन ॥ ७ ॥ जे रविवृत पूजा कर हिं जेय । ते सुख्य अनंतानन्त लेय ॥ धरनेन्द्र पद्मवति हुये सहाय । प्रभु भक्ति जान ततकाल आय ॥ ८ ॥ पूजा विधान इहिं विध रचाय । मन वचन काय तीनों लगाय ॥ जो भक्तिभाव जैमाल गाय । सोही सुख सम्पति अतुल पाय ॥ ९ ॥

बाजत मृदंग वीनादि सार । गावत नाचत नाना प्रकार ॥ तन नन नन नंन नन ताल देत । सन नन नन सुर भर सु लेत ॥ १० ता थेइ थेइ थेई पग धरत जाय । छम छम छम घुंगरू बजाय ॥ जे करहिं विरत इहिं भांत भात । ते लहहिं सुख्य शिवपुर सु जात ॥ ११ ॥ दोहा ॥ रविव्रत पूजा पार्श्वकी, करे भवक जन कोय । सुख सम्पति इहिं भव लहै, तुरत सुरग पद होय ॥ अडिल्ल । रविव्रत पार्श्व जिनेन्द्र पूज्य भव मन धरें । भव भवके आताप सकल छिनमें टरें ॥ होय सुरेन्द्र नरेन्द्र आदि पदवी लहै । सुख सम्पति सन्तान अटल लक्ष्मी रहै ॥ फेर सर्व विध पाय भक्ति प्रभु अनुसरें । नाना विध सुख भोग बहुरि शिव त्रियवरै ॥

इत्यादि आशीर्वादः ।
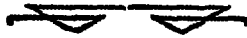
[२४] पावापुर सिद्धक्षेत्र पूजा ।

दोहा । जिहि पावापुर छिति अघति, हत सन्मत जगदीश । भये सिद्ध शुभ थानसो, नमों नाय निज शीश ॥ ॐ ह्रीं श्री पावापुर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अत्र अवतर अवतर । अत्र तिष्ठ २ ठः ठः स्थापनं ॥ अत्रममसन्निहितो भवभववषट्सन्निधीकरणं परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् । अथ अष्टक ॥ गीतका छंद ॥ शुचि सलिल शीतौ कलिल रीतौ श्रमन चीतो लै जिसो । भर कनक झारी

त्रिगद हारी दै त्रिधारी जित तृषौ ॥ वर पद्मवन भर पद्मसरवर बहिर पावा ग्रामही। शिव धाम सन्मत स्वाम पायोज जों सो सुख दामही ॥ ॐ ह्रीं श्री पावापुर क्षेत्रये वीरनाथ जिनेन्द्राय जन्म-जरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥जलं॥ भव भ्रमत भ्रमत अशर्म्म तपकी तपन कर तप ताईयो। तसु वलय कंदन मलय चंदन उदय संग घिस ल्याइयो ॥ वरपद्म० ॥ सुगंधं ॥ तंदुल नवीन खंड लीने लै महीने ऊजरे। मणि कुन्दइन्दु तुषारद्युत जित कण रकावीमें धरे ॥ वरपद्म० ॥ अक्षतं ॥ मकरंद लोभन सुमन शोभन सुरभ चोभन लेयजी। मद समर हरवर अमर तरके घ्रान दृग हरवेयजी ॥ वरपद्म० ॥ पुष्पं ॥ नैवेद्य णवन छुध मिटावन सेठ्य भावन युत किया। रस मिष्ट पूरत इष्ट सूरत लेय कर प्रभु हित हिया ॥ वरपद्म० ॥ नैवेद्य ॥ तम अज्ञ नाशक स्वपर भाशक ज्ञेय परकाशक सही। हिम पात्रमे धर मौल्य विनवर द्योत धर मणि दीपही ॥ वरपद्म० ॥ दीपं ॥ आमोद कारी वस्तु सारी विध दुचारी जारनी। तसु तूप कर कर धूप लै दश दिशं सुरभं विस्तारनी ॥ वरपद्म० ॥ धूपं ॥ फल भक्व पक्व सुचक्व सोहन सुक्व जनमन मोहने। वर रस पुरत लख तुरत मधु रत लेय कर अत सोहने। वरपद्म० ॥ फलं ॥ जल गंध आदि मिलाय वसु विध थार स्वर्ण भरायकें। मन प्रमुद भाव उपाय कर लै आय अर्घ बनायकें ॥ वरपद्म० अर्घं ॥ अथ जयमाल ॥ दोहा ॥ चरम तीर्थ करतार श्री, वर्द्धमान जगपाल। कल मल दल विध विकल हुय, गाऊं तिन जयमाल ॥१॥ पद्धडि छंद ॥ जय जय सुवीर जिन मुक्ति थान। पावापुर वन सर शोभवान ॥ जे शित असाढ़

छट स्वर्ग धाम । तत्र पुष्पोत्तर सु विमान ठान ॥१॥ कुंडलपुर सिद्धारथ नृपेश । आये त्रिशला जननी उरेश ॥ शित चैत्र त्रियोदश पुत त्रिज्ञान । जन्में तम अज्ञ निवार भान ॥ २ ॥ पूर्वान्ह धवल चतु दशि दिनेश । किय न्हुन कनकगिरि शिर सुरेश । वय वर्ष तीस पद कुमर काल । सुख द्रव्य भोग भुगते विशाल ॥ ३ ॥ मारगशिर अलि दशमी पवित्र । चढ़ चंद्रप्रभु शिवका विचित्र ॥ चलपुरसे सिद्धन शीश नाय । धारो संयम वर शर्म्मदाय ॥ ४ ॥ गत वर्ष दुदश कर तप विधान । दिन शित वैशाख दशैं महान । रिजुकुला सरिता तट स्व सोध । उपजायो जिनवर चरम बोध ॥ ५ ॥ तवही हरि आज्ञा शिर चढ़ाय । रचियो समवाश्रित धनद राय । चतु संघ प्रभृत गौतम गनेश । युत तीस वरष विहरे जिनेश ॥ ६ ॥ भवि जीवन देशन विविध देत । आये वर पावानग्र खेत ॥ कार्तिक अलि अन्तम दिवस ईश । व्युतसंर्गासन विध अघतिपीश ॥७॥ ह्वै अकल अमल इक समय माहिं । पंचम गति निवेश श्री जिनाह ॥ तव सुरपति जिन रवि अस्त जान । आये जु तुरत स्व स्व विमान ॥ ८ ॥ कर वपु अरचा थुति विविध भांत । लै विविध द्रव्य परमल विख्यात ॥ तव ही अगनींद्र नवाय शीश । संस्कार देह श्री त्रिजगदीश ॥९॥ करं भस्म नंदना स्व स्व महीय । निवसे प्रभु गुन चितवन स्वहीय । पुन नर मुनि गनपति आय आय । वंदी सोरज सिर ल्याय ल्याय ॥ १० ॥ तवहीसें सो दिन पुज्यमान । पूजत जिनग्रह जन हर्ष मान । मैं पुन पुन तिस भुवि शीश धार । वंदो तिन गुणधर हृद मझार ॥ ११ ॥ जिनहीका अब भी तीर्थ एह ।

वर्तत दायक अति शर्म्म गेह ॥ अरु दुषम अवसान ताहिं । वर्तै गोभव थित हर सदाहि ॥ १२ ॥ कुसमतला छंद ॥ श्री सन्मत जिन अंघ्रि पद्म जी युग जजै भव्य जो मन वच काय । ताके जन्म जन्म संतत अघ जावहिं इक छिन माहिं पलाय ॥ धनधान्यादि शर्म्म इन्द्रीजन लह सो शर्म्म अतेन्द्री पाय । अजर अमर अविनाशी शिव थल वर्णी दौल रहै थिर थाय ॥ इत्यादि आशीर्वादः ॥

(२५) चंपापुर सिद्धक्षेत्र पूजा ।

॥ दोहा ॥ उतसव किय पनवार जहं, सुरगन युत हरि आय । जजों सुथल वसपूज्य सुत, चम्पापुर हर्षाय ॥ १ ॥ ॐ ह्रीं श्री चंपापुर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अत्रावतरावतर संवौषट् इत्याह्वाननं ॥ १ ॥ अत्र तिष्ठतिष्ठ ठः ठः स्थापनं ॥ २ ॥ अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् ॥

अष्टक ॥ ढाल नन्दीश्वर पूजनकी ॥

सम अमिय विंगत त्रस वारि, लै हिम कुंभ भरा । लख दुखद त्रिगद हरतार, दै त्रय धार भरा ॥ श्री वासुपुज्य जिनराय, निर्वृत थान प्रिया । चम्पापुर थल सुखदाय, पूजों हर्ष हिया ॥ ॐ ह्रीं श्री चम्पापुर सिद्ध क्षेत्रेभ्यो जन्मजरा मृत्यु विनाशनाय ॥ जलं ॥ काश्मीर नीर मधगार, पति पवित्र खरी । शीतलचन्दन संगसार, लै भव तापहरी ॥ श्री वासुपूज्य० ॥

सुगंधं ॥२॥ मणिद्युत समखंड विहीन, तंदुल लेनीके, सौरभ युत नववर लीन, शाल महानीके ॥ श्री वासुपूज्य० ॥ अक्षतं ॥ ३ ॥ अलि लुभन शुभन दृग घ्राण, सुमन सुरन द्रुमके। लैवाहिम अर्जुनग्रान, सुमन दमन शुमके ॥ श्री वासुपूज्य० ॥ पुष्पं ॥ ४ ॥ रस पुरत तुरत पकवान, पक यथोक्त घृतो । क्षुध गदमद प्रदमन जान, लैविव युक्तकृती । श्री वासुपूज्य० ॥ नैवेद्यं ५ ॥ तमअज्ञ प्रनाशक सूर, शिव मग परकाशी । लै रत्नदीप घृत पूर, अनुपम सुखराशी ॥ श्रीवासु० ॥ दीपं ॥ ६ ॥ वर परमल द्रव्य अनूप, सोध पवित्र करी । तसुचूरण कर कर धूप, लैविध कंमहर' ॥ श्रीवासु० ॥ ७ ॥ धूपं ॥ फल पक मधुररस वान, प्रासुक बहुविधके । लख सुखद रसन दृग घ्रान, लैपद पद सिधके ॥ श्रीवासु० ॥८॥ फलं ॥ जल फल वसु द्रव्य मिलाय, लैभर हिमथारी ॥ वसु अंग धरा पर ल्याय, प्रमुद रव चितधारी ॥ श्री वासु० ॥ अर्घ ॥ अथ जयमाल ॥ दोहा ॥ भये द्वादशम तीर्थपति, चंपापुर शुभ थान । तिन गुणकी जयमाल कछु, करौं श्रवण सुख दान ॥ पद्धडिछन्द ॥ जय जय श्री चंपापुर सो धाम । जहां राजत नृप वसुपुज नाम ॥ जनपौन पल्यमें धर्महीन । भवभ्रमन दुःखमय लख प्रवीन ॥१॥ उर करुणा धर सो तम विडार । उपजे किरणावलि धर अपार ॥ श्रीवासपूज्य तिंनै तने वाल । द्वादशम तीर्थ कर्ता विशाल ॥२॥ भवभोग देहसें विरत होय । वय वाल माहिं ही नाथ सोय ॥ सिद्धन नम महं वृत भार लीन । तप द्वादश विध उग्रोग्र कीन ॥ तहं मोह सतत्रय आयु येह । दशप्रकृति पूर्व ही क्षय करेह ॥ श्रेणीजु क्षपक

आरूढ़ होय। गुण नवम भाग नव माहिं सोय॥४॥ सोलह वसु इक इक षट इकेय। इक इक इक इम इन क्रम सहेय॥ पुन दशम थान इक लोभटार। द्वादशम थान सोलह विडार॥५॥ द्वै अतिम चतुष्टय युक्त स्वाम। पायो सत्र सुखद संयोग ठाम॥ तह काल त्रिगोचर सर्व गेय। युगपत हि समय इक महि लखेय॥६॥ कछु काल दुविध वृष अमिय वृष्टि। कर पोषें भव भवि धान्य श्रष्टि॥ इक मास आयु अवशेष जान जिन योगनकी सुप्रवर्तें हान॥७॥ ताही थल तृतिशित ध्यान ध्याय॥ चतुदशम थान निवसे जिनाय॥ तह दुचरम समय मझार ईश। प्रकृति जुवहत्तर तिनहि पीश॥८॥ तेरहको चरम समय मझार। करके श्री जगतेश्वर प्रहार॥ अष्टमि अवनी इक समयमद्ध। निवसे पाकर निज अचल रिद्ध॥९॥ युत गुण वसु प्रमुख अमित गुणेश। ह्वेरहे सदाही इमहिं वेश॥ तवहीसें मो थानक पवित्र। त्रैलोक्य पूंज्य गायों विचित्र॥ मैं तसु रज निज मस्तक लगाय। बन्दों पुन पुंन भूवि शीशनाय॥ ताही पद वांछा उर मझार। धर अन्य चाह बुद्धि विडार॥११॥ दोहा। श्री चंपापुर जो पुरुष, पूजै मनवच काय। वर्णि "दौल" सो पायही, सुख संपति अधिकाय॥ इत्यादि आशीर्वादः॥

इति श्री चंपापुर सिद्धक्षेत्र पूजा समाप्तम्।

सुरतरुके सुमनसमेत, सुमन सुमन प्यारे । सो मनमथभंजन हेत, पूजूं पद थारे ॥ श्रीवीर० ॥ जय वर्द्धमान० ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं नि०॥४॥

रसरज्जत रज्जत सद्य, मज्जत थार भरी । पद जज्जत रज्जत अद्य, भज्जत भूख अरी ॥ श्रीवीर० ॥ जयवर्द्धमान० ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि०॥५॥

तमखंडित मंडित नेह, दीपक जोवत हूं । तुम पदतर हे सुखगेह, भ्रमतम खोवत हूं ॥ श्रीवीर० ॥ जय वर्द्धमान० ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि०।६।

हरिचंदन अगर कपूर, चूरि सुगन्ध करे । तुम पदतर खेवत भूरि, आठौं कर्म जरे ॥ श्री वीर० ॥ जय वर्द्धमान० ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि०॥७॥

रितुफल कलवर्जित लाय, कंचनथार भरौं । शिव फलहित हे जिनराय, तुमढिग भेट धरौं ॥ श्रीवीर० ॥ जय वर्द्धमान० ॥

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि० ॥८॥

जलफल वसु सजि हिमथार, तनमन मोद धरौं । गुण गाऊं भवदधितार, पूजत पाप हरौं ॥ श्रीवीर० ॥ जयवर्द्धमान० ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि० ॥९॥

पंचकल्याणक—राग टप्पा ।

मोहि राखौ हो सरना, श्रीवर्द्धमान जिनरायजी, मोहि राखौ हो सरना ॥ टेक ॥ गरभ साढ़सित छट्ट लियौ तिथि, त्रिशला उर अघहरना । सुर सुरपति तित सेव करंत नित, मैं पूजूं भवतरना ॥ मोहि राखौ० ॥ १ ॥

दुखहरन आनंदभरन तारन, तरन चरन रसाल हैं।
सुकुमाल गुन मणिमाल उन्नत, भालकी जयमाल हैं ॥ १ ॥

छंद घत्तानंद (३१ मात्रा)

जय त्रिशलानंदन हरिकृतवंदन, जगदानंदनचंद वरं।
भवतापनिकंदन तनमनवंदन, रहितसपंदन नयन घरं ॥ २ ॥

छंद तोटक।

जय केवलभानुकलासदनं। भविकोकविकाशन कंजवनं ॥
जगजीत महारिपु मोहहरं। रजज्ञानदृगांवरचूरकरं ॥ १ ॥
गर्भादिक मंगल मंडित हो। दुख दारिद्को नित खंडित हो।
जगमाहिं तुमी सत पंडित हो। तुम ही भवभावविहंडित हो ॥२॥
हरिवंजसरोजनकौं रवि हो। बलवंत महंत तुमी कवि हो ॥
लहि केवल धर्मप्रकाश कियौ। अवलौं सोई मारग राजतिं थौं ॥३॥
पुनि आपतने गुणमाहिं सही। सुर मग्न रहैं जितने सब ही।
तिनकी वनिता गुण गावत हैं। लय ताननिसों मनभावत हैं॥ ४ ॥
पुनि नाचत रंग अनेक भरी। तुव भक्तिविषै पग एम धरी।
झननं झननं झननं झननं। सुर लेत तहां तननं तननं ॥ ५ ॥
घननं घननं घनघंट बजैं। दृमदं दृमदं मिरदंग सजैं।
गगनांगणगर्भगता सुगता। ततता ततता अतता वितता ॥ ६ ॥
धृगतां धृगतां गति बाजत है। सुरताल रसाल जु छाजत है।
सननं सननं सननं नभमें। इकरूप अनेक जु धार भमैं ॥ ७ ॥
कइ नारि सु वीन बजावतु हैं। तुमरौ जस उज्जल गावतु हैं।
करतालविषैं करताल धरैं। सुरताल विशाल जु नाद करैं ॥ ८ ॥

इन आदि अनेक उछाहभरी । सुरभक्ति करैं प्रभुजी तुमरी ।
तुमही जगजीवनके पितु हो । तुमही बिनकारनके हितु हो ॥ ९ ॥
तुमही सब विघ्न विनाशन हो । तुमही निज आनंदभासन हो ।
तुमही चितचिंतितदायक हो । जगमाहिं तुमी सब लायक हो ॥१०॥
तुमरे पनमंगलमाहिं सही । जिय उत्तम पुण्य लियौ सब ही ।
हमको तुमरी सरनागत है । तुमरे गुनमें मन पागत है ॥ ११ ॥
प्रभु मो हिय आप सदा बसिये । जबलौं वसुकर्म नहीं नसिये ।
तबलौं तुम ध्यान हिये वरतो । तबलौं श्रुतचिंतन चित्त रतो ॥१२॥
तबलौं व्रत चारित चाहत हौं । तबलौं शुभ भाव सुगाहत हौं ।
तबलौं सतसंगति नित्य रहौ । तबलौं मम संजम चित्त गहौ ॥१३॥
जबलौं नहिं नाश करौं अरिको । शिवनारि वरौं समताधरिको ।
यह द्यो तबलौं हमको जिनजी । हम जाचत हैं इतनी सुनजी ॥१४॥

छंद घत्तानंद ।

श्रीवीर जिनेशा नमितसुरेशा, नागनरेशा भगतिभरा ।
'वृंदावन' ध्यावे, वांछित पावे शर्मवरा ॥ १५ ॥
ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

दोहा ।

श्री सनमतिके जुगलपद, जो पूजहिं धर प्रीत ।
वृंदावन सो चतुरनर, लहैं मुक्त नवनीत ॥ १६ ॥

[२७] जन्मकल्याणक पूजा।

दोहा।

दोष अठारह रहित प्रभु, सहित सुगुण छयालीस।
तिन सबकी पूजा करों, आय तिष्ठ जगदीश ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमदर्हत्परमेष्ठिन्! अत्र अवतर! अवतर! संवौषट्।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट् चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमदर्हत्परमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट् चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमदर्हत्परमेष्ठिन्! अत्रममसन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक।

(द्यानतरायकृत नन्दीश्वर द्वीपाष्टककी चाल।)

शुचिक्षीरउदधिको नीर, हाटक भृंगभरा।
तुमपदपूजों गुणधीर, मेटो जन्मजरा ॥
हरि मेरुसुदर्शन जाय, जिनवर न्हौन करें।
हम पूजें इनगुण गाय, मंगल मोद धरें ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट् चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमदर्हत्परमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

केसर घृतसार मिलाय, शीत सुगंधघनी।
जुगचरनन चर्चों लाय, भव आतापहनी ॥
हरि मेरु सुदर्शन जाय, जिनवर न्हौन करें।
हम पूजें इतगुण गाय, मंगल मोद धरें ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट् चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमद्-र्हत्परमेष्टिने संसारातापविनाशनाय चदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥

अक्षत मोती उनहारे, स्वेत सुगन्ध भरे ।
पाऊं अक्षयपद सार, ले तुम भेंट धरे ॥
हरि मेरुसुदर्शन जाय, जिनवर न्हौन करें ।
हम पूजें इतगुणगाय, मङ्गल मोद धरें ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमद्-र्हत्परमेष्टिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥

बेल्हा जूही गुलाब, सुमन अनेक भरे ।
तुम भेंट धरों जिनराज, काम कलंक हरे ॥
हरि मेरु सुदर्शन जाय, जिनवर न्हौन करें ।
हम पूजें इतगुण गाय, मङ्गल मोद धरें ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशं दोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमद्-र्हत्परमेष्टिने कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

फेनी गोझा पकवान, सुन्दर ले ताजे ।
तुम अग्र धरों गुण खान, रोग छुधा भाजे ॥
हरि मेरु सुदर्शन जाय, जिनवर न्हौन करें ।
हम पूजें इत गुण गाय, मङ्गल मोद धरें ॥ ५ ॥

ॐ ह्रींअष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमदर्ह-त्परमेष्टिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

कंचन मय दीपक वार, तुम आगे लाऊं ।
मम तिमिर मोह छैकार, केवल पद पाऊं ॥

हरि मेरु सुदर्शन जाय, जिनवर न्हौन करें ।
हम पूजें इत गुण गाय, मङ्गल मोद धरें ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमदर्हत्परमेष्ठिने मोहांधकारबिनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

कृष्णागरु तगर कपूर, चूरसु गंध करों ।
तुम आगे खेवत भूर, वसुविध कर्म हरों ॥
हरि मेरु सुदरशन जाय, जिनवर न्हौन करें ।
हम पूजें इत गुण गाय, मङ्गल मोद धरें ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुण सहित श्रीमदर्हत्परमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

श्रीफल अंगूर अनार, खारक थार भरों ।
तुम चरन चढाऊं सार, ताफल मुक्ति वरों ॥
हरि मेरु सुदर्शन जाय, जिनवर न्हौन करें ।
हम पूजै इत गुण गाय, मङ्गल मोद धरें ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादश दोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमदर्हत्परमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

जल आदिक आठ अदोष, तिनका अर्घ करों ।
तुम पद पूजों गुण कोष, पूरन पद सु धरों ॥
हरि मेरु सुदरशन जाय, जिनवर न्हौन करें ।
हम पूजें इत गुण गाय, बदरी मोद धरें ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमदर्हत्परमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

आरती ।

(जंगीरामा ।)

जन्मसमय उच्छव करनेको, इन्द्र शची युत धायो ।
तिहँको कछु वरणन करवेको, मेरो मन उमगायो ॥
बुधि जन मोकों दोष न दीजो, थोरी बुद्धि भुलायो ।
साधू दोष क्षमें सबहीके, मेरी करौ सहायो ॥ १ ॥

(छंद कामिनी-मोहन-मात्रा २० ।)

जन्म जिनराजको जबहिं निज जानियों ।
इन्द्र धरनिंद्र सुर सकल अकुलानियों ॥
देव देवाङ्गना चालिंय जयकारतीं ।
शचियँ सुरपति सहित करतिं जिन आरतीं ॥ २ ॥

साजि गजराज हरि लक्ष जोजनं तनो । बदन शत दन्त प्रति दन्त वसु सोहनो ॥ संजलं भरि पुर संगत प्रति धारतीं । शचियँ सुरपति सहित, करतिं जिन आरतीं ॥ ३ ॥ सरहिं सर पंच दुय एक कमलिनि बनी । तासु प्रति कमल पच्चीस शोभा बनी ॥ कमल दल एकसौ आठ विस्तारतीं । शचियँ सुरपति सहित करत जिन आरतीं ॥४॥ दल हिं दल अप्छरा नाचहीं भावसों । करहिं संगीत जयकार सुर चावसों ॥ तगड्दा तगड़ थई करत पग धारतीं । शचियँ सुरपति स० ॥ ५ ॥ तासु करि बैठि हरि सकल परिवारसों । देहि परदक्षिणा जिनहिं जयकारसों ॥ आनि करि शचियँ जिन नाथ उर धारतीं । शचियँ सुरपति स० ॥ ६ ॥ आनि पांडुकशिला पूर्व मुख थाप जिन । करहिं अभिषेक उच्छाहसों अधिक तिन ॥ देखि प्रभु बदन छवि

कोटि रवि वारतीं। शचिँय सुरपति सहित कर० ॥ ७ ॥ जोजन-नह आठ गम्भीर कलशा बने। चारि चौराइ मुख एक जोजन्न तने ॥ सहस अरु आठ भरि कलश शिर ढारतीं। शचिय सुरपति सहि० ॥ ८ ॥ छत्र मणि खचित ईशान करतारहीं। सनत माहेंद्र दोउ चमर शिर ढारहीं ॥ देव देवीय पुष्पांजलिय डारतीं। शचिय सुरपति सहित करत जिन० ॥ ९ ॥ जलसु चन्दन पुहप शालि चरु ले धरों। दीप अरु धूप फल अर्घ पूजा करों ॥ पिंडिका और नीरांजना वारतीं। शचिँय सुरपति सहित कर० ॥ १० ॥ कियो श्रृंगार सब अंग सामाजसों। आनि मातहिं दियो बहुरि जिनराजको ॥ त्रपत नहिं होत दृग रूप निहारनीं। शचिँय सुरपति सहित करत जिन आर० ॥ ११ ॥ ताल मिरदंग धुनि सप्त सुर बाजहीं। नृत्य तांडव करत इन्द्र अति छाजहीं ॥ करत उच्छाहसों निजसु पंद धारती। शचिँय सुरपति सहित कर० ॥ १२ ॥ भव्य जन आय जिन जन्म उत्सव करैं। आपने जन्मके सकल पातिक हरे ॥ भक्ति गुरुदेवकी पार उत्तारतों। शचिँय सुरपति सहित करति जिन आ० ॥ १३ ॥

घत्ता।

जिनवर पद पूजा भावसु हूजा, पूरण [illegible] आनँद भया।
जयवंत सु हुजो आसा-पूजो, लाल विनोदी भाल नया ॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहित षट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीमदर्हत्परमेष्ठिने पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

चौपाई।

मंगल गर्भ समयमें जोय। मंगल भयो जन्ममें जोय।
मंगल दीक्षा धारत जोय। मंगल ज्ञान प्राप्तिमें जोय ॥

मंगल मोक्ष गमनमें जोय । इन्द्रन कीनों हर्षित होय ।
जाचूं वार वारहौं सोय । हे प्रभु ! दीजे मंगल मोथ ॥
इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

(२८) लघु पंचपरमेष्ठी विधान ॥

स्व०. कवि-चन्द्रजी कृत

स्थापना ।

दोहा—श्रीधर श्रीकर श्रीपती, भव्वनि श्रीदातार ।
श्रीसर्वज्ञ नमो सदा, पार उतारन हार ॥ १ ॥

अडिल्ल छंद ।

चार घातिया कर्म नाशि केवल लयो ।
समोशरण तहां धनदे[1] आय सुंदर ठयो ॥
चौंतिस अतिशय अष्ट प्रातहारज भये ।
चार चतुष्टय सहित सुगुण छयालिस लये ॥ २ ॥
कर विहार भवि जीवन पार लगाइये ।
नाश अघातिय चार सो शिवपुर जाइये ॥
जिनके गुण सु अनंत कहां वर्णन करों ।
बसु गुण हैं व्यवहार सिद्ध थुति उचरों ॥ ३ ॥

सोरठा ।

श्रीआचारज जान, धरत सदा आचारको ।
छत्तिस गुण परवान, वन्दों मन वच कायकर ॥ ४ ॥

---

१ कुबेर ।

दोहा—पचिस गुण उवझायके, ते धारें वर वीर।
पढ़ैं पढ़ावें पाठ वर, निर्मल गुण गम्भीर ॥ ५ ॥
वीस आठ गुण धारकर, साधें साधु महन्त।
जीवदया पालें सदा, नहीं विरोधें जन्त ॥ ६ ॥

चौपाई।

ये ही पंच परमगुरु जानो। या जगमें अन्य न मानो।
जिन जीवन इन सुमरन कियो। सुर शिवथान जाय तिन लियो।
जो प्राणी मन वच तन ध्यावें। सिंह व्याघ्र गज नाहिं सतावें।
जो मनमें इन सुमरन लावे। ताहि सप्त भय नाहिं सतावें ॥९॥
दोहा—यही इष्ट उत्कृष्ट अति, पूजों मन वच काय।
थापत हों त्रय बारकर, तिष्ठ तिष्ठ इत आय ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं पंचपरमेष्ठिनोऽत्रागच्छतागच्छत संवौषट् (आव्हाननं)
ॐ ह्रीं पंचपरमेष्ठिनोऽत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः (प्रतिष्ठापनं)
ॐ ह्रीं पंचपरमेष्ठिनोऽत्र मम संनिहिता भवत भवत भवत वषट् स्वाहा (सन्निधापनम्)

अष्टक।

गीता छंद।

जल सरस अंग तरंगको, शुचि रंग सुन्दर लाइये।
कंचन कटोरी माहिं भर, जिनराज चरन चढ़ाइये॥
ये पंच इष्ट अनिष्ट हरता, दृष्टि लगत सुहावने।
मैं जजों आनंदकन्द लखकर, दन्द फन्द मिटावने ॥
ॐ ह्रीं पंचपरमेष्ठिभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

ले गारि मलयागिरि सु चन्दन, अति सुगंध मिलायके।
मैं हर्षकर जिनचरण चर्चों, गाय साज बजायके॥ ये पंच०॥
ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो चंदनं निर्वपामीति स्वाहा॥ २॥
ले सरस तंदुल खंड विनसित, सालिके वर आनिये।
मल धोय थार सँजोय पूजों, अखयपदको ठानिये॥ ये०॥
ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्योऽक्षतान्निर्वपामीति स्वाहा॥ ३॥
केवड़ा वेला चमेली, कुंद सुमन सुहावने।
केतकी आदिकसे पूजों, जगत जन मन भावने॥ ये०॥
ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा॥ ४॥
लाडू पुआ पेड़ारु मिश्री, खोपरा खाजा बने।
धर हेमथाल मंझार पूजों, क्षुधारोग निवारने॥ ये०॥
ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ ५॥
ले दीप मणिमय ज्योति जगमग, होत अधिक प्रकाशनी॥
कर आरती गुण गायं नांचों, मोहतिमिरविनाशनी॥ ये०॥
ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा॥ ६॥
कर चूर अगर कपूर ले, भरपूर जास सुवासकी।
खेऊं सु अगन मंझार होकरके सन्मुख जासकी॥ ये०॥
ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा॥ ७॥
फल सरस सुख दातार, तन मन धोय जलसे लीजिये।
धर थाल मध्य सु भक्तिसे, जिनराज चरण जजिये॥ ये०॥
ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यः फल निर्वपामीति स्वाहा॥ ८॥
ले नीर निर्मल गन्ध अक्षत, सुमन अरु नैवेद्य जी।
मिल दीप धूप सु फल भले, धर अरघ परम उम्मेद जी॥ ये०॥
ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ ९॥

रोडक छंद।

वसु विधि अरघ संजोय, जोय जे पंच इष्ट वर।
पूजों मन हुलसाय, पांय जिन प्रीति हृदय घर॥
तुम सम अन्य न ज्ञान, जानि तुम्हरे गुण गाऊं।
घर थालीके मध्य सो, पूरण अरघ बनाऊं॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचपरमेष्ठिभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥१०॥

श्रीअरहंतगुण पूजा।

सोरठा।

छयालिस गुण समुदाय, दोष अठारह टारते।
अरिहंत शिवसुखदाय, मुझ तारो पूजों सदा॥ १॥

ॐ ह्रीं अर्हत्परमेष्ठिने षट्चत्वारिंशद्गुणविभूषिताय अष्टादशदोषरहिताय श्रीजिनाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

छंद मोतियदाम।

जिनके नहिं खेद न स्वेद कहा। तन श्रोणित दुग्ध समान महा॥
प्रथमा संस्थान विराजत हैं। वर वज्र शरीर सु राजत हैं॥ १॥
छबि देखत भानु प्रताप नसे। तनसे सु सुगन्ध महा निकसे॥
शत लक्षण अष्ट विराजत हैं। प्रिय बैन सबे हित छांजत हैं॥२॥
दोहा—तन मल रहित अतुल्य बल, धारत हैं जिनराज॥
ये दश अतिशय जनमके, भाषे श्रीगणराज॥ ३॥

ॐ ह्रीं सहजदशातिशयप्राप्ताय श्रीजिनाय अर्घं नि०॥

पद्धरी छंद।

केवल उपजे अतिशय सुजान। सो सुनो भव्य जन चित्त आन॥
शत योजन चारों दिशा माहिं। दुर्भिक्ष तहां दीखे सो नाहिं॥४॥

आकाशगमन करते जिनेश । प्राणीका घात न होय लेश ॥
कवलाआहार नाहीं करात । उपसर्ग-विना दीख सो गात ॥ ५ ॥
चतुरानन चारों दिशा जान । सब विद्याके ईश्वर महान ॥
छाया तनकी नाहीं सो होय । टमकार पलक लागे न कोय ॥६॥
नख केश वृद्धि ना होय जास । ये दश अतिशय केवल प्रकाश ॥
तिनको हम बन्दें शीसनाय । भव भवके अघ छिनमें पलाय ॥७॥

ॐ ह्रीं केवलज्ञानजन्मदशातिशयसुशोभिताय श्रीजिनाय अर्घं नि० ॥

चौबोला छंद ।

अब देवनकृत चौदह अतिशय, सो सुन लीजे भाई ।
सकल अरथमय मागधि भाषा, सब जीवन सुखदाई ॥
मैत्रीभाव सकल जीवनके, होत महा सुखकारी ।
निर्मल दिशा लसें सब ओरी, उपजें आनँद भारी ॥ ८ ॥
अरु निर्मल आकाश विराजत, नीलवरन तन धारी ।
षट् ऋतुके फल फूल मनोहर, लगे द्रुमोंकी डारी ।
दर्पण सम सो धरनि तहाँकी, अति जिय आनँद पावे ।
निष्कंटक मेदनि विराजे, क्यों कवि उपमा गावे ॥ ९ ॥
मन्द सुगन्ध बयारि वृष्टि, गन्धोदककी चहुँधाई ।
हरषमई सब सृष्टि विराजे, आनँद मंगलदाई ॥
चरण कमल तल रचत कमल सुर, चले जात जिनराई ।
मेघकुमारोंकृत गंधोदक, बरसे अति सुखदाई ॥ १० ॥
चउ प्रकार सुर जय जय करते, सब जीवन मन भावे ।
धर्मचक्र चले आगे प्रभुके, देखत भानु लजावे ॥

दश विधि मंगलद्रव्य धरीं, तहाँ देखत मनको मोहे।
विपुल पुण्यका उदय भयो है, सब विभूतियुत सोहे॥ ११॥

दोहा।

ये चौदह देवन सु कृत, अतिशय कहे बखान।
इन युत श्रीअरहंतपद, पूजों पद सुख मान॥ १२॥
ॐ ह्रीं सुरकृतचतुर्दशातिशयसंयुक्ताय श्रीजिनाय अर्घं नि०॥

लक्ष्मीधरा छंद।

प्रातिहार्य वसु जान, वृक्ष सोहे अशोक जहाँ।
पुष्पवृष्टि दिव्यध्वनि, सुर ढोरें सु चमर तहाँ॥
छत्र तीन सिंहासन, भामण्डल छबि छाजे।
बजत दुंदुभी शब्द श्रवण, सुख हो दुख भाजे॥१३॥
ॐ ह्रीं अष्टविधिप्रातिहार्यसंयुक्ताय श्रीजिनाय अर्घं नि० ॥

चौपाई।

ज्ञानावरणी करम निवारा, ज्ञान अनन्त तबै जिन धारा॥
नाश दरशनावरणी सूरा। दरशन भयो अनन्त सु पूरा॥१४॥

दोहा।

मोह कर्मको नाशकर, पायो सुक्ख अनन्त।
अन्तरायको नाशकर, बल अनन्त प्रगटन्त॥ १५॥
ॐ ह्रीं अनन्तचतुष्टयविराजमानश्रीजिनाय अर्घं नि०॥

पाइता छंद।

अतिशय चौतीस बखाने। वसु प्रातिहार्य शुभ जाने॥
पुन चार चतुष्टय लेवा। इन छ्यालिस गुण युत देवा॥१६॥
ॐ ह्रीं षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय श्रीजिनाय अर्घं नि० ॥

श्रीसिद्धगुण पूजा।

अडिल्ल।

दर्शन ज्ञानान्त, अनन्ता बल लहो।
सुख अनन्त विलसंत, सु सम्यक् गुण कहो॥
अवगाहन सु अगुरुलघु, अव्याबाध है।
इन वसु गुण युत सिद्ध, जजों यह साध है॥ १॥
ॐ ह्रीं अष्टगुणविशिष्टाय सिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घं नि०॥

श्रीआचार्य पूजा।

दोहा—आचारज आचारयुत, निज पर भेद लखन्त।
तिनके गुण षट् तीस हैं, सो जानो इमि सन्त॥ १॥

वेसरी छंद।

उत्तम क्षमा धरे मन माहीं। मारदव धरम मान तिहिं नाहीं॥
आरजव सरल स्वभाव सु जानो। झूठ न कहें सत्य परमानो।
निर्मल चित्त शौच गुण धारी। संयम गुण धारें सुखकारी॥
द्वादश विधि तप तपत महंता। त्याग करें मन वच तन संता॥
तज ममत्व आकिंचन पालें। ब्रह्मचर्य धर कर्मन टालें॥
ये दश धरम धरें गुण भारी। आचारज पूजों सुखकारी॥ ४॥
ॐ ह्रीं दशलाक्षणिकधर्मधारकाचार्य परमेष्ठिने अर्घं नि०॥

वेसरी छंद।

अब द्वादश तप सुनिये भाई; अनशन ऊनोदर सुखदाई॥
व्रतपरिसंख्या रस नहिं चाहें। विविक्तशैय्यासन अवगाहें॥ ५॥
कायक्लेश सहें दुख भारी, ये छह तप बारह गुण धारी॥
प्रायश्चित्त लेवें गुरु शाखें। विनयभाव निशिदिन चित्त राखें॥ ६॥

दोहा ।

वैयावृत्य स्वाध्यायकर, कायोत्सर्ग सु जान ।
ध्यान करें निज रूपको, ये बारह तप मान ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं द्वादशविधितपोयुक्ताय आचार्यपरमेष्ठिने अर्घं नि० ॥

लक्ष्मीधरा छंद ।

प्रतिक्रमण ये करें, सो कायोत्सर्ग ये ठाने ।
समताभाव समेत, बंदना नित मन आने ॥
स्तुति करें बनाय गाय, स्वाध्याय सु नीको ।
षट् आवश्यक क्रिया, पाप मल धोय यतीको ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं षडावश्यकगुणविभूषितायाचार्यपरमेष्ठिने अर्घं नि० ॥

ज्ञानाचार सु धार, दर्शनाचार सु धारें ।
धर चरित्राचार, तपाचारहिं विस्तारें ॥
वीर्याचार विचार पंच आचार ये धारी ।
मन वच तन कर, बार बार बंदना हमारी ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं पंचाचारगुणविभूषितायाचार्यपरमेष्ठिने अर्घं नि० ॥

दोहा ।

तीन गुप्त पालें सदा, मन अरु वचन सु काय ।
सो वसु द्रव्य सँजोयके, पूजों मन हुलशाय ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं त्रिगुप्तिगुणविभूषितायाचार्यपरमेष्ठिने अर्घं नि० ॥

सोरठा ।

दश विधि धर्म सुजान, द्वादश तप षट् क्रिया धर ।
पंचाचार प्रमाण, तीन गुप्ति छत्तीस गुण ॥ ११ ॥

ॐ ह्रीं श्रीआचार्यपरमेष्ठिने पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

श्रीउपाध्याय गुण पूजा ।

दोहा—उपाध्याय गुण वरणऊँ, पंच अरु बीस प्रमान ।
एकादश वर अंग अरु अरु चौदह पूरब जान ॥ १ ॥

सुन्दरी छंद ।

प्रथम आचारांग सु जानिये । द्वितिय सूत्रकृतांग बखानिये ॥
तीसरो स्थानांग सो अंग जू । तूर्य समवायांग अभंग जू ॥ २ ॥
पंचमो व्याख्याप्रज्ञप्ति जू । छट्ठम ज्ञातृकथा गुण युक्त जू ॥
उपासकाध्ययन सो सप्तमो । अंग अंतकृतांग सु अष्टमो ॥ ३ ॥

दोहा—नवम अनुत्तर दशम पुनः, प्रश्न व्याकरण जान ।
विपाकसूत्र सु ग्यारमो, धारें गुरु गण खान ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं एकादशांगपठनयुक्ताय उपाध्यायपरमेष्ठिने अर्घं नि० ॥

गीता छंद ।

अब चार दश पूरव, प्रथम उत्पाद नाम सु जानिये ।
अग्रायणी वीर्यानुवाद सु, अस्ति नास्ति बखानिये ॥
ज्ञानप्रवाद सु पंचमो, कर्मप्रवाद छट्ठो कहो ।
सत्यप्रवाद सु सप्तमो, आत्मप्रवाद वसु लहो ॥ ५ ॥
पुनः नाम प्रत्याख्यान अरु, विद्यानुवाद प्रमाणिये ।
कल्याणवाद महन्त पूरब, क्रियाविशाल बखानिये ॥
वर लोकबिंद मिलाय चौदह, सार ये पूर्व कहे ।
ते धरें श्रीउवझाय तिनके, पूजते शिवमग लहे ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्दशपूर्वपठनपाठनसंलग्नाय उपाध्याय परमेष्ठिने अर्घं नि० ॥

दोहा—ऐसे ग्यारह अंग अरु, चौदह पूरब जान ।
उपाध्याय जानें सुधी, सो पूजों रुचि ठान ॥ ७ ॥

श्रीसाधुगुण पूजा।

दोहा—साधु तने अठ वीस गुण, सो धारें मुनिराज।
अतीचार लागे नहीं, साधें आतम काज॥ १॥

छंद भुजंगप्रयात।

करें नाहिं हिंसा दया मन धरें जू। असत नाहिं बोलें न परधन हरें जू॥
महाशील पालें परिग्रह सु टालें। यही पंच भारी महाव्रत सम्हालें।
ॐ ह्रीं पंचमहाव्रतधारकाय साधुपरमेष्ठिने अर्घं नि०॥

त्रिभंगी छंद।

इर्यापथ सोधें, जिय न विरोधें, भवि संबोधें हितकारी।
सांचे वच भाषे, झूठ न राखें, निजरस चाखें दुखहारी॥
ठाड़े चितधारा, करें अहारा, ग्रहें निहारा क्षेपत हैं।
मल मूत्रहिं डारें, जीव निहारें, पंच समिति इमि सेवत हैं॥३॥
ॐ ह्रीं पंचसमितिसंयुक्ताय साधुपरमेष्ठिने अर्घं नि०

दोहा—स्पर्शन रसना घ्राण पुनि, चक्षु श्रवण निरधार।
पाँचों इन्द्री वश करें, ते पावें भव पार॥ ४॥
ते गुरु मेरे हिरदे बसो।
ॐ ह्रीं पंचेन्द्रियव्यापाररहिताय साधुपरमेष्ठिने अर्घं नि०॥
प्रतिक्रमण ये आदरें, धारे उत्सर्ग ध्यान।
समताभाव सो राखहीं, बन्दन करत निदान॥ ते० ५
त्रिकाल ये स्तुति करत हैं, चूकें नाहिं सुकाल।
स्वाध्याय नित चित धरें, करुणाव्रत प्रतिपाल॥ ते० ६
ॐ ह्रीं षडावश्यकयुक्ताय साधुपरमेष्ठिने अर्घं नि०॥

पद्धरी छंद।

सिर केश लुंच करते सु जान। अरु नग्नवृत्ति तिनकी प्रधान॥
अस्नान नहीं करते सु वीर। भू शयन करत ते महा धीर॥ ७॥
धोवें न दंत जिय दयावान। आहार खड़े करते सु जान॥
इक बार असन लघु करें जान। ये सात कहे गुण अति महान॥
ॐ ह्रीं शेषसप्तगुणयुक्ताय साधुपरमेष्ठिने अर्घं नि०॥
दोहा—पंच महाव्रत समिति पन, इन्द्री दंडे पंच।
षट् आवश्यक सप्त अरु, अष्ट बीस गुण संच॥ ९॥
ॐ ह्रीं साधुपरमेष्ठिने पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

जयमाला।

दोहा—पंच परमपद सार जग, ऋद्धि सिद्धि दातार।
तिन गुणकी जयमालिका, सुनो भव्य चित धार॥ १॥

पद्धरी छंद।

अरहंत सिद्ध आचार्य जान। उवझाय सिद्ध पांचों बखान॥
जगमें इन सम नहिं और कोय। देखे सम दृगकर जगत सोय॥२॥
शिवनायक शिवलायक सु आय। सो कर्म नाशि शिवलोक जाय॥
शिवमग दरशावत आप आय। जे धरें ध्यान मन वचन काय॥
इक बार सुमरि शिवलोक जाय। आगममें कथा चली बनाय॥
जल थल काननमें जपत जोय। सकट नाशें आनंद होय॥४॥
यह महामंत्र नवकार जान। या सम न जगतमें मंत्र आन॥
जगमें न मंत्र अरु यंत्र होय। इसकी सरवर दूजा न कोय॥ ५॥
रसकूप पड़ो इक पुरुष दीन। तहां चारुदत्त उपकार कीन॥
यह मंत्र सुमरि सुरलोक लीन। सो कथा जगत विख्यात कीन॥६॥

अजपुत्र कंठगत प्राण धार। यह महामंत्र कीना उचार ॥
तज देह देव उपजो सु जाय। यह चारुदत्त उपदेश पाय ॥ ७ ॥
अंजनसे अधम किया उचार। मन वच तन कर सुरपद सो धार ॥
मरकट मुनिका उपदेश पाय। कैइक भवमें केवल लहाय ॥ ८ ॥
युग नाग नागनी जरत काय। श्रीपार्श्वनाथ उपदेश पाय ॥
यह मंत्र सु फल प्रत्यक्ष दीश। धरनेन्द्र भये पद्मावतीश ॥ ९ ॥
इक सुभग ग्वाल कुल हीन जास। तिन नेम लियो मुनिराज पास ॥
जप णमोकार शुभ गति सो जाय। यह कथा कही जिन सूत्र पाय ॥
कैरिणी[1] कांदोंमें फंसी जाय। वह मंत्र सुमरि शुभ गति सो पाय ॥
इन आदि वहुत जिय तरे सोय। जिन मंत्र जपो निश्चिन्त होय ॥
याक महिमा जगमें अपार। वरणों कहंलों लहिये न पार ॥
यह चिंतामणि सम लखो भ्रात। मन चिन्ते सब काज करात ॥
यह कामधेनु सम गिनो वीर। सुरतरु समान जानो सु धीर ॥
मनवांछित फलको देनहार। सुमरो मन वच तन चित्त धार ॥ १३ ॥
यामें संशय जानो न कोय। धरके प्रतीत नित जपो जोय ॥
याते मैं भी चित धार धार। पूजों जिनचरणा बार बार ॥ १४ ॥

धत्तानंद छंद।

यह शुभ मंत्रा, जानो तंत्रा, पूजो ध्यावो भक्ति करो।
निशि दिन गुण गाऊं, सुर शिव पाऊं, पूरव कृत सब करम हरो ॥ १५ ॥

ॐ ह्रीं पंचपरमेष्ठिभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

---

१ हथिनी।

गीतिका छंद।

ये पाँच पद पैंतीस अक्षर, सार जगमें जानिये।
मन बचन काय त्रिशुद्ध करके, भक्ति पूजा ठानिये॥
याके सु फल धन धान्य सम्पत्ति, रूप गुण शुभ पाइये।
सरपद सहज ही मिलत है, वसु करम हर शिव जाइये॥ १६॥

इत्याशिर्वादः।

दोहा—मा अनर्थ घट बढ़ शबद, कोप न कीजे कोय।
लघु मति यह पूजन रची, कारण सुनिये सोय॥ १७॥

सवैया।

मान कछू कारण नहिं, माया भी न यशकी चाह,
शैलीके भायन, विचार कियो आयकें।
आगे आचारजने, संस्कृत पूजा रची,
ताके शबद अरथ, कोई समझे ना बनायके॥
भाई पंडित लोग, भाषा बड़ी पूजा रची,
ताकी है थिरता नाहिं, बाचनकी गायके।
तातें यह छोटी करी, और चित्त नाहिं धरी,
भैया इक घड़ी बाँचो, आछो मन ल्यायके॥ १८॥
शैलीके भाईजी; गुलाबचन्द्र पण्डित जान।
दुलीचन्द्र दयाचन्द्र, खूबचन्द्र जानिये।
सिंगई भगोलजाल, भाई, उमराव जान,
लीलाधर सुखानन्द, और भी प्रमानिये॥

श्रीयशोनंदाचार्यकृत 'पंचपरमेष्ठिपूजा'

आय जिनमन्दिरमें, शास्त्र सुनें प्रीति सेती,
घड़ी पहर बैठ, घरमें बखानिये।
धरमकी चरचा करें, करमकी भी आन परे,
छोड़के कुधर्म 'चन्द्र' धरम हृदय आनिये ॥ १९ ॥

दोहा—पंचमकाल करालमें, पाप भयो अति जोर।
कछु धरम रुचि राखिये, 'चन्द्र' कहत कर जोर ॥ २० ॥
बसत जबलपुर नगरमें, चलत सु निज कुल रीति।
राखत निशि वासर सदा, जैनधर्मसे प्रीति ॥ २१ ॥
संवत एक सहस्र नव, शतक सु सत्ताई से।
भादों कृष्ण त्रयोदशी, बुद्धिवार सु गणीश ॥ २२ ॥

इति पंचपरमेष्ठी विधान।

(२९) श्री सम्मेदशिखरपूजा विधान।

दोहा। सिद्धक्षेत्र तीरथ परम, हैं उत्कृष्ट सु थान ॥ शिखिर सम्मेद सदा नमौं, होय पापकी हान ॥ १ ॥ अगनित मुनि जहँ तें गए, लोक शिखिरके तीर। तिनके पद पंकज नमौं, नासै भवकी पीर ॥ २ ॥ अडिल्ल छन्द—हैं वह उज्जल क्षेत्र सु अति निर्मल सही। परम पुनीत सुठौर महा गुनकी मही ॥ सकल सिद्धि दातार महा रमनीक है। वंदौ निजसुख हेत अचल पद देत है ॥ ३ ॥ सोरठा—शिखिर सम्मेद महान। जगमैं तीर्थ

१ वि० सं० १९२७।

प्रधान है ॥ महिमा अद्भुत ज्ञान । अल्पमती मैं किम कहो ॥४॥ पद्धड़ि छन्द—सरस उन्नत क्षेत्र प्रधान है । अति सु उज्जल तीर्थ महान है । करहि भक्तिसु जे गुन गाइ कैं । वरहि शिव सुरनर सुख पाइकैं ॥ ५ ॥ अडिल्ल छन्द सुर हरि नरपति आदि सु जिन वंदन करैं । भवसागर तैं तिरे नहीं भवदधि परैं ॥ सुफल होय जौ जन्म सु जे दर्शन करैं । जन्म जन्मके पाप सकल छिनमें टरैं ॥ ६ ॥ पद्धडि छन्द—श्री तीर्थंकर जिन वर सु वीस । अरु मुनि असंख्य सब गुन नईस ॥ पहुँचे जह थे केवल सुधाम । तिन सबकौं अब मेरी प्रणाम ॥ ७ ॥ गीतका छन्द—सम्मेद गढ़ है तीर्थ भारी सबनकौ उज्जवल करै । चिर कालके जे कर्म लागे दरस ते छिनमै टरै ॥ है परम पावन पुन्य दाइक अतुल महिमा जानिए । है अनूप सरूप गिरि वर तासु पूजा ठानिए ॥८॥ दोहा । श्री सम्मेद शिखिर महा । पूजौं मनवच काय ॥ हरत चतुर्गति दुःख कौ, मन वांछित फलदाय ॥ ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखिर सिद्ध क्षेत्रेभ्यो अत्रावतरावतरसंवौषट् इत्याह्वाननम् परि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्— ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखिर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् परि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् । ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखिर सिद्ध क्षेत्रेभ्यो अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं परि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

अष्टकं ।

अडिल्ल छंद-क्षीरोदधि सम नीर सु उज्जल लीजिये । कनक कलस मैं भरकें धारा दीजिये ॥ पूजौं शिखिर सम्मेद सुमन वचकाय जू । नरकादिक दुःख टरैं अचल पद पाय जू ॥ ॐ ह्रीं श्री सम्मे-

दशिखिर सिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥ पयसौं घिस मलयागिर चन्दन ल्याइये। केसर आदि कपूर सुगंध मिलाइये ॥ पूजौ शिखिर०। ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखिर सिद्धक्षेत्रेभ्यो संसारताप विनासनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥ तंदुल धवल सु उज्जवल खासे धोयकें। हेम वरनके थार भरौं शुचि होय कैं ॥ पूजौ शिखिर०। ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखिर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्ताय अक्षतं निर्वपमीति स्वाहा ॥३॥ फूल सुगंध सु ल्याय हरष सौं आन चढ़ायौ। रोग शोक मिट जाय मदन सब दूर पलायौ ॥ पूजौ शिखिर०। ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखिर सिद्धक्षेत्रेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥ षट् रस कर नैवेद्य कनक थारी भर ल्यायो ॥ क्षुधा निवारण हेतु सु पूजौ मन हरषायो ॥ पूजौ शिखिर० ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखिर सिद्धक्षेत्रेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥ लेकर मणिमय दीप सुज्योति उद्योत हो। पूजत होत स्वज्ञान मोह तम नाश हो ॥ पूजौ शिखिर०। ॐ ह्रीं श्रीसम्मेदशिखिर सिद्धक्षेत्रेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥६॥ दस विधि धूप अनूप अग्नि मैं खेवहूं। अष्ट कर्मको नाश होत सुख पावहूं ॥ पूजौ शिखिर०। ॐ ह्रीं श्रीसम्मेदशिखिर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूप निर्वपामीति स्वाहा ॥७॥ मेला लौंग सुपारी श्रीफल ल्याइये। फल चढ़ाय मन वांछित फल सु पाइये ॥ पूजौ शिखिर०। ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखिर सिद्धक्षेत्रेभ्यो मोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥८॥ जल गंधाक्षित फूल सु नेवज लीजिये। दीप धूप

फल ले अर्घ चढ़ाइये ॥ पूजौ शिखिर० । ॐ ह्रीं श्री सम्मेद-शिखिर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।।९।।

पद्धडी छन्द—चौवीस तीर्थंकर हैं जिनेन्द्र । अरु हैं असंख्य बहुते मुनेन्द्र ॥ तिनकौं करजोर करौं प्रणाम । तिनकों पूजो तज सकल काम ॥ ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखिर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्ताय अर्घं । ढार योगीरायसा—श्री सम्मेदशिखिर गिर उन्नत शोभा अधिक प्रमानों । विंशति तिहपर कूट मनोहर अद्भूत रचना जानौ ॥ श्री तीर्थंकर बीस तहांते शिवपुर पहुंचे जाई । तिनके पद पंकज युग पूजौं प्रत्येक अर्घ चढाई । ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥ प्रथम सिद्धवर कूट मनोहर आनंद मंगलदाई । अजित प्रभु जंह ते शिव पहुंचे पूजों मनवचकाई ॥ कोड़ि जु अस्सी एक अर्व मुनि चौवन लाख सुगाई । कर्म काट निर्वाण पधारे तिनकौ अर्घ चढ़ाई । ॐ ह्रीं श्री सम्मेद-शिखर सिद्धकूटते श्री अजितनाथ जिनेन्द्रादि एक अर्व अस्सी कोड़ि चौवन लाख मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्व-पामीति स्वाहा ॥२॥ धवल कूट सो नाम दूसरो है सबकों सुख-दाई । संभव प्रभुसो मुक्ति पधारे पाप तिमिर मिटजाई । धवलदत्त हैं आदि मुनीश्वर नव कोड़ाकोड़ि जानौं । लक्ष बहत्तर सहस बयालिस पंच शतक रिष मानौं ॥ कर्म नाश कर अमर पुरी गए बंदौं सीस नवाई । तिनके पद युग जजौं भावसौं हरष हरष चितलाई ॥ ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखिर धवल कूटतें संभवनाथ जिनेन्द्रादि मुनि नव कोड़ाकोड़ि बहत्तर लाख ब्यालिस हजार पांचसे मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥३॥ चौपाई—आनंद कूट महा सुख-

द य । प्रभु अभिनन्दन शिवपुर जाय। कोड़ाकोड़ि बहत्तर जानौं। सत्तर कोड़ि लाख छत्तीस मानौं ॥ सहस बयालीस शतक ज़ु सांत कहें। जिनागम मैं इस भांत ऐरिय कर्म काट शिव गये, तिनके पद युग पूजत भये ॥ ॐ ह्रीं श्री आनन्दकूटतें अभिनन्दननाथ जिनेन्द्रादि मुनि बहत्तर कोड़ाकोड़ि अरु सत्तर कोड़ि छत्तीस लाख ब्यालीस हजार सातसै मुनि सिद्धपद प्राप्ताय अर्घं निर्व-पमीति स्वाहा ॥ ४ ॥ अडिल्ल छन्द—अवचल चौथौ कूट महा सुख धाम जी। जहं ते सुमति जिनेश गये निर्वाण-जी ॥ कोड़ाकोड़ि एक मुनीश्वर जानिये। कोडि चौरासी लाख बहत्तर मानिये ॥ सहस इक्यासी और सातसे गाईये। कर्म काट शिव गये तिन्हे सिर नाईये ॥ सो थानिक मै पूजौ मन वच काय जू। पाप दूर हो जाय अचल पद पायजू ॥ ॐ ह्रीं श्री अवचल कूटतै श्री सुमति जिनेन्द्रादि मुनि एक कोड़ाकोड़ि चौरासी कोड़ि बहत्तर लाख इक्यासी हजार सातसै मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥ ५ ॥ अडिल्ल छन्द—मोहन कूट महान परम सुंदर कहौ। पद्मप्रभु जिनराय जहां शिव पद लहौ ॥ कोड़ि निन्यानवै लाख सतासी जानिये। सहस तेतालिस और मुनीश्वर मानिये ॥ सप्त सैकड़ा सत्तर ऊपर बीस जू। कहैं जवाहरदास सुदोय कर जोरकै। अविनासी पद देउ कर्म न खोयकै ॥ ॐ ह्रीं श्री मोहनकूटतें श्री पद्मप्रभु मुनि निन्यानवे कोड़ि सतासी लाख तेतालिस हजार सातसै संताइन मुनि निर्वाण पद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥६॥ सोरठा—कूट प्रभात महान। सुंदर जग मणि मोहनौ। श्री सुपार्श्व भगवान, मुक्ति गये भंव

नाश कर । कोड़ाकोड़ी उनंचास कोड़ि चौरासी जानिये । लाख बहत्तर जान सात सहस अरु सात सै ॥ और कहे व्यालीस जेह तें मुनि मुक्ति गये । तिनकौं नमो नित सीस दास जवाहर जोरकर ॥ ॐ ह्रीं प्रभास कूटतें श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्रादि मुनि उनंचास कोड़ाकोड़ी बहत्तर लाख सात हजार सातसै व्यालीस मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घ ॥७॥ दोहा— पावन परम उतंग हैं । ललित कूट है नाम ॥ चंद्रप्रभु मुक्ते गये, वंदौ आठौ जांम ॥ नवसै अरु वसु जानियौ । चौरासी रिषि मान । कौड़ि बहत्तर रिषि कहे । असी लाख परवान । सहस चौरासी पंच शत । पचवन कहे मुनीश । वसु कर्म कौ नाशकर । पायो सुखको कंद ॥ ललित कूट तै शिव गये । वंदौ सीस नवाय ॥ तिनपद पूजौ भाव सौ, । निज हित अर्घ चढ़ाय ॥ ॐ ह्रीं ललितकूट तैं श्री चन्द्रप्रभु जिनेन्द्रादि मुनि नवसै चौरासी अर्व बहत्तर कोड़ अस्सीलाख चौरासी हजार पांचसै पचवन मुनि सिद्धपद प्राप्ताय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ॥८॥ पद्धड़िछन्द— सुवरनभद्र सो कूट जान । जहं पुष्पदंतको मुक्त थान ॥ मुनि कोड़ाकोड़ी कहै जु भाख । अरु कहे निन्यानवै लाख चार ॥१॥ सौ सात सतक मुनि कहे सात । रिषि असी और कहे विख्यात ॥ मुनि मुक्ति गये वसु कर्म काट । वंदौ कर जोर नवाय माथ ॥२॥ ॐ ह्रीं श्री सुप्रभकूटतै पुष्पदंत जिनन्द्रादि मुनि एक कोड़ाकोड़ी निन्यानवै लाख सात हजार चारसै अस्सीमुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घ ॥ ९ ॥ सुंदरी छंद—सुभग विद्युतकूट सु जानिये । परम अद्भुतता परमानिये ॥ गये शिवपुर शीतलनाथजी ।

तम हुं तिन पंद करी धरि माथजी ॥ मुनिजु कोड़ाकोड़ी अष्टहु। मुनि जो कोड़ी ब्यालिस जानिये ॥ कहे और जु लाख बत्तीस जू। सहस ब्यालिस कहे यतीश जू ॥ और तहंसे नौसै पांच सुजानिये। गये मुनि शिवपुरकों और जु मानिये ॥ करहि पूजा जे मनलायकें। धरहि जन्मन भवमें आयकें ॥ ॐ ह्रीं सुभग विद्युतकूटतै श्री शीतलनाथ जिनेंद्रादि मुनि अष्ट कोड़ाकोड़ी ब्यालीस लाख बत्तीस हजार नौसै पांच मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घ ॥ १० ॥ ढार योगीरासा—कूटजु संकुल परम मनोहर श्रीयांस जिनराई। कर्म नाश कर अमरपुरी गये, वंदो शीस नवाई ॥ कोड़ा कोड़ जु है क्ष्यानवै क्ष्यानवै, कोड़ प्रमं नौ ॥ लाख क्ष्यानवै साढे नवसै, इकसठ मुनीश्वर जानो। ताऊपर ब्यालीस कहे हैं श्री मुनिके गुन गावै। त्रिविध योग कर जो कोई पूजै सहजानंद पद पावै ॥ ॐ ह्रीं संकुल कूटतैं श्रीयांसनाथ जिनेन्द्रादि मुनि क्ष्यानवै कोड़ाकोड़ी क्ष्यानवै क्रोड़ क्ष्यानवै लाख साढेनौ हजार ब्यालीस मुनि सिद्ध पद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घ ॥११॥ **कुसुमलता छंद**—श्री मुनि संकुल कूट परम सुंदर सुखदाई। विमलनाथ भगवान जहां पंचम गति पाई ॥ सात शतक मुनि और ब्यालिस जानिये। सत्तर कोड़ सात लाख हजार छै मानिये ॥ **दोहा**—अष्ट कर्मको नाश कर, मुनि अष्टम क्षिति पाय ॥ तिनको मैं वंदन करों. जन्ममरण दुख जाय ॥ ॐ ह्रीं श्री संकुलकूटतैं श्री विमलनाथ जिनेंद्रादि मुनि सत्तर क्रोड़ सात लाख छैः हजार सातसै ब्यालीस मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घ ॥१२॥ **अड्लि**—कूट स्वयंप्रभु नाम परम सुंदर कहो। प्रभु अनंत जिननाथ जहां शिवपद कहो ॥ मुनि

जुं कोड़ाकोड़ी क्यानवैं जानियै। सत्तर कोड़ जु सत्तर लाख वखा-नियै॥ सत्तर सहस जु और सातसे गाइयै। मुक्ति गये मुनि तिन पद शीस नवाईये॥ कहे जवाहर दास सुनी मन लायकें। गिरवरकों नित पूजौ मन हरपायकै॥ ॐ ह्रीं स्वयंभू कूटतें श्री अनंतनाथ जिनेंद्रादि मुनि क्यानवे कोड़ाकोड़ी सत्तर लाख सात हजार सातसे मुनि सिद्धपद प्राताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥१३॥ चौपाई—कूट सुदत्त महा शुभ जानों। श्री जिनधर्म नाथकों थानों॥ मुनि जु कोड़ाकोड़ उन तीस। और कहे ऋषि कोड़ उनीस॥ लाख जु नव्वे नौ सहस सु जानों। सात शतक पंचा नव मानों॥ मोक्ष गये बहु कर्मन चूर। दिवस रैन तुमही भरपूर॥ ॐ ह्रीं श्री सुदत्त कूटतें श्री धर्मनाथ जिनेन्द्रादि मुनि उनतीस कोड़ाकोड़ी उनीस कोड़ नव्वे लाख नौ हजार सातसै पंचानवे मुनि सिद्धपद प्राताय सिद्ध-क्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ १४ ॥ है प्रभासी कूट सुंदर अत पवित्र सो जानीये। सांतिनाथ जिनेन्द्र जहांते परम धाम प्रवानिये। ॐ ह्रीं प्रभास कूटते श्री शांतिनाथ जिनेन्द्रादि मुनि नौ कोड़ाकोड़ी नौ लाख नौ हजार नौसे निन्यानवे मुनि सिद्धपद प्रातःय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥१५॥ गीतका छन्द—ज्ञानधर शुभ कूट सुंदर परम मनको मोहनो। जहते श्री प्रभु कुंथु स्वामी गये शिवपुरको गनो॥ कोड़ाकोड़ी क्यानवे मुनि कोड़ि क्यानवे जानिये। लाख बत्तीस सहस क्यानवे अरु सौ सात प्रमानिये॥ दोहा—और कहे क्यालीस, सुमरो हिये मझार। जिनवर पूजौं भाव सौं, कर भवदधि तै पार॥ ॐ ह्रीं ज्ञानधरकूट तैं श्रीकुंथुनाथ स्वामी और क्यानवे कोड़ाकोड़ी मुनि क्यावने कोड़ि बत्तीस लाख क्यानवे हजार

अरु सातसौ ब्यालीस मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्ध क्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥ १६ ॥ दोहा–कूट जु नाटक परम शुभ, शोभा अपरंपार। जहते अरह जिनेन्द्रजी, पहुँचे मुक्त मझार। कोड़ि निन्यानवें जानि मुनि, लाख निन्यानवे और। कहे सहस निन्यानवे, वंदौं कर जुग जोर ॥ अष्ट कर्मको नाश कर, अविनाशी पद पाय। ते गुरु मम हृदये वसौ, भवदधि पार लगाय ॥ ॐ ह्रीं नाटक कूटतें श्री अरहनाथ जिनेन्द्रादि मुनि निन्यानवै कोड़ि निन्यानवै लाख निन्यानवे हजार मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्ध क्षेत्रेभ्यो अर्घं।१७। आड़िल्ल छन्द–कूट संवल परम पवित्र जू ॥ गये शिवपुर मल्लि जिनेश जू ॥ मुनि जु क्ष्यानवै कोड़ि प्रमानिये, पद जिनेश्वर हृदये मानिये ॥ ॐ ह्रीं संवल कूटतैं श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्रादि क्ष्यानवै कोड़ाकोड़ी मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं॥१८॥ ढार परमादीकी चालमें–मुनिसुव्रत जिनराज सदा आनंदके दाई। सुंदर निर्जर कूट ज्हां तैं शिवपुर पाई ॥ निन्यानवे कोड़ा कोड़ कहे मुनि कोड़ संताव्वन। नो लाख जोर मुनेन्द्र कहे नौसे निन्यावन। सोरठा–कर्मनाश ऋषिराज पंचमगतिके सुख लहे। तारन तरन जिहाज मो दुख दूर करौ सकल ॥ ॐ ह्रीं श्री निर्जर कूटतें श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेंद्रादि मुनि निन्यानवे कोड़ा कोड़ी संतावन कोड़ नौ लाख नौ शतक निन्यानवे मुनि सिद्धपद प्राप्ताय अर्घं ॥१९॥ ढारजोगरासा–एह मित्रधर कूट मनोहर सुंदर अतिछवछाई। श्री नमि जिनेश्वर मुक्ति जहांतैं शिवपुर पहुँचे जाई ॥ नौसे कोड़ा कोड़ी मुनीश्वर एक अर्व ऋषि जानौं। लाख सैतालिस सात अब नौसे ब्यालिस मानौ। दोहा–वसु कर्मनको

नाशकर, अविनाशी पद पाय। पूजौ चरन सरोज ज्यों, मनवांछित फल पाय ॥ ॐ ह्रीं श्री मित्रधर कूटतें श्री नमिनाथ जिनेन्द्रादि मुनि नौसे कोड़ाकोड़ी एक अर्व सैंतालिस लाख सात हजार नौसे व्यालिस मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्ध क्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥ २० ॥ **दोहा**–सुवर्ण भद्र जु कूटपैं, श्री प्रभु पारसनाथ । जहंतें शिवपुरको गये, नमो जोडि जुग हाथ ॥ ॐ ह्रीं सुवर्णभद्र कूटतें श्री पार्श्वनाथ स्वामी सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥२१॥ याविधि वीस जिनेन्द्रके, वीसौ शिखिर महान ॥ और असंख्य मुनि सहजही । पहुंचे शिवपुर थान । ॐ ह्रीं श्री वीस कूट सहित अनंत मुनि सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥२२॥ **ढार कातिककी**–प्राणी आदीश्वर महाराजजी, अष्टापद शिव थान हो । वासपूज जिनराजजी चंपापुर शिवपद जान हो ॥ प्राणी नेम प्रभु गिरनारतें, पावापुर श्री महावीर हो ॥ प्राणी पूजौ अर्घ चढाय कैं, इह नाशैं भयभीत हो॥ प्राणी पूजौ मनवच कायके ॥ ॐ ह्रीं श्री ऋषभनाथ कैलाश गिरते श्री महावीरस्वामी पावापुर तैं श्री वासुपुज्ज चंपापुर तैं नेमिनाथ गिरनारतैं सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥ २३ ॥ **दोहा**–सिद्धक्षेत्र जे और हैं, भरत क्षेत्रके मांहि ॥ और जु अतिशय क्षेत्र हैं, कहे जिनागम मांहि । तिनको नाम जु लेतही, पाप दूर हो जाय । ते सब पूजौ अर्घ लै, भव भवकूं सुखदाय । ॐ ह्रीं भरतक्षेत्र अतिशय क्षेत्रेभ्यो अर्घं । **सोरठा**–दीप अढ़ाई मेरु सिद्ध क्षेत्र जे और है । पूजौ अर्घ चढ़ाय भव भवके अघ नाश है ॥ ॐ ह्रीं अढ़ाई द्वीप सम्बंधी सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥२४॥

अथ जयमाल।

चौपाई—मन मोहन तीरथ शुभ जानौ। पावन परम सुक्षेत्र प्रमानौ॥ उनतीस शिखिर अनूपम सोहै। देखत ताहि सुरासुर मोहे। **दोहा**—तीरथ परम सुहावनौ, शिखिर सम्मेद विशाल॥ कहत अल्प बुध उक्तसो, सुखदायक जयमाल॥ २॥ **चौपाई**—सिद्ध क्षेत्र तीरथ सुखदाई। वंदत पाप दूर होजाई। शिखिर शीस पर कूट मनोग। कहे वीस अतिशय संयोग॥ ३॥ प्रथम सिद्ध शुभ कूट सुनाम। अजितनाथ कौं मुक्ति सुधाम॥ कूट तनौ दर्शन फल कहौ। कोड़ि बत्तीस उपास फल लहौ॥ ४॥ दूजो धवल कूट है नाम। शंभव प्रभु जहँते निर्वाण॥ कूट दरश फल प्रोषध मानौ। लाख ब्यालिस कहै बखानौ॥ ५॥ आनंद कूट महा सुखदाई। जहं तैं अभिनन्दन शिव जाई॥ कुट तनौ वंदन इम जानौ। लाख उपास तनौ फल मानौ॥ ६॥ अवचल कूट महासुख वास। मुक्ति गये जंह सुमति जिनेश॥ कूट भाव धर पूजे कोई। एक क्रोड प्रोषध फल होई॥ ७॥ मोहन कूट मनोहर जान। पद्म प्रभु जंह तैं निर्वाण॥ कूट पुंन्य फल लहै सुजान। कोड़ उपास कहै भगवान॥ ८॥ मन मोहन शुभ कुट प्रभासा। मुक्ति गये जंहतै श्रीयांसा॥ पूजै कूट महा फल सोई। कोड़ बत्तीस उपवास फल होई॥ ९॥ चन्द्र प्रभु कौ मुक्ति सु धामा। परम विशाल ललित घट नामा॥ दर्शन कूट तनौ इम जानौ। प्रोषध सोला लाख बखानौ॥ १०॥ सुप्रभ कूट महा सुखदाई। जंहतै पुंप्पदंत शिव जाई॥ पूजै

कूट महा फल होय । कोड़ उपास कही जिनदेव ॥ ११ ॥ सो विद्युतवर कूट महान । मोक्ष गये शीतल धर ध्यान ॥ पुंजे त्रिविध योग कर कोई । कोड़ उपास तनौ फल होई ॥ १२ ॥ संकुल कूट महा शुभ जनौ । जंहतैं श्रीश्रांस भगवानौ ॥ कूट तनौ अब दर्शन सुनौ । कोड़ उपास जिनेश्वर भनौ ॥ १३ ॥ संकुल कूट परम सुखदाई । विमल जिनेश जहां शिव जाई ॥ मनवच दर्श करें जो कोई । कोड़ उपास तनौ फल होई ॥ १४ ॥ कूट स्वयं-प्रम सुभगलु ठाम । गये अनंत अमरपुर धाम ॥ एही कूट कोई दर्शन करें । कोड़ उपास तनौं फल धरें ॥ १५ ॥ है सुदत्तवर कूट महान । जंहतैं धर्मनाथ निर्वाण ॥ परम विशाल कूट है सोई, कोड़ उपवास दर्श फल होई ॥ १६ ॥ परम विशाल कूट शुभ कही । शांति प्रभु जंहतैं शिव लही ॥ कूट तनौ दर्शन है सोई । एक कोड़ प्रोपध फल होई ॥ १७ ॥ परम ज्ञानधर है शुभ कूट । शिवपुर कुंथु गये अघ छूट ॥ इनकौ पूंजे दोई कर जोर । फल उपवास कही इक कोड़ ॥ १८ ॥ नाटक कूट महा शुभ जान । जंहतैं अरह मोक्ष भगवान ॥ दर्शन करें कूटको जोई। क्ष्यानवे कोड़ उपास फल होई ॥ १९ ॥ संबलकूट महि जिनराय । जंहतैं मोक्ष गये निज काय ॥ कुट दरश फल कही जिनेश । कोड़ि एक प्रोपध फल वेस ॥ २० ॥ निर्जर कूट महा सुखदाई । मुनिसुव्रत जंह तें शिव जाई ॥ कूट तनौ दर्शन है सोई । एक कोड़ प्रोपध फल होई ॥ २१ ॥ कूट मित्रधरतें नमि मोक्ष । पूजत आय सुरा-सुर जक्ष ॥ कूट तनौ फल है सुखदाई । कोड़ उपास कही जिनराई

॥२२॥ श्रीप्रभु पार्श्वनाथ जिनराय। दुरगति तै धूरै महाराज ॥ सुवर्णभद्र कूट कौ नाम। जंह तैं मोक्ष गये जिन धाम ॥ २३ ॥ तीन लोक हित करत अनूप। मंगल मय जगमैं चिद्रुप ॥ चिंतामणी स्वर वृक्ष समान। रिद्ध सिद्ध मंगल सुख दान ॥ २४ ॥ पार्श्व और काम जो धैन। नाना विध आनंद कौं देन॥ व्याध विकार जहां सव भाज। मन चिंते पूरे सव काज ॥ २५ ॥ भवःधि रोग विनाशक होई। जो पद जगमैं और न कोई ॥ निर्मल परम धाम उत्कृष्ट। वन्दत पाप भजै अरु दुष्ट ॥२६॥ जो नर ध्यावत पुन्य कमाय। जश गावत ऐ कर्म नशाय ॥ करै अनादि कर्म के पाप। भजै सकल छिन में संताप ॥२७॥ सुर नर इन्द्र फणिन्द्र जु सेवै। और खगेन्द्र महेन्द्र जु नमै ॥ नित स्वर स्वरो करै उच्चार। नाचत गावत विविध प्रकार ॥ २८ ॥ बहु विध भक्त करै मन लाय। विविध प्रकार वाजित्र बजाय ।२९॥ द्रुम द्रुम द्रुम वाजै मृदंग। घन घन घट वाजै मुह चंग ॥ झन झन झनिया करै उच्चार। सरसारंगी धुन उच्चार॥३०॥ मुरली वीन वजै घन मिष्टं। पर हांतुरी स्वरान्पत पुष्ट ॥ नित स्वर्गन थित गावत सार। स्वर्गन नाचत बहुत प्रकार ॥ ३१ ॥ झननन झननन नूपुर तान। तननन तननन टोरत तान। ता थेई थेई थेई थेई थेई चाल। सुर नाचत निज नावत भाल ॥३२॥ गावत नाचत नाना रंग। लेत जहां शुभ आनंद संग ॥ नित प्रति सुर जहां वंदै जाय ॥ नाना विध मंगल कौं गाय ॥ ३३ ॥ आनंद धुन सुन मोर जु सोय। प्रापत ब्रपकी अत ही होय ॥

तातैं हमकूं है सुख सोई । गिर वंदन कर घर शुभ दोई ॥३४॥ मारुत मंद सुगंध चलेय । गंधोदक तहां बरषै सोय ॥ जियकी जात विरोध न होई । गिरवर वंदै कर घर दोई । ॥ ३५ । ज्ञान चरित तपसा धन होई । निज अनुभौकी ध्यान धरेय ॥ शिव मंदिरको धारै सोई । गिरवर वंदै कर घर दोई ॥३६॥ जो भव वन्दै एक जुवार । नरक निगोद पशु गति टार ॥ सुर शिवपदकूं पावै सोय । गिरवर वंदै कर घर दोय ॥३७॥ ताकी महिमा अगम अपार । गणधर कबहूं न पावै पार ॥ तुम अद्भुत मैं मति कर हीन । कही भक्त वसु केवल लीन ॥३८॥ घत्ता—श्री सिद्ध क्षेत्र अति सुख देत ॥ सेवतु नाशै विघ्न हरा ॥ अरु कर्म विनाशै सुःख पयासै केवल भासै सुःख करा ॥ ३९ ॥ ॐ ह्रीं श्री सम्मेदशिखिर सिद्धपद प्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो महार्घं । दोहा—शिखिरसम्मेद पूजो सदा । मनवच तन कर नारि ॥ सुर शिव के जे फल लहै । कहते दास नवारी॥४०॥

इत्यादि आशीर्वादः ।

चतुर्थ खंड।

(१) शान्ति पाठः।

(शान्तिपाठ बोलते समय दोनों हाथोंसे पुष्पवृष्टि करनी चाहिये।)

दोधकवृत्तम्।

शान्तिजिनं शशिनिर्म्मलवक्त्रं शीलगुणव्रतसंयमपात्रम्।
अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं नौमि जिनोत्तममम्बुजनेत्रम् ॥ १ ॥
पञ्चममीप्सितचक्रधराणां पूजितमिन्द्रनरेन्द्रगणैश्च।
शान्तिकरं गणशान्तिमभीप्सुः षोडशतीर्थकरं प्रणमामि ॥ २ ॥
दिव्यतरुः सुरपुष्पसुवृष्टिर्दुन्दुभिरासनयोजनघोषौ।
आतपवारणचामरयुग्मे यस्य विभाति च मण्डलतेजः ॥ ३ ॥
तं जगदर्चितशान्तिजिनेन्द्रं शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि।
सर्वगणाय तु यच्छतु शान्तिं मह्यमरं पठते परमां च ॥ ४ ॥

वसन्ततिलका।

येऽभ्यर्चिता मुकुटकुण्डलहाररत्नैःशक्रादिभिः सुरगणैःस्तुतपादपद्माः।
ते मे जिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपास्तीर्थकराःसततशान्तिकरा भवन्तु॥५॥

इन्द्रवज्रा।

संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्रसामान्यतपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः ॥६॥

---

१ अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चासनं च ॥ भामण्डलं दुन्दुभिरातपत्रं सत्प्रातिहार्य्याणि जिनेश्वराणाम् ॥ (यह श्लोक क्षेपक है, इसे बोलना न चाहिये।)

स्रग्धरावृत्तम् ।

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः ।
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम् ॥
दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां मास्मभूज्जीवलोके ।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि ॥ ७ ॥

अनुष्टुप ।

प्रध्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञानभास्कराः ।
कुर्वन्तु जगतः शान्ति वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥८॥

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः ।

अथेष्ट प्रार्थना ।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुति. सङ्गतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे
सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥९॥

आर्यावृत्तम् ।

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं पदद्वये लीनम् ।
तिष्टतु जिनेन्द्र तावद्यावन्निर्वाणसम्प्राप्तिः ॥१०॥

आर्या ।

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं ।
तं खमउ णाणदेव य मज्झवि दुःक्खक्खयं दितु ॥११॥
दुःक्खखओ कम्मखओ समाहिमरणं च बोहिलाहो य ।
मम होउ जगतबंधव तव जिणवर चरणसरणेण ॥१२॥

(परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्).

(२) विसर्जन पाठ ।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्तं न कृतं मया ।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वर ॥ १ ॥
आव्हानं नैवं जानामि नैव जानामि पूजनम् ।
विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥ २ ॥
मंत्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनं तथैव च ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥ ३ ॥
आहूता ये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रमम् ।
ते मयाभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यान्तु यथास्थितिम् ॥ ४ ॥

(३) भाषास्तुतिपाठ ।

तुम तरणतारण भवनिवारण, भविकमन आनंदनो ।
श्रीनाभिनंदन जगतवंदन, आदिनाथ निरंजनो ॥ १ ॥
तुम आदिनाथ अनादि सेऊं, सेय पद पूजा करूं ।
कैलासगिरिपर रिषभजिनवर, पदकमल हिरदै धरूं ॥ २ ॥
तुम अजितनाथ अजित जीते, अष्टकर्म महाबली ।
यह विरद सुनकर शरन आयो, कृपा कीजे नाथजी ॥ ३ ॥
तुम चंद्रवदन सु चन्द्रलच्छन, चंद्रपुरि परमेश्वरो ।
महासेननंदन, जगतवंदन; चद्रनाथ जिनेश्वरो ॥ ४ ॥
तुम शांति पाँच कल्याण पूजों; शुद्ध मनवचकायजू ।
दुर्भिक्ष चोरी पापनाशन, विघन जाय पलायजू ॥ ५ ॥
[illegible] है विवेकसागर, [illegible]दिकारनो ।

श्रीनेमिनाथ पवित्र दिनकर, पापतिमिर विनाशनो ॥ ६ ॥
जिन तजी राजुल राजकन्या, कामसैन्या वश करी ।
चारित्ररथ चढ़ि भये दूल्ह, जाय शिवरमणी वरी ॥ ७ ॥
कंदर्प दर्प सुसर्पलञ्छन, कमठ शठ निर्मद कियो ।
अश्वसेननन्दन जगतवंदन, सकलसंघ मंगल कियो ॥ ८ ॥
जिन धरी बालकपणे दीक्षा, कमठमान विदारके ।
श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्रके पद, मैं नमों शिरधारके ॥ ९ ॥
तुम कर्मघाता मोक्षदाता, दीन जानि दया करो ॥
सिद्धार्थनंदन जगतवंदन, महावीर जिनेश्वरो ॥ १० ॥
छत्र तीन सोहैं सुर नर मोहैं, वीनती अवधारिये ।
कर जोड़ि सेवक वीनवै प्रभु, आवागमन निवारिये ॥११॥
अब होउ भव भव स्वामी मेरे, मैं सदा सेवक रहों ।
कर जोड़ यो वरदान मांगो, मोक्षफल जावत लहों ॥ १२ ॥
जो एकमाहिं एक राजै, एकमाहिं अनेकनो ।
इक अनेककी नहीं संख्या, नमों सिद्ध निरंजनो ॥ १३ ॥

चौपाई ।

मैं तुम चरणकमलगुणगाय । बहुविध भक्ति करी मन लाय ॥
जनम जनम प्रभु पाऊं तोहि । यह सेवाफल दीजे मोहि ॥ १४ ॥
कृपा तिहारी ऐसी होय । जामन मरन मिटावो मोय ।
बारबार मैं विनती करूं ।तुम सेयें भवसागर तरूं ॥ १५ ॥
नाम लेत सब दुख मिट जाय । तुम दर्शन देख्या प्रभु आय ।
तुम हो प्रभु देवनके देव । मैं तो करूं चरण तव सेव ॥ १६ ॥

मैं आयो पूजनके काज । मेरो जन्म सफल भयो आज ।
पूजा करकैं नवाऊं शीस । मुझ अपराध क्षमहु जगदीस ॥ १७ ॥

दोहा ।

सुख देना दुख मेटना, यही तुम्हारी वान ।
मो गरीबकी वीनती, सुन लीज्यो भगवान ॥ १८ ॥
दर्शन करते देवका, आदि मध्य अवसान ।
स्वर्गनके सुख भोगकर, पावै मोक्ष निदान ॥ १९ ॥
जैसी महिमा तुमविषे, और धरै नहिं कोय ।
जो सूरजमें ज्योत है, तारनमें नहिं सोय ॥ २० ॥
नाथ तिहारे नामतैं, अघ छिनमाहिं पलाय ।
ज्यों दिनकर परकाशतैं, अंधकार विनशाय ॥ २१ ॥
बहुत प्रशंसा क्या करूं. मैं प्रभु बहुत अजान ।
पूजाविधि जानूं नहीं, शरन राखि भगवान ॥ २२ ॥

इति भाष स्तुतिपाठ समाप्त ।

(४) श्रीजिनसहस्रनामस्तोत्रम् ।

(भगवज्जिनसेनाचार्यकृतं)

प्रसिद्धाष्टसहस्रेद्धलक्षणं त्वां गिरां पतिम् । नाम्नामष्टसहस्रेण तोष्टुमोऽभीष्टसिद्धये ॥ १ ॥

तद्यथा,—

श्रीमान्स्वयंभूर्वृषभः शंभवः शंभुरात्मभूः । स्वयंप्रभः प्रभुर्भोक्ता विश्वभूरपुनर्भवः ॥ २ ॥ विश्वात्मा विश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षरः ।

विश्वविद्विश्वविद्येशो विश्वयोनिरनीश्वरः ॥ ३ ॥ विश्वदृश्वा विभु-र्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः । विश्वव्याप विधिर्वेधाः शाश्वतो विश्व-तोमुखः ॥ ४ ॥ विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः । विश्व-दृग्विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः ॥ ५ ॥ जिनो जिष्णुरमेयात्मा विश्वरीशो जगत्पतिः । अनन्तचिदचिन्त्यात्मा भव्यबन्धुरबन्धनः ॥ ६ ॥ युगादिपुरुषो ब्रह्मा पञ्चब्रह्ममयः शिवः । परः परतरः सूक्ष्म परमेष्ठी सनातनः ॥ ७ ॥ स्वयंज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्मयो-निरयोनिजः । मोहारीविजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वजः ॥ ८ ॥ प्रशान्तारिरनन्तात्मा योगी योगीश्वरार्चितः । ब्रह्मविद्ब्रह्मतत्त्वज्ञो ब्रह्मोद्याविद्यतीश्वरः ॥ ९ ॥ सिद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थः सिद्धशासनः । सिद्धः सिद्धान्तविद्ध्येयः सिद्धसाध्यो जगद्धितः ॥ १० ॥ सहिष्णुरच्युतोऽनन्तः प्रभविष्णुर्भवोद्भवः । प्रभूष्णुरजरोऽजर्यो भ्रा-जिष्णुर्धीश्वरोऽव्ययः ॥ ११ ॥ विभावसुरसंभूष्णुः स्वयंभूष्णुः पुरा-तनः । परमात्मा परंज्योतिस्त्रिजगत्परमेश्वरः ॥ १२ ॥

इति श्रीमदादिशतम् ॥ १ ॥

दिव्यभाषापतिर्दिव्यः पूतवाक्पूतशासनः । पूतात्मा परमज्यो-तिर्धर्माध्यक्षो दमीश्वरः ॥ १ ॥ श्रीपतिर्भगवानर्हन्नरजा विरजाः शुचिः । तीर्थकृत्केवलीशानः पूजार्हः स्नातकोऽमलः ॥ २ ॥ अन-न्तदीप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयंबुद्धः प्रजापतिः । मुक्तः शक्तो निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वरः ॥ ३ ॥ निरञ्जनो जगज्ज्योतिर्निरुक्तोक्तिर्निरामयः । अचलस्थितिरक्षोभ्यः कूटस्थः स्थाणुरक्षयः ॥ ४ ॥ अग्रणीर्ग्रामणी-र्नेता प्रणेता न्यायशास्त्रकृत् । शास्ता धर्मपतिर्धर्म्यो धर्मात्मा धर्म-

तीर्थकृत् ॥ ५ ॥ वृषध्वजो वृषाधीशो वृषकेतुर्वृषायुधः। वृषो वृषपतिर्भर्ता वृषभाङ्को वृषोद्भवः ॥६॥ हिरण्यनाभिर्भूतात्मा भूतभृद्भूत-भावनः। प्रभवो विभवो भास्वान् भवो भावो भवान्तकः ॥ ७ ॥ हिरण्यगर्भः श्रीगर्भः प्रभूतविभवोद्भवः। स्वयंप्रभुः प्रभूतात्मा भूतनाथो जगत्प्रभुः। सर्वादिः सर्वदृक् सार्वः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः। सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्ववित्सर्वलोकजित् ॥ ९ ॥ सुगतिः सुश्रुतः सुश्रुक् सुवाक् सूरिर्बहुश्रुतः। विश्रुतो विश्वतः पादो विश्वशीर्षः शुचिश्रवाः ॥ १० ॥ सहस्रशीर्षः क्षेत्रज्ञः सहस्राक्षः सहस्रपात्। भूतभव्यभवद्भर्ता विश्वविद्यामहेश्वरः ॥११॥

इति दिव्यादिशतम् ॥ २ ॥

स्थविष्ठः स्थविरो ज्येष्ठः पृष्ठः प्रष्ठो वरिष्ठधीः। स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठः श्रेष्ठो निष्ठो गरिष्ठगीः ॥ १ ॥ विश्वभृद्विश्वसृट् विश्वेट विश्वभुग्विश्वनायकः। विश्वाशीर्विश्वरूपात्मा विश्वजिद्विजितान्तकः ॥२॥ विभवो विभयो वीरो विशोको विजरो जरन्। विरागो विरतोऽसङ्गो विविक्तो वीतमत्सरः ॥३॥ विनेयजनताबन्धुर्विलीना-शेषकल्मषः। वियोगो योगविद्विद्वान्विधाता सुविधिः सुधीः॥४॥ क्षान्तिभाक्पृथिवीमूर्तिः शान्तिभाक्सलिलात्मकः। वायुमूर्तिरसङ्गात्मा वह्निमूर्तिरधर्मधृक् ॥५॥ सुयज्वा यजमानात्मा सुत्वा सुत्रामपूजितः। ऋत्विग्यज्ञपतिर्यज्ञो यज्ञाङ्गममृतं हविः ॥६॥ व्योममूर्तिरमूर्तात्मा निर्लेपो निर्मलोऽचलः। सोममूर्तिः सुसौम्यात्मा सूर्यमूर्तिर्महाप्रभः ॥७॥ मन्त्रविन्मन्त्रकृन्मन्त्री मन्त्रमूर्तिरनन्तकः। स्वतन्त्रस्तन्त्र-कृत्स्वान्तः कृतान्तान्तः कृतान्तकृत् ॥ ८ ॥ कृती कृतार्थः

इति महादिशतम् ॥४॥

श्रीवृक्षलक्षणः श्लक्ष्णो लक्षण्यः शुभलक्षणः निरक्षः पुण्डरीकाक्षः पुष्कलः पुष्करेक्षणः॥१॥सिद्धिदः सिद्धिसङ्कल्पः सिद्धात्मा सिद्धिसाधनः। बुद्धबोध्यो महाबोधिर्वर्धमानो महर्द्धिकः॥२॥ वेदाङ्गो वेदविद्वेद्यो जातरूपो विदांवरः। वेदवेद्यः स्वसंवेद्यो विवेदो वदतांवरः ॥३॥ अनादिनिधनो व्यक्तो व्यक्तवाग्व्यक्तशासनः। युगादिकृद्युगाधारो युगादिर्जगदादिजः ॥४॥ अतीन्द्रोऽतीन्द्रियो धीन्द्रो महेन्द्रोऽतीन्द्रियार्थदृक्। अनिन्द्रियोऽहमिन्द्राच्र्यो महेन्द्रमहितो महान् ॥५॥ उद्भवः कारणं कर्ता पारगो भवतारकः। अगाह्यो गहनं गृह्यं पराध्र्यः परमेश्वरः ॥६॥ अनन्तर्द्धिरमेयर्द्धिरचिन्त्यर्द्धिः समग्रधीः। प्राग्र्यः प्राग्रहरोऽभ्यग्र्यः प्रत्यग्रोऽग्र्योऽग्रिमोऽग्रजः ॥७॥ महातपा महातेजा महोदर्को महोदयः। महायशो महाधामा महासत्त्वो महाधृतिः ॥८॥ महाधैर्यो महावीर्यो महासम्पन्महाबलः। महाशक्तिर्महाज्योतिर्महाभूतिर्महाद्युतिः ॥९॥ महामतिर्महानं तिर्महाक्षांतिर्महोदयः। महाप्राज्ञो महाभागो महानंदो महाकविः ॥१०॥ महामहामहाकीर्तिर्महाकांतिर्महावपुः। महादानो महाज्ञानो महायोगो महागुणः ॥११॥ महामहपतिः प्राप्तमहाकल्याणपञ्चकः। महाप्रभुर्महाप्रातिहार्याधीशो महेश्वरः ॥ १२ ॥

इति श्रीवृक्षादिशतम् ॥ ५ ॥

महामुनिर्महामौनी महाध्यानी महादमः। महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः॥१॥ महाव्रतपतिर्मह्यो महाकांतिधरोऽधिपः। महामैत्री महामेयो महापायो महोदयः ॥२॥ महाकारुण्यको मंता

महामंत्रो महायतिः । महानादो महाघोषो महेज्यो महसांपतिः॥३॥ महाध्वरधरो धुर्यो महौदार्यो महिष्ठवाक् । महात्मा महसांधम महर्षिर्महितोदयः ॥४॥ महाक्लेशांकुशः शूरो महाभूतपतिर्गुरुः । महापराक्रमोऽनंतो महाक्रोधरिपुर्वशी ॥५॥ महाभवाब्धिसंतारिर्महामोहाद्रि सूदनः । महागुणाकरः क्षांतो महायोगीश्वरः शमी ॥ ६ ॥ महाध्यानपतिर्ध्याता महाधर्मा महाव्रतः । महाकर्मारिहात्मज्ञो महादेवो महेशिता ॥७ ॥ सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरो हरः । असंख्येयोऽप्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकरः ॥८॥ सर्वयोगीश्वरोऽचिन्त्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः । दातात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वगः ॥९॥ प्रधानमात्मा प्रकृतिपरमः परमोदयः । प्रक्षीणबंधः कामारिः क्षेमकृत्क्षेमशासनः ॥१०॥ प्रणवः प्रणयः प्राणः प्राणदः प्रणतेश्वरः । प्रमाणं प्रणिधिर्दक्षो दक्षिणोध्वर्युरध्वरः ॥११॥ आनंदो नंदनो नन्दो वन्द्यो निंद्योऽभिनंदनः । कामहा कामदः काम्यः कामधेनुररिंजयः ॥ १२ ॥

इति महामुन्यादिशतम् ॥ ६ ॥

असंस्कृतः सुसंस्कारः प्राकृतो वैकृतांतकृत् । अंतकृत्कांतगुः कांतश्चिंतामणिरभीष्टदः ॥ १ ॥ अजितो जितकामारिरमितोऽमितशासनः । जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितांतकः ॥ २ ॥ जिनेन्द्रः परमानन्दो मुनीन्द्रो दुन्दुभिस्वनः । महेन्द्रवन्द्यो योगीन्द्रो यतीन्द्रो नाभीनन्दनः ॥ ३ ॥ नाभेयो नाभिजो जातः सुव्रतो मनुरुत्तमः । अभेद्योऽनत्ययोऽनाश्वानधिकोऽधिगुरुःसुधी ॥ ४ ॥ सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुकः । विशिष्टः शिष्टभुक्

शिष्टः प्रत्ययः कर्मणोऽनघः ॥५॥ क्षेमी क्षेमंकरोऽक्षय्यः क्षेमधर्मपतिः क्षमी । अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो ध्यानगम्यो निरुत्तरः ॥६॥ सुकृती धातु रिज्यार्हः सुनयश्चतुराननः । श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्रश्चतुरास्यश्चतुर्मुखः ॥ ७ ॥ सत्यात्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक्सत्यशासनः । सत्याशीः सत्यसन्धानः सत्यः सत्यपरायणः ॥ ८ ॥ स्थेयान्स्थवीयान्नेदीयान्द-वीयान्दूरदर्शनः । अणोरणीयाननणुर्गुरुराद्यो गरीयसाम् ॥ ९ ॥ सदायोगः सदाभोगः सदातृप्तः सदाशिवः । सदागतिः सदासौख्यः सदाविद्यः सदोदयः ॥ १० ॥ सुघोषः सुमुखः सौम्यः सुखदः सुहितः सुहृत् । सुगुप्तागुप्तिभृद्गोप्ता लोकाध्यक्षो दमीश्वरः ॥११॥

इति असंस्कृतादिशतम् ॥ ७ ॥

बृहन्बृहस्पतिर्वाग्मी वाचस्पतिरुदारधीः । मनीषीधिषणो धीमाञ्छेमुषीशो गिरांपतिः ॥ १ ॥ नैकरूपो नयस्तुङ्गो नैकात्मा नैकधर्मकृत् । अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः ॥ २ ॥ ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भः प्रभास्वरः । पद्मगर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भः सुदर्शनः ॥३॥ लक्ष्मीवांस्त्रिदशाध्यक्षो दृढीयानिनईशिता । मनोहरो मनोज्ञाङ्गो धीरो गम्भीरशासनः ॥४॥ धर्मयूपो दयायोगो धर्मनेमीर्मुनीश्वरः । धर्मचक्रायुधो देवः कर्महा धर्मघोषणः ॥ ५ ॥ अमोघवागमोघाज्ञो निर्मलोऽमोघशासनः । सुरूपः सुभगस्त्यागी समयज्ञः समाहितः ॥६॥ सुस्थितः स्वास्थ्यभाक्स्वस्थो नीरजस्को निरुद्धवः । अलेपो निष्कलङ्कात्मा वीतरागो गतस्पृहः ॥७॥ वश्ये-न्द्रियो विमुक्तात्मा निःसपत्नो जितेन्द्रियः । प्रशान्तोऽनन्तधाम-र्षिर्मङ्गलं मलहानघः ॥ ८ ॥ अनीदृगुपमाभूतो दृष्टिर्दैवमगोचरः ।

अमूर्तो मूर्तिमानेको नैको नानैकतत्त्वदृक् ॥ ९ ॥ अध्यात्मगम्यो गम्यात्मा योगविद्योगिवन्दितः । सर्वत्रगः सदाभावी त्रिकालविषयार्थदृक् ॥१०॥ शङ्करः शंवदो दान्तो दमी क्षान्तिपरायणः । अधिपः परमानन्दः परात्मज्ञः परात्परः ॥११॥ त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यस्त्रिजगन्मङ्गलोदयः । त्रिजगत्पतिपूजाङ्घ्रिस्त्रिलोकाग्रशिखामणिः ॥१२॥

इति बृहदादिशतम ॥ ८ ॥

त्रिकालदर्शि लोकेशो लोकधाता दृढव्रतः । सर्वलोकातिगः पूज्यः सर्वलोकैकसारथिः ॥१॥ पुराणपुरुषः पूर्वः कृतपूर्वाङ्गविस्तरः। आदिदेवः पुराणाद्यः पुरुदेवोऽधिदेवता ॥२॥ युगमुख्यो युगज्येष्टो युगादिस्थितिदेशकः । कल्याणवर्णः कल्याणः कल्यः कल्याणलक्षणः ॥३॥ कल्याणप्रकृतिर्दीप्तः कल्याणात्मा विकल्मषः। विकलङ्कः कलातीतः कलिलघ्नः कलाधरः ॥४॥ देवदेवो जगन्नाथो जगद्बन्धुर्जगद्विभुः। जगद्धितैषी लोकज्ञः सर्वगो जगदग्रजः ॥५॥ चराचरगुरुर्गोप्यो गूढात्मा गूढगोचरः । सद्योजातः प्रकाशात्मा ज्वलज्ज्वलनसप्रभः ॥६॥ आदित्यवर्णो भर्माभः सुप्रभः कनकप्रभः। सुवर्णवर्णो रुक्माभः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ ७ ॥ तपनीयनिभस्तुङ्गो बालार्काभोऽनलप्रभः। संध्याभ्रबभ्रुर्हेमाभस्तप्तचामीकरच्छविः ॥८॥ निष्टप्तकनकच्छायः कनत्काञ्चनसन्निभः । हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुम्भनिभप्रभः ॥ ९ ॥ द्युम्नभाजातरूपाभो दीप्तजाम्बूनदद्युतिः । सुधौतकलधौतश्रीः प्रदीप्तो हाटकद्युतिः ॥१०॥ शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टः स्पष्टाक्षरक्षमः । शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता स्वभूः ॥ ११ ॥ शान्तिनिष्ठो मुनिज्येष्ठः शिवतातिः शिवप्रदः । शान्तिदः शान्तिकृच्छान्तिः

कान्तिमान्कामितप्रदः ॥ १२ ॥ श्रेयोनिधिरधिष्ठानमप्रतिष्ठः प्रति-ष्ठितः। सुस्थितः स्थावरः स्थाणुः प्रथीयान्प्रथीतः पृथुः ॥१३॥

इति त्रिकालदर्श्यादिशतम् ॥ ९ ॥

दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः । निष्किञ्चनो निराशंसो ज्ञानचक्षुरमोमुहः ॥ १ ॥ तेजोराशिरनन्तौजा ज्ञानाब्धिः शीलसागरः । तेजोमयोऽमितज्योतिर्ज्योतिर्मूर्तिस्तमोपहः ॥२॥ जग-च्चूडामणिर्दीप्तः सर्वविघ्नविनायकः । कलिघ्नः कर्मशत्रुघ्नो लोका-लोकप्रकाशकः ॥३। अनिद्रालुरतन्द्रालुर्जागरूपः प्रमामयः । लक्ष्मी पतिर्जगज्जोतिर्धर्मराजः प्रजाहितः ॥ ४ ॥ मुमुक्षुर्बन्धमोक्षज्ञो जि-ताक्षो जितमन्मथः । प्रशान्तरसशैलूषो भव्यपेटकनायकः ॥ ५ ॥ मूलकर्ताखिलज्योतिर्मलघ्नो मूलकारणः । आप्तो वागीश्वरः श्रेया-ञ्छ्रायसोक्तिर्निरुक्तवाक् ॥ ६ ॥ प्रवक्ता वचसामीशो मारजिद्विश्व-भाववित् । सुतनुस्तनुनिर्मुक्तः सुगतो हतदुर्नयः ॥ ७ ॥ श्रीशः श्राश्रितपादाब्जो वीतभीरभयङ्करः । उत्सन्नदोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोकवत्सलः ॥ ८ ॥ लोकोत्तरो लोकपतिर्लोकचक्षुरपारधीः । धीर-धीर्बुद्धसन्मार्गः शुद्धः सूनृतपूतवाक् ॥ ९ ॥ प्रज्ञापारमितः प्राज्ञो यतिर्नियमितेन्द्रियः । भदन्तो भद्रकृद्भद्रः कल्पवृक्षो वरप्रदः ॥१०॥ समुन्मूलितकर्मारिः कर्मकाष्ठाशुशुक्षणिः । कर्मण्यः कर्मठः प्रांशुर्हे-यादेयविचक्षणः ॥ ११ ॥ अनन्तशक्तिरच्छेद्य स्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः । त्रिनेत्रस्त्र्यम्बकस्त्र्यक्षः केवलज्ञानवीक्षणः ॥ १२ ॥ समन्तभद्रः शान्तारिर्धर्माचार्यो दयानिधिः । सूक्ष्मदर्शी जितानङ्गः । कृपालुर्ध-र्मदेशकः ॥ १३ ॥ शुभंयुः सखसङ्कूतः पुण्यराशिरनामयः । धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायकः ॥ १४ ॥

इति दिग्वासाद्यष्टोत्तरशतम् ॥ १० ॥

इत्यष्टाधिकसहस्रनामावली समाप्ता ।

धाम्नांपते तवामूनि नामान्यागमकोविदैः । समुच्चिता-न्नुध्यायन्पुमान्पूतस्मृतिर्भवेत् ॥ १ ॥ गोचरोऽपि गिरामासां त्वमवाग्गोचरो मतः । स्तोता तथाप्यसंदिग्धं त्वत्तोऽभीष्टफलं भवेत् ॥ २ ॥ त्वमतोऽसि जगद्बन्धुस्त्वमतोऽसि जगद्भिषक् । त्वमतोऽसि जगद्धाता त्वमतोऽसि जगद्धितः ॥ ३ ॥ त्वमेकं जगतां ज्योतिस्त्वं द्विरूपोपयोगभाक् । त्वं त्रिरूपैकमुक्त्यङ्गः सोत्थानन्तचतुष्टयः ॥ ४ ॥ त्वं पञ्चब्रह्मतत्त्वात्मा पञ्चकल्याणनायकः । षड्भेदभावतत्त्वज्ञस्त्वं सप्तनयसंग्रहः ॥ ५ ॥ दिव्याष्टगुणमूर्तिस्त्वं नवकेवललब्धिकः । दशावतारनिर्धार्यो मां पाहि परमेश्वर ॥ ६ ॥ युष्मन्नामावलीदृब्धविलसत्स्तोत्रमालया । भवन्तं वरिवस्यामः प्रसीदानुगृहाण नः ॥ ७ ॥ इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य पूतो भवति भाक्तिकः । यः स पाठं पठत्येनं स स्यात्कल्याणभाजनम् ॥ ८ ॥ ततः सदेदं पुण्यार्थी पुमान्पठति पुण्यधीः । पौरुहूतीं श्रियं प्राप्तुं परमामभिलाषुकः ॥ ९ ॥

इति भगवज्जिनसेनाचार्यविरचितादिपुराणान्तर्गतं जिनसहस्रनामस्तवनं समाप्तम् ।

---

(५) मोक्षशास्त्रम् (तत्त्वार्थसूत्रम्) ।

(आचार्यश्रीमदुमास्वामिविरचितम्)

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥ १ ॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥ २ ॥ तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥ ३ ॥ जीवाजीवास्रवबन्ध-

संवरनिर्ज्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥ ४ ॥ नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ॥५॥ प्रमाणनयैरधिगमः ॥६॥ निर्देशस्वामित्वसाधनाऽधिकरणस्थितिविधानतः ॥ ७ ॥ सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ॥८॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥९॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥ आद्ये परोक्षम् ॥११॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥१४॥ अवग्रहेहाऽवायधारणाः ॥१५॥ बहुबहुविधक्षिप्राऽनिःसृताऽनुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥१६॥ अर्थस्य ॥१७॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥ न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १९ ॥ श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥२०॥ भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥२१॥ क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२२॥ ऋजुविपुलमती मनःपर्य्ययः ॥२३॥ विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥२४॥ विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्य्ययोः ॥ २५ ॥ मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥२६॥ रूपिष्ववधेः ॥२७। तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य ॥२८॥ सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥२९॥ एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः । ३०॥ मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥३१॥ सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥३२॥ नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः ॥ ३३ ॥

इतितत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥१॥ द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥ सम्यक्त्वचारित्रे ॥३॥ ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥४॥

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च
॥ ५ ॥ गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाऽज्ञानाऽसंयताऽसिद्धलेश्याश्च-
तुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ॥६॥ जीवभव्याऽभव्यत्वानि च ॥७॥
उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ९ ॥ संसा-
रिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥ समनस्काऽमनस्काः ॥ ११ ॥ संसारिण-
स्त्रसस्थावराः ॥१२॥ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥
द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥ पञ्चेन्द्रियाणि ॥ १५ ॥ द्विवि-
धानि ॥ १६ ॥ निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥१७॥ लब्ध्युपयोगौ
भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥ स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुः श्रोत्राणि ॥१९॥
स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥२०॥ श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥ २१ ॥
वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥ २२ ॥ कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामे-
कैकवृद्धानि ॥ २३ ॥ संज्ञिनः समनस्काः ॥ २४ ॥ विग्रहगतौ
कर्मयोगः ॥२५॥ अनुश्रेणि गतिः ॥२६॥ अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥
विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥ २८ ॥ एकसमयाऽवि-
ग्रहाः ॥२९॥ एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः ॥३०॥ सम्मूर्छनगर्भोपपादा-
ज्जन्म ॥ ३१ ॥ सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः
॥३२॥ जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ॥ ३३ ॥ देवनारकाणामुपपादः
॥ ३४ ॥ शेषाणां सम्मूर्छनम् ॥ ३५ ॥ औदारिकवैक्रियिकाहारक-
तैजसकार्मणानि शरीराणि ॥ ३६ ॥ परं परं सूक्ष्मम् ॥ ३७ ॥
प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ॥३८॥ अनन्तगुणे परे ॥३९॥
अप्रतीघाते ॥४०॥ अनादिसम्बन्धे च ॥४१॥ सर्वस्य ॥ ४२ ॥
तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥ ४३ ॥ निरुपभो-

गमनन्त्यम् ॥४५॥ गर्भ सम्मूर्छनजमाद्यम् ॥ ४६ ॥ औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥४६॥ लब्धिप्रत्ययं च ॥ ४७ ॥ तैजसमपि ॥४८॥ शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥४९॥ नारकसम्मूर्छिनो नपुंसकानि ॥५०॥ न देवाः ॥५१॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥५२॥ औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५३ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥
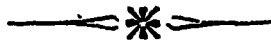
रत्नशर्कराबालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभाभूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः ॥ १ ॥ तासु त्रिंशत्पञ्चविंशतिपञ्चदशदशत्रिपञ्चोनैकनरकशतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम् ॥२॥ नारकानित्याऽशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥ ३ ॥ परस्परोदीरितदुःखाः ॥ ४ ॥ संक्लिष्टाऽसुरोदीरितदुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ॥ ५ ॥ तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमासत्त्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥ जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥७॥ द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥ ८ ॥ तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥ भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥११॥ हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥१२॥ मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥१३॥ पद्ममहापद्मतिगिञ्छकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥ १४ ॥ प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्ध-

विष्कम्भो ह्रदः ॥१५॥ दशयोजनावगाहः ॥१६॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥ तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥ तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः ॥१९॥ गंगासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकांतासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ।२०॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥२१॥ शेषास्त्वपरगाः ॥ २२ ॥ चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गंगासिन्ध्वादयो नद्यः ॥२३॥ भरतः षड्विंशतिपञ्चयोजनशतविस्तारः षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ॥२४॥ तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥२६॥ भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥ २७ ॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥ २८ ॥ एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः तथोत्तराः ॥३०॥ विदेहेषु सङ्ख्येयकालाः ॥३१॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः । ३२ ॥ द्विर्धातकीखण्डे ॥३३ ॥ पुष्करार्द्धे च ॥३४॥ प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥ आर्याम्लेच्छाश्च ॥३६ ॥ भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥३७॥ नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥ ३८ ॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥३९॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥ आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥२॥ दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्य्यन्ताः ॥३॥ इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः ॥ ४ ॥ त्रयस्त्रिंशल्लोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः ॥ ५ ॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥ ६ ॥ कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥ ७ ॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥ ८ ॥ परेऽप्रवीचाराः ॥ ९ ॥ भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः १० व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥ ज्योतिष्काः सूर्य्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥ १२ ॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥ १३ ॥ तत्कृतः कालविभागः ॥ १४ ॥ बहिरवस्थिताः ॥ १५ ॥ वैमानिकाः ॥ १६ ॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७॥ उपर्युपरि ॥१८॥ सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्टशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसुग्रैवेयकेषुविजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ १९ ॥ स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥२०॥ गतिशरीरपरिग्रहाऽभिमानतोहीनाः ॥ २१ ॥ पीतपद्मशुक्ललेश्याद्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥ प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः २३ ॥ ब्रह्मलोकालयालौकान्तिकाः ॥२४॥ सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥२५॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥ औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७॥ स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिताः॥२८॥ सौधर्मैशानयोः सागरोपमे अधिके ॥२९॥ सान-

न्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥ त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चद-शभिरधिकानि तु ॥३१॥ आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ ३२ ॥ अपरा पल्योपममधिकम् ॥३३॥ परतः परतः पूर्वापूर्वानन्तरा: ॥ ३४ ॥ नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥३५॥ दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥ भव-नेषु च ॥३७॥ व्यन्तराणां च ॥३८॥ परा पल्योपममधिकम् ॥३९॥ ज्योतिष्काणां च ॥४०॥ तदष्टभागोऽपरा ॥४१॥ लौकान्तिकाना-मष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥४२॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अजीवकाया धर्म्माधर्म्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥ द्रव्याणि ॥२॥ जीवाश्च ॥ ३ ॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥ ५ ॥ आआकाशादेकद्रव्याणि ॥ ६ ॥ निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥ असङ्ख्येयाः प्रदेशाः धर्म्माधर्मैकजीवानाम् ॥८॥ आकाशस्यानन्ताः ॥ ९ ॥ सङ्ख्येयासङ्ख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥ नाणोः ॥११॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥ धर्म्माधर्म्मयोः कृत्स्ने ॥१३॥ एकप्रदे-शादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥१४॥ असङ्ख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥१५॥ प्रदेशसंहारविसर्प्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ १६ ॥ गतिस्थित्यु-पग्रहौ धर्म्माधर्म्मयोरुपकारः ॥१७॥ आकाशस्यावगाहः ॥१८॥ शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥१९॥ सुखदुःखजीवितमरणो-पग्रहाश्च ॥२०॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥२१॥ वर्त्तनापरिणा-मक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य॥ २२ ॥ स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्-लाः ॥२३॥ शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्यो-

त्वन्तश्च ॥२४॥ अणवस्कन्धाश्च ॥ २५ ॥ भेदसङ्घातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥२६॥ भेदादणुः ॥ २७ ॥ भेदसङ्घाताभ्यां चाक्षुषः ॥२८॥ सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ ३० ॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥३१॥ अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥३२॥ स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥ ३३ ॥ न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥ गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥ ३५ ॥ द्व्यधिकादिगुणानां तु ॥ ३६ ॥ बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥ ३७ ॥ गुणपर्य्ययवद्द्रव्यम् ॥ ३८ ॥ कालश्च ॥३९॥ सोऽनन्तसमयः ॥४०॥ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥४१॥ तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

कायवाङ्मनः कर्म्मयोगः ॥ १ ॥ स आस्रवः ॥ २ ॥ शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ ३ ॥ सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्य्यापथयोः ॥४॥ इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाः पञ्चचतुःपञ्चपञ्चविंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥ ५ ॥ तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥ ६ ॥ अधिकरणं जीवाऽजीवाः ॥७॥ आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥ ८ ॥ निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम् ॥ ९ ॥ तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥ १० ॥ दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य ॥ ११ ॥ भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥ १२ ॥ केवलिश्रुतसङ्घधर्म्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥१३॥ कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारि-

त्रमोहस्य ॥१४॥ बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥ माया तैर्यग्योनस्य ॥१६॥ अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७॥ स्वभावमार्दवं च ॥१८॥ निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥ सरागसंयमसंयमासंयमाऽकामनिर्ज्जराबालतपांसि दैवस्य ॥२०॥ सम्यक्त्वं च ॥२१॥ योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥२२॥ तद्विपरीतं शुभस्य ॥२३॥ दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नताशीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौशक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्त्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिमार्गप्रभावनाप्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥ २४ ॥ परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ।२५। तद्विपर्य्ययौ नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौचोत्तरस्य ॥ २६ ॥ विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥ २७ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥ १ ॥ देशसर्वतोऽणुमहती ॥ २ ॥ तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ॥ ३ ॥ वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च ॥४॥ क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचीभाषणं च पञ्च ॥ ५ ॥ शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्म्माऽविसंवादाः पञ्च ॥ ६ ॥ स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च ॥ ७ ॥ मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्ज्जनानि पञ्च ॥ ८ ॥ हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥ ९ ॥ दुःखमेव वा ॥१०॥ मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु ॥ ११ ॥ जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥ १२ ॥ प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा

॥१३॥ असदभिधानमनृतम् ॥ १४ ॥ अदत्तादानं स्तेयम् ॥१५॥ मैथुनमब्रह्म ॥ १६ ॥ मूर्छा परिग्रहः ॥ १७ ॥ निःशल्यो व्रती ॥ १८ ॥ आगार्यनगारश्च ॥ १९ ॥ अणुव्रतोऽगारी ॥ २० ॥ दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥ २१ ॥ मारणान्तिकीं सँल्लेखनां जोषिता ॥ २२ ॥ शङ्काकाङ्क्षा विचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥२३॥ व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥२४॥ बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥ २५ ॥ मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखाक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः ॥ २६ ॥ स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ॥२७॥ परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीतागमनानङ्गक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥ २८ ॥ क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणाऽतिक्रमाः ॥ २९ ॥ ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि ॥ ३० ॥ आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥ ३१ ॥ कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२ ॥ योगदुःप्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३३ ॥ अप्रत्यवेक्षिताऽप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३४ ॥ सचित्तसम्बन्धसंन्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥३५॥ सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ॥ ३६॥ जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि ॥ ३७ ॥ अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥ ३८ ॥ विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥ ३९ ॥

इतितत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ॥१॥ सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥२॥ प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशास्तद्विधयः ॥ ३ ॥ आद्योज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः ॥ ४ ॥ पंचनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपंचभेदा यथाक्रमम् ॥५॥ मतिश्रुतावधिमनः पर्ययकेवलानाम् ॥ ६ ॥ चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥ ७ ॥ सदसद्वेद्ये ॥ ८ ॥ दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुन्नपुंसकवेदाः अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥ ९ ॥ न रकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥१०॥ गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धनसंघातसंस्थानसंहननस्पर्शरसगन्धवर्णानुपूर्व्यगुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशःकीर्तिसेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥ ११ ॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२ ॥ दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ॥ १३ ॥ आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटयः परा स्थितिः ॥ १४ ॥ सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥१५॥ विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥१६॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ १७ ॥ अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ॥ १८ ॥ नामगोत्रयोरष्टौ ॥ १९ ॥ शेषाणामन्तर्मुहूर्ताः ॥ २० ॥ विपाकोऽनुभवः ॥ २१ ॥ स यथानाम ॥ २२ ॥ ततश्च निर्जरा ॥ २३ ॥ नामप्रत्ययाः सर्वतोयोगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षे-

त्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ॥ २४ ॥ सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ॥ २५ ॥ अतोऽन्यत्पापम् ॥ २६ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रेऽष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥

आस्रवनिरोधः संवर ॥१॥ स गुप्तिसमितिधर्म्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ॥२॥ तपसा निर्ज्जरा च ॥३॥ सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥४॥ ईर्य्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥५॥ उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाऽऽकिंचन्यब्रह्मचर्य्याणि धर्म्मः ॥६॥ अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्ज्जरालोकबोधिदुर्लभधर्म्मस्वाख्यातत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥७॥ मार्गाच्यवननिर्ज्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ॥८॥ क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्य्यानिषेद्याशय्याक्रोशवधायाच्ञालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाऽज्ञानाऽदर्शनानि ॥९॥ सूक्ष्मसाम्परायच्छद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥१०॥ एकादश जिने ॥११॥ बादरसाम्पराये सर्वे ॥१२॥ ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥ दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ॥१४॥ चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाच्ञासत्कारपुरस्काराः ॥१५॥ वेदनीये शेषाः ॥१६॥ एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नेकोनविंशतिः ॥१७॥ सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्पराययथाख्यातमिति चारित्रम् ॥१८॥ अनशनावमौदर्य्यवृत्तिपरिसङ्ख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥१९॥ प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ॥ २० ॥ नवचतुर्दशपंचद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥ २१ ॥ आलोचनाप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः

अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥ ४ ॥ तदनन्तरमूर्द्ध्वं गच्छन्त्यालोकान्तात् ॥ ५ ॥ पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्बन्धच्छेदात्तथा गतिपरिणामाच्च ॥ ६ ॥ आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाम्बूवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च ॥ ७ ॥ धर्मास्तिकायाऽभावात् ॥ ८ ॥ क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥ ९ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यञ्जनसन्धिविवर्ज्जितरेफम् । साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥ १ ॥ दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति । फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुङ्गवैः ॥ २ ॥ तत्त्वार्थसूत्रकर्तारं गृद्धपिछोपलक्षितम् वन्दे गणिंद्रसंजातमुमास्वामिमुनीश्वरम् ॥ ३ ॥

इति तत्त्वार्थसूत्रापरनाम तत्त्वार्थाधिगममोक्षशास्त्रं समाप्तम् ।

---

(६) श्रीमुनिराजका बारहमासा ।

(पं० जियालालजी रचित)

मैं वन्दू साधु महन्त बड़े गुणवन्त सभी चित लाके । जिन अथिर लखा संसार बसे बन जाके ॥ टेक ॥ चित चैतमें व्याकुल रहै काम तन दहै न कुछ बन आवै । फूली बन राई देख मोह भ्रम छावै ॥ जब शीतल चलें समीर स्वच्छ हों नीर भवन सुख भावे । किस तरह योग योगीश्वरसे बन आवे ॥ तिस अवसर

हिंडोले । वे गावैं राग मल्हार पहन नये चोले ॥ जग मोह तिमर मन बसे, सरब तन कसे देत झक झोले । उस अवसर श्रीमुनिराज बनत हैं भोले ॥ वे जीतैं रिपु से लरके, कर ज्ञानखड्ग ले करके। शुभ शुक्ल ध्यानको धरके, परफुल्लित केवल वरके ॥ नहीं सहैं वो यमकी त्रास, लहैं शिववास अघात नशाके । जिन अथिर लखा संसार बसे बन जाके ॥५॥ भादव अंधियारी रात दिखै ना हात, घुमड़ रहे बादर । वनमोर पपीहा कोयल बोलैं दादुर ॥ अति मच्छर भिन २ करैं, सर्प फुंकरैं, फुंकारैं थलचर । बहु सिंह स्याल गज घूमें बनके अंदर ॥ मुनिराज ध्यानगुन पूरे, तब काटैं कर्म अंकूरे। तन लिपटत कानखजूरे, मधुमच्छि ततइयें भूरे ॥ चिटियोंने बिल तनकरे, आपमुनि खरे हाथ लटकाके । जिन अथिर लखा संसार बसे बन जाके ॥६॥ आश्विनमें बर्षा गई, समय नहि रही दशहरा आया । नहीं रही वृष्टि अरु कामदेव लहराया ॥ कामीनर करैं किलोल बजावैं ढोल, करैं मनभाया । हैं धन्य साधु जिन आतमध्यान लगाया । वसुयाम योगमें भीने, पुनि अष्टकर्म छय कीने । उपदेश सबनको दीने, भविजनको नित्य नवीने ॥ है धन्य धन्य मुनिराज, ज्ञानके ताज, नमू शिरनाके । जिन अथिर लखा ससार बसे बन जाके ॥७॥ कातिकमें आया शीत भई विपरीति अधिक शरदाई । संसारी खेलें जुवा कर्म दुखदाई ॥ जग नर नारीका मेल, मिथुन सुख केल करैं मन भाई । शीतल ऋतु कामी जनको है सुखदाई ॥ जब कामी काम कमावैं । मुनिराज ध्यान शुभ ध्यावें । सरवर तट ध्यान लगावैं, सो मोक्ष भवन सुख पावैं ॥ मुनि महिमा अपरम्पार, न पावै पार, कोई नर गाके । जिन अथिर लखा संसार बसे बन

जाके ॥८॥ अगहनमें टपके शीत यही जगरीति सेज मन भावै। अति शीतल चले समीर देह थर्रावै ॥ शृंगार करे कामिनी रूपरस ठनी साम्हने आवै। उस समय कुमति वश सबका मन ललचावै॥ योगीश्वर ध्यान धरे हैं, सरिताके निकट खरे हैं। जहां ओले अधिक परें हैं, मुनि कर्मका नाश करें हैं ॥ जब पड़े बर्फ घनघोर, करें नहीं शोर जयी दृढ़ताके। जिन अथिर लखा संसार बसे बन जाके ॥९॥ यह पोष महीना भला, शीतमें घुला कांपती काया। वे धन्य गुरू जिन इसऋतु ध्यान लगाया॥ घर वारी घरमें छिपैं वस्त्रतन लिपैं रहैं जड़ियाया। तजि वस्त्र दिगम्बर हो मुनि कर्म खिपाया ॥ जलके तट जग सुखदाई, महिमा सागर मुनिराई। धरधीर खड़े हैं भाई, निज आतमसे लवलाई ॥ है यह संसार असार वे तारणहार सकल वसुधाके। जिन अथिर लखा संसार बसे वन जाके ॥ १० ॥ ऋतु आई माघ बसंत नारि अरु कंत युगल सुख पाते। वे पहिने वस्त्र बसन्त फिरें मदमाते ॥ जब चढ़े मैनकी सैन पड़े नहीं चैन कुमति उपजाते। हैं बड़े धीर जन बहुधा वे डिग जाते ॥ तिस समय जु हैं मुनि ज्ञानी, जिन काया लखी पयानी। भवि डूबत बोधे प्रानी, जिन ये बसन्त जियजानी॥ चैतनसे खेलें होरी ज्ञानरँगघोरी, जोग जल लाके। जिन अथिर लखा संसार बसे बन जाके ॥ ११ ॥ जब लगा महीना फाग, करें अनुराग सभी नरनारी। ले फिरें कुमकुम फेंट हाथ पिचकारी ॥ जब श्रीमुनिवर गुणखान, अचल धरध्यान करें तप भारी। कर शीलसु-धारस कर्मन ऊपर डारी ॥ कीरती कुमकुमे बनावैं, कर्मों से फाग

रचावैं । जो बारहमासा गावैं, सो अजर अमर पद पावैं ॥ यह भाखें जीयालाल, परम गुणमाल, योग दरशाके । जिन अथिर लखा संसार बसे बन जाके ॥ १२ ॥

समाप्त ।

(७) सुप्रभातस्तोत्रम् ।

श्रीपरमात्मने नमः ॥ यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्जन्माभिषेकोत्सवे यद्दीक्षाग्रणोत्सवे यदखिलज्ञानप्रकाशोत्सवे । यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः पूजाद्भुतं तद्भवैः सङ्गीतस्तुतिमङ्गलैः प्रसरतां मे सुप्रभातोत्सवः ॥१॥ श्रीमन्नतामरकिरीटमणिप्रभाभिरालीढपादयुग-दुर्धरकर्मदूर । श्रीनाभिनन्दनजिनाजितशंभवाख्य । त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥२॥ छत्रत्रयप्रचलचामरवीज्यमान देवाभिनन्दनमुने सुमते जिनेन्द्र । पद्मप्रभारुणमणिद्युतिभासुरांग त्व० ॥३॥ अर्हन् सुपार्श्व कदलीदलवर्णगात्र प्रालेयतारगिरिमौक्तिकवर्णगौर । चंद्रप्रभस्फटिकपांण्डुर पुष्पदंत त्व० ॥४॥ संततकाञ्चनरुचे जिन शीतलाख्य श्रेयान्विनष्टदुरिताष्टकलङ्कपङ्क । बंधूकबंधुररुचे जिनवासुपूज्य त्व० ॥५॥ उद्दण्डदर्पकरिपो विमलामलाङ्गस्थेमन्ननंतजिदनंतसुखाम्बुराशे । दुष्कर्मकल्मषविवर्जित धर्मनाथ त्व० ॥६॥ देवामरीकुसुमसन्निभ शांतिनाथ कुन्थो दयागुणविभूषणभूषिताङ्ग । देवाधिदेव भगवन्नरतीर्थनाथ त्व० ॥७॥ यन्मोहमल्लमदभञ्जनमल्लिनाथ क्षेमङ्करावितथशासनसुव्रताख्य । यत्सम्पदा प्रशमितो नमिनामधेय त्व० ॥८॥ तापिच्छगुच्छरुचिरोज्ज्वल नेमिनाथ घोरोपसर्गविजयन्जिन-

पार्श्वनाथ। स्याद्वादशसुक्तिमणिदर्पणवर्द्धमान त्व० ॥९॥ प्रालेयनील-हरितारुणपीतभासं यन्मूर्तिमव्ययसुखावसथं मुनीन्द्राः। ध्यायन्ति सप्ततिशतं जिनवल्लभानां त्व० ॥१०॥ सुप्रभातं सुनक्षत्रं माङ्गल्यं परिकीर्तितम्। चतुर्विंशतितीर्थानां सुप्रभातं दिने दिने ॥ ११ ॥ सुप्रभातं सुनक्षत्रं श्रेयः प्रत्यभिनन्दितम्। देवता ऋषयः सिद्धाः सुप्रभातं दिने दिने ॥ १२ ॥ सुप्रभातं तवैकस्य वृषभस्य महात्मनः। येन प्रवर्तितं तीर्थं भव्यसत्वसुखावहम् ॥ १३ ॥ सुप्रभातं जिनेन्द्राणां ज्ञानोन्मीलितचक्षुषाम्। अज्ञानतिमिरान्धानां नित्यमस्तमितो रविः ॥ १४ सुप्रभातं जिनेन्द्रस्य वीरः कमललोचनः ॥ येन कर्माटवी दग्धा शुक्लध्यानोग्रवह्निना ॥ १५ ॥ सुप्रभातं सुनक्षत्रं सुकल्याणं सुमङ्गलम् । त्रैलोक्यहितकर्तॄणां जिनानामेव शासनम् ॥ १६ ॥

इति सुप्रभातस्तोत्रं समाप्तम् ॥

(८) दृष्टाष्टकस्तोत्रम् ।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि भव्यात्मनां विभवसम्भवभूरिहेतुः। दुग्धाब्धिफेनधवलोज्ज्वलकूटकोटीनद्धध्वजप्रकारराजिविराजमानम् ॥ १ ॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भुवनैकलक्ष्मीधामर्द्धिवर्द्धितमहामुनिसेव्यमानम्। विद्याधरामरवधूजनमुक्तदिव्यपुष्पाञ्जलिप्रकारशोभितभूमिभागम् ॥२॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवनादिवासविख्यातनाकगणिकागणगीयमानम्। नानामणिप्रचयभासुररश्मिजालव्यालीढनिर्मलविशालगवाक्षजालम् ॥ ३ ॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं सुरसिद्धयक्षगन्धर्व-

किन्नरकरार्पितवेणुवीणा। सङ्गीतमिश्रितनमस्कृतधीरनादैरापूरिताम्बरतलोरुदिगन्तरालम् ॥४। दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विलसद्विलोलमालाकुलालिललितालकविभ्रमाणम् ॥ माधुर्यवाद्यलयनृत्यविलासिनीनां लीलाचलद्वलयनूपुरनादरम्यम् ॥५॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं मणिरत्नहेमसारोज्ज्वलैः कलशचामरदर्पणाद्यैः। सन्मङ्गलैः सततमष्टशतप्रभेदैर्विभ्राजितं विमलमौक्तिकदामशोभम् ॥६॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं वरदेवदारुकर्पूरचन्दनतरुष्कसुगन्धिधूपैः। मेघायमानगगने पवनाभिघातचञ्चच्चलद्विमलकेतनतुङ्गशालम् ॥७॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं धवलातपत्रच्छायानिमग्नतनुयक्षकुमारवृन्दैः। दोधूयमानसितचामरपङ्क्तिभासं भामण्डलद्युतियुतप्रतिमाभिरामम् ॥८॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विविधप्रकारपुष्पोपहाररमणीयसुरत्नभूमि। नित्यं वसन्ततिलकश्रियमादधानं सन्मङ्गलं सकलचन्द्रमुनीन्द्रवन्द्यम् ॥९। दृष्टं मयाद्य मणिकाञ्चनचित्रतुङ्गसिंहासनादिजिनबिम्बविभूतियुक्तम्। चैत्यालयं यदतुलं परिकीर्तितं मे सन्मङ्गलं सकलचन्द्रमुनीन्द्रवन्द्यम् ॥१०॥

॥ इति दृष्टाष्टकस्तोत्रं संपूर्णम् ॥

(९) अद्याष्टकस्तोत्रम्।

अद्य मे सफलं जन्म नेत्रे च सफले मम। त्वामद्राक्षं यतो देव हेतुमक्षयसम्पदः ॥१। अद्य संसारगम्भीरपारावारः सुदुस्तरः। सुतरोऽयं क्षणेनैव जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥२॥ अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमले कृते। स्नातोऽहं धर्मतीर्थेषु जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥३॥ अद्य मे सफलं जन्म प्रशस्तं सर्वमङ्गलम्। संसारार्णवतीर्णोऽहं जिनेन्द्र

तव दर्शनात् ॥ ४ ॥ अद्य कर्माष्टकज्वालं विधूतं सकषायकम् । दुर्गतेर्विनिवृत्तोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥५॥ अद्य सौम्या ग्रहाः सर्वे शुभाश्चैकादशस्थिताः । नष्टानि विघ्नजालानि जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ६ ॥ अद्य नष्टो महाबन्धः कर्मणां दुःखदायकः । सुखसङ्गं समापन्नो जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ७ ॥ अद्य कर्माष्टकं नष्टं दुःखोत्पादनकारकम् । सुखाम्भोधिनिमग्नोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ८ ॥ अद्य मिथ्यान्धकारस्य हन्ता ज्ञानदिवाकरः । उदितो मच्छरीरेऽस्मिन् जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ९ ॥ अद्याहं सुकृती भूतो निर्धूताशेषकल्मषः भुवनत्रयपूज्योऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ १० ॥ अद्याष्टकं पठेद्यस्तु गुणानन्दितमानसः । तस्य सर्वार्थसंसिद्धिर्जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ११ ॥

इति अद्याष्टकं स्तोत्र संपूर्णम् ॥

(१०) सूतक निर्णय ।

सूतकमें देव शास्त्र गुरुका पूजन प्रक्षालादि तथा मंदिरजीका वस्त्राभुषणादिका स्पर्शनकी मना है तथा पान दान भी वर्जित है। सूतक पूर्ण होनेके बाद प्रथम दिन पूजन प्रक्षाल तथा पात्रदान करके पवित्र होवे। सूतक विवर्ण इस प्रकार है। १. जन्मका सूतक दश दिनका माना जाता है। २. स्त्रीका गर्भ जितने माहका पतन हुवा हो उतने दिनका सूतक मानना चाहिये, विशेष यह है कि यदि तीन माहसे कमका हो तो तीन दिनका सूतक मानना चाहिये। ३. प्रसुती स्त्रीको ४५ दिनका सूतक होता है इसके

पश्चात् वह स्नान दर्शन करके पवित्र होवे॥ कहीं ३ चालीस दिनका भी माना जाता है। ४. प्रसूति स्थान एक माह तक अशुद्ध है। ५. रजस्वला स्त्री पांचवे दिन शुद्ध होती है। ६. व्यभिचारिणी स्त्रीके सदा ही सूतक रहता है। कभी भी शुद्ध नहीं होती। ७. मृत्युका सूतक १२ दिनका माना जाता है। तीन पीढ़ी तक १२ दिन, चौथी पीढ़ीमें ६ दिनका, छठी पीढ़ीमें ४ दिन, सातवीं पीढ़ीमें ३ दिन, आठवीं पीढ़ीमें एक दिन रात, नववीं पीढ़ीमें दो पहर, और दशवीं पीढ़ीमें स्नान मात्रसे शुद्धता कही है। ८. जन्म तथा मृत्युका सूतक गौत्रके मनुष्यको ५ दिनका होता है। १०. आठ वर्ष तकके बालककी मृत्युका ३ दिनका और तीन दिनके बालकका सूतक १ दिनका जानो। ११. अपने कुलका कोई गृह त्यागी हो उसका सन्यासमरण अथवा किसी कुटुंबीका संग्राममें मरण हो जाय, तो १ दिनका सूतक होता है। यदि अपने कुलका देशान्तरमें मरण करे और १२ दिन पूरे होनेके पहले मालूम हो तो शेष दिनोंका सूतक मानना चाहिये। यदि दिन पूरे हो गये होवें तो स्नान मात्र सूतक जानो। १२. घोड़ी, भैंस, गौ आदि पशु तथा दासी अपने गृहमें जने अथवा आगनमें जने तो १ दिनका सूतक होता है। गृह बाहर जने तो सूतक नहीं होता। १३. दासी दास तथा पुत्रीके प्रसूति होय या मरे, तो ३ दिनका सूतक होता है। यदि गृह बाहर हो तो सूतक नहीं। यहांपर मृत्युकी मुख्यतासे ३ दिनका कहा है। प्रसूतका १ ही दिनका जानो। १४. अपनेको अग्निमें जलाकर (सती हो कर) मरे, तिसका छह

आहका तथा और २ हत्याओंका यथायोग्य पाप जानना। १९. जने पीछे भैंसका दूध १५ दिन तक, गायका दूध १० दिन तक और बकरीका दूध आठ दिन तक अशुद्ध है पश्चात् खानेयोग्य है। प्रगट रहे कि कहीं देशभेदसे सूतकविधानमें भी भेद होता है इस लिये देशपद्धति तथा शास्त्रपद्धतिका मिलानकर पालन करना चाहिये। (श्रावकधर्मसंग्रहसे उद्धृत)

(११) विनति संग्रह।

गुरुविनति।

वन्दौं दिगम्बर गुरुचरन, जग तारन तारन जान। जे भरम भारी रोगको, हैं राजवैद्य महान॥ जिनके अनुग्रह विन कभी, नहिं कटैं कर्म जंजीर। ते साधु मेरे मन वसों, मेरी हरौ पातक पीर॥ १॥ यह तन अपावन अशुचि है, संसार सकल असार। ये भोग विषपकवानसे, इस भांति सोच विचार॥ तप विरचि श्रीमुनि वन वसे, सब त्यागी परिग्रह भोर। ते साधु मेरे मन वसौ, मेरी हरौ पातक पीर॥२॥ जे काच कंचन सम गिनैं, अरि मित्र एकस्वरूप। निंदा बड़ाई सारिखी, वनखंड शहर अनूप। सुख दुःख जीवन मरनमें, नहिं खुशी नहिं दिलगीर। ते साधु मेरे मन वसौ, मेरी हरौ पातक पीर॥३॥ जे बाह्य पर्वत वन वसैं, गिरि गुहा महल मनोग। सिल सेज समता सहचरी, शशिकिरण दीपकजोग॥ मृग मित्र भोजन तपमई, विज्ञान निरमल नीर। ते साधु मेरे मन वसौ, मेरी हरौ पातक

पीर ॥४॥ सूखैं सरोवर जल भरे, सूखैं तरंगनि-तोय। वाटैं बटोही ना चलैं, जहं घाम गरमी होय। तिस काल मुनिवर तप तपैं, गिरि-शिखर ठाड़े धीर। ते साधु मेरे मन वसौ, मेरी हरौ पातक पीर ॥५॥ घनघोर गरजैं घनघटा, जल परं पावसकाल। चहुंओर चमकै बीजुरी, अति चलै शीतल व्याल (?)। तरुहेट तिष्ठैं जती, एकांत अचल शरीर। ते साधु मेरे मन वसौ, मेरी हरौ पातक पीर ॥६॥ जब शीतमास तुषारसौं, दाहै सकल वनराय। जब जमै पानी पोखरां, थरहरै सबकी काय॥ तब नगन निवसैं चौहटैं, अथवा नदीके तीर। ते साधु मेरे मन वसौ, मेरी हरौ पातक पीर ॥ ७ ॥ कर जोर 'भूधर' बीनवै, कब मिलैं वे मुनिराज। यह आस मनकी कब फलै, मेरे सरैं सगरे काज॥ संसार विषम विदेशमें, जे विना-कारण वीर। ते साधु मेरे मन वसौ, मेरी हरौ पातक पीर ॥ ८ ॥

(२)

त्रिभुवनगुरु स्वामी जी, करुनानिधि नामी जी। सुनि अंत-रजामी, मेरी वीनती जी ॥१॥ मैं दास तुम्हारा जी, दुखिया बहु भाराजी। दुख भेटनहारा, तुम जादौंपती जी ॥२॥ भरम्यौ संसारा जी, चिरं विपति-भंडारा जी। कहिं सार न सारे, चहुंगति डोलियौ जी ॥३॥ दुख मेरु समाना जी, सुख सरसौं-दाना जी, अर जान धरि ज्ञान, तराजू तोलिया जी ॥४॥ थावर तन पाया जी, त्रसनाम धराया जी॥ कृमि कुंथु कहाया, मरि भंवरा भया जी ॥५॥ पशु-काया सारी जी, नाना विधि धारी जी। जलचारी थलचारी, उड़न पखेरुवा जी ॥६॥ नरकनकेमाहीं जी, दुखओर न काहीं जी। अति घोर जहां है, सरिता खारकी जी ॥७॥ पुनि असुर संघारैं जी,

निज वैर विचारैं जी । मिळ बांधैं अरु मारैं, निरदय नारकी जी ॥८॥ मानुष अवतारे जी, रह्यौ गरममंझारे जी । रटि रोयौ जनमत, वारैं मैं घनों जी ॥९॥ जोवन तन रोगी जी, कै विरहवियोगी जी । फिर भोगी बहुविधि, विरधपनाकी वेदना जी ॥१०॥ सुरपदवी पाई-जी, रम्भा उर लाई जी । तहां देखि पराई, संपति झूरियौ जी ॥११॥ माला मुरझानी जी, जब आरति ठानी जी । थिति पूरन जानी, मरत विसुरियौ जी ॥१२॥ यौं दुख भवकेरा जो, भुगतौ बहुतेरा जी । प्रभु ! मेरे कहतें, पार न है कहीं जो ॥१३॥ मिथ्यामदमाताजी, चाही नित साता जी । सुखदाता जगत्राता, तुम जानें नहीं जी ।१४॥ प्रभु भागनि पाये जी, गुन श्रवण सुहाये जी । तकि आयौ सब सेवककी विपदा हरौ जी ॥१५॥ भववास वसेरा जी, फिरि होय न मेराजी । सुख पावै जन तेरा, स्वामी ! सो करौ जी ॥१६॥ तुम शरनसहाई जी, तुम सज्जन भाई जी । तुम माई तुम्हीं बाप, दया मुझ लीजिये जी ॥१७॥ 'भूधर' कर जोरै जी, ठाड़ो प्रभु ओरै जी । निजदास निहारौ, निरभय कीजिये जी ॥१८॥

(२)

ढाल—परमादी ।

अहो ! जगत गुरु एक, सुनियो अरज हमारी । तुम हो दीनदयाल, मैं दुखिया संसारी ॥१॥ इस भव वनमें वादि; काल अनादि गमायौ । भ्रमत चहूंगतिमाहिं, सुख नहिं दुख बहु पायौ ॥२॥ कर्म महारिपु जोर, एक न कान करैं जी । मनमानौं दुख देहिं, काहूसौं न डरैं जी ॥३॥ कबहूं इतर निगोद, कबहूं नरक दिखावैं । सुर नर पशुगतिमाहिं, बहुविधि नाच नचावैं ॥४॥ प्रभु !

इनके परसंग, भव भवमाहिं बुरे जी। जे दुख देखे देव!, तुमसौं नाहिं दुरे जी। एक जन्मकी बात, कहि न सकौं सुनि स्वामी। तुम अनन्त परजाय, जानत अंतरजामी ॥६॥ मैं तो एक अनाथ, ये मिलि दुष्ट घनेरे। कियौ बहुत बेहाल, सुनियौ साहिब मेरे ॥७॥ ज्ञान महानिधि लूटि, रंक निबल करि डारचौ। इनहि तुम मुझमांहिं, हे जिन! अंतर पार्यौ ॥८॥ पाप पुन्यकी दोय, पाँयनि बेरी डारी। तनकारागृहमाहिं, मोहि दियौ दुख भारी ॥९॥ इनको नेक विगार, मैं कछु नाहिं कियौ जी। विनकारन जगवंद्य!, बहुविधि वैर लियौ जी ॥१०॥ अब आयौ तुम पास, सुन जिन सुजस तिहारौ। नीति निपुन जगराय! कीजे न्याव हमारौ ॥११॥ दुष्टन देहु निकास, साधुनकौं रखि लीजे। विनवें 'भूधरदास,' हे प्रभु ढील न कीजे ॥१२॥

(४)

दोहा (राग–भरथरी)।

ते गुरु मेरे मन वसौ, जे भव–जलधि–जिहाज। आप तिरैं पर तारहीं, ऐसे श्री ऋषिराज ॥ ते गुरु० ॥ १ ॥ मोह महारिपु जीतिकैं, छाँड्चो सब घरबार। होय दिगम्बर वन बसे, आतम शुद्ध विचार ॥ ते गुरु० ॥ २ ॥ रोगउरग–बिल वपु गिण्यौ, भोग भुजंग समान। कदलीतरु संसार है, त्यागौ सब यह ज्ञान ॥ते गुरु० ॥३॥ रतनत्रय निधि उर धरैं, अरु निरग्रंथ त्रिकाल। मार्यौ काम खवीसको, स्वामी परम दयाल ॥ ते गुरु० ॥ ४ ॥ पंच महाव्रत आदरैं, पांचौ सुमति–समेत। तीन गुपति पालैं सदा, अजरअमर–पदहेत ॥ ते गु० ॥५॥ धर्म धरैं दशलक्षणो, भावैं भावना सार।

सहैं परीसह बीस द्वै, चारित–रतन भंडार ॥ ते गु० ॥६॥ जेठ तपै रवि आकरौ, सूखै सरवरनीर । शैल–शिखर मुन तप तपैं, दाझैं नगन शरीर ॥ ते गु० ॥७॥ पावस रैन डरावनी, बरसै जलधर धार । तरुतल निवसैं साहसी, बाजै झंझावार ॥ ते गु० ॥ ८ ॥ शीत पड़ै कपि–मद गलै, दाहै सब वनराय । ताल तरंगनिके तटै, ठाड़े ध्यान लगाय ॥ ते गु० ॥ ९ ॥ इहि विधि दुद्धर तप तपैं, तीनौं कालमँझार । लागे सहज सरूपमें, तनसौं ममत निवार ॥ ते गु० ॥ १०॥ पूरव भोग न चिंतवैं, आगम बांछा नाहिं । चहुंगतिके दुखसौं डरैं, सुरत लगी शिवमाहिं ॥ ते गु० ११ ॥ रंगमहलमें पौढ़ते, कोमल सेज बिछाय । ते पच्छिम निशि भूमिमें, सोवैं संवरि काय ॥ ते गु० ॥ १२ ॥ गज चढ़ि चलते गरबसौं, सेना सजि चतुरंग । निरखि निरखि पग वे धरैं, पालैं करुणा अंग ॥ ॥ ते गु० ॥ १३ ॥ वे गुरु चरण जहां धरैं, जगमें तीरथ जेह । सो रज मम मस्तक चढ़ौ, 'भूधर' मांगे तेह ॥ ते गु० ॥ १४ ॥

(२)

प्रभु पतितपावन मैं अपावन, चरन आयौ शरनजी । यौ विरद आप निहार स्वामी, मैंट जामन मरनजो ॥ तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविध प्रकारजी । या बुद्धिसेती निज न जाण्या, भ्रम गिण्या हितकारजी ॥ १ ॥ भवविकटवनमें करम वैरी, ज्ञानधन मेरो हरयौ । तब इष्ट भूल्यौ भ्रष्ट होय, अनिष्टगति धरतौ फिरयौ ॥ धन घड़ी यौ धन दिवस यौ ही, धन जनम मेरो भयौ । अब भाग मेरो उदय आयौ दरश प्रभुकौ लख लयौ ॥ २ ॥ छवि वीतरागी नगनमुद्रा, दृष्टि नासापै धरैं ।

वसु प्रतिहार्य अनन्तगुणयुत, कोटि विछवितैं हरैं ॥ मिट गयौ तिमिर मिथ्यात मेरौ, उदय रवि आतम भयौ। मो उर हरख ऐसो भयौ, मनु रंक चिंतामणि लयौ ॥३॥ मैं हाथ जोड़ नवाय मस्तक, वीनऊं तुव चरननी। सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनो तारन तरनजी ॥ जाँचूं नहीं सुरवास पुनि नरराज परिजन साथजी। बुध जाँचहूं तुव भक्ति भव भव दीजिये शीवनाथजी ॥४॥

(६)

श्रीपति जिनवर करुणायतनं, दुखहरन तुमारा बाना है। मत मेरी वार अवार करौ, मोहि देहु विमल कल्याना है ॥ टेक ॥१॥ त्रैकालिक वस्तु प्रतच्छ लखो, तुमसौं कछु बात न छाना है। मेरे उर आरत जो वरतै, निहचै सब सो तुम जाना हैं ॥ अवलोकि विथा मत मौन गहौ, नहीं मेरा कहीं ठिकाणा है। हो राजिव-लोचन सोचविमोचन, मैं तुमसौं हित ठाना है ॥ श्री० ॥ २ ॥ सब ग्रन्थनिमें निरग्रंथनिने, निरधार यही गणधार कही। जिन-नायक ही सब लायक हैं, सुखदायक छायकज्ञानमही ॥ यह बात हमारे कान परी, तब आन तुमारी सरन गही। क्यों मेरी वार विलंब करौ, जिन नाथ कहो यह बात सही ॥ श्री० ॥ ३ ॥ काहूको भोग मनोग करो, काहूको स्वर्ग विमाना है। काहूको नाग नरेशपती, काहूको ऋद्धिनिधाना है। अब मोपर क्यों न कृपा करते, यह क्या अंधेर जमाना है। इन्साफ करो मत देर करो, सुखवृंद भरो भगवाना है ॥ श्री० ॥ ४ ॥ खल कर्म मुझे हैरान किया, तब तुमसौं आन पुकारा है। तुम हो समरत्थ न न्याव करो, तब बंदेका क्या चारा है ॥ खलघालक

पालक बालकका, नृप नीति यही जग सारा है। तुम नीतिनिपुन त्रैलोकपती, तुम ही लगि दौर हमारा है॥ श्री०॥ ५॥ जबसे तुमसे पहिचान भई, तबसे तुमहीको माना है। तुमरे ही शासनका स्वामी!, हमको शरना सरधाना है॥ जिनको तुमरी शरनागत है, तिनसों जमराज डराना है। यह सुजस तुम्हारे सांचेका, जस गावत वेद पुराना है॥ श्री०॥ ६॥ जिसने तुमसे दिलदर्द कहा, तिसका तुमने दुःख हाना है। अघ छोटा मोटा नाशि तुरित, सुख दिया तिन्हें मनमाना है॥ पावकसों शीतल नीर किया, औ चीर बढ़ा असमाना है। भोजन था जिसके पास नहीं, सो किया, कुबेर समाना है॥ श्री०॥ ७॥ चिंतामन पारस कल्पतरू, सुखदायक ये परधाना है। तुव दासनके सब दास यही, हमरे मनमें ठहराना है॥ तुव भक्तनको सुरइंद्रपदी, फिर चक्रपतीपद पाना है। क्या बात कहों विस्तार बड़ी; वे पावें मुक्ति ठिकाना है॥ श्री०॥ ८॥ गति चार चौरासी लाखविषें, चिन्मूरत मेरा भटका है। हो दीन बंधु करुणानिधान, अबलों न मिटा वह खटका है॥ जब जोग मिला शिवसाधनका, तब विघन कर्मने हटका है॥ तुम विघन हमारा दूर करो, प्रभु मोकों आश तुमारा है॥ श्री०॥ ९॥ गज ग्राहग्रसित उद्धार लिया, ज्यों अंजन तस्कर तारा है। ज्यों सागर गोपदरूप किया, मैनाका संकट टारा है॥ ज्यों सूलीतें सिंहासन औ बेड़ीको काट बिडारा है। त्यों मेरा संकट दूर करो, प्रभु मोकों आश तुमारा है॥ श्री०॥ १०॥ ज्यों फाटक टेकत पांय खुला, औ सांप सुमन करि डारा है। ज्यों खड्ग कुसुमका माल किया, बालकका जहर उतारा है॥ ज्यों सेठ

विपत चकचूरि पूर, घर लछमी सुख विस्तारा है । त्यों मेरा संकट दूर करो प्रभु, मोकों आश तुमारा है ॥ ११ ॥ जद्दपि तुमको रागादि नहीं, यह सत्य सर्वथा जाना हैं । चिनमूरत आप अनंत गुनी, नित शुद्ध दशा शिवथाना है ॥ तद्दपि भक्तनकी भीति हरो, सुख देत तिन्हें जु सुहाना है । यह शक्ति अचिंत तुम्हारीका, क्या पावै पार सयाना है ॥ श्री० ॥ १२ ॥ दुखखण्डन श्रीसुख-मंडनका, तुंपरा प्रन परम प्रमाना है । वरदान दया जस कीरतिका, तिहुँलोक धुजा फहराना है ॥ कमलाधरजी ! कमलाकरजी ! करिये कमला अमलाना है । अब मेरी विथा विलोक रमापति, रंच न वार लगाना है ॥ श्री० ॥ १३ ॥ हो दीनानाथ अनाथहितू, जन दीन अनाथ पुकारी है । उदयागत कर्म विपाक हलाहल, मोह विथा विस्तारी है ॥ ज्यों आप और भवि जीवनकी, तत्काल विथा निरवारी है । त्यों "वृन्दावन" यह अर्ज करे, प्रभु, आज हमारी वारी है ॥ श्री० ॥ १४ ॥

(७)

शैर ।

हो दीनबंधु श्रीपति करुणानिधान जी । यह मेरी विथा क्यों न हरो वार क्या लगी ॥ टेक ॥ मालिक हो दो जहानके जिनराज आपही । ऐबो हुनर हमारा तुमसे छिपा नहीं ॥ वेजानमें गुनाह मुझसे बन गया सही । ककरीके चोरको कटार मारिये नहीं ॥ हो दीनबंधु०॥ दुखदर्द दिलका आपसे जिसने कहा सही । मुश्किल कहर बहरसे लिया है भुजा गही ॥ जस वेद औ पुरानमें प्रमान हैं यही । आनंदकंद श्रीजिनंद देव है तुही ॥ हो दीनबंधु०॥ हाथीपै

चढ़ी जाती थी सुलोचना सती। गंगामें ग्राहने गही गजराजकी गती। उस वक्तमें पुकार किया था तुम्हें सती। भय टारके उबार लिया है कृपापती॥ हो दीनबंधु०॥ पावक प्रचंड कुंडमें उमंड जब रहा। सीतासे शपथ लेनेको तब रामने कहा॥ तुम ध्यानधार जानकी पग धारती तहां। तत्काल ही सर स्वच्छ हुआ कौंल लह लहा॥ हो दी०॥ जब चीर द्रोपदीका दुशासनने था गहा। सब ही सभाके लोग थे कहते रहा हहा। उस वक्त भीर पीरमें तुमने करी सहा। परदा ढका सतीका सुजस जक्तमें रहा॥ हो दीनबंधु०॥ श्रीपालको सागरविषै जब सेठ गिरया। उनको रमासे रमनेको आया वो बेहया॥ उस वक्तके संकटमें सती तुमको जो ध्याया। दुखदंद फंद मेटके आनंद बढ़ाया॥ हो दीनबंधु०॥ हरिषेनकी माताको जहां सौत सताया। रथ जैनका तेरा चले पीछे यों बताया॥ उस वक्तके अनसनमें सती तुमको जो ध्याया। चक्रोस हो सुत उसकेने रथ जैन चलाया॥ हो०॥ सम्यक्तशुद्ध शीलवती चंदना सती। जिसके नगीच लगती थी जाहिर रती रती॥ बेरीमें परी थी तुम्हें जब ध्यावती हती। तब वीर धीरने हरी दुखदंदकी गती। जब अंजना सतीको हुआ गर्भ उजारा। तब सासने कलंक लगा घरसे निकारा॥ वन वर्गके उपसर्गमें तब तुमको चितारा। प्रभुभक्त-व्यक्त जानिके भय देव निवारा॥ हो०॥ सोमासे कहा जो तु सती शील विशाला। तो कुंभतें निकाल भला नाग जु काला॥ उस वक्त तुम्हें ध्यायके सती हाथ ही डाला। तत्काल ही वह नाग हुआ फूलकी माला॥ हो०॥ १०॥ जब राजरोग था हुआ श्रीपालराजको। मैना सती तब आपकी पूजा इलाजको॥

तत्काल ही सुंदर किया श्रीपालराजको। वह राजरोग भाग गया मुक्तराजको ॥ हो० ॥ ११ ॥ जब सेठ सुदर्शनको मृषा दोष लगाया। रानीके कहे भूपने सूलीपै चढ़ाया ॥ उस वक्त तुम्हें सेठने निज ध्यानमें ध्याया। सुलीसे उतारकरको सिंहासनपै बिठाया। ॥ हो० ॥ १२ ॥ जब सेठ सुधन्नाजीको वापीमें गिराया। ऊपरसे दुष्ट था उसे वह मारने आया ॥ उस वक्त तुम्हें सेठने दिल अपनेमें ध्याया। तत्काल ही जंजालसे तब उसको बचाया ॥ हो० ॥१३॥ एक सेठके घरमें किया दारिद्रने डेरा। भोजनका ठिकाना भी न था सांझ सवेरा ॥ उस वक्त तुम्हें सेठने जब ध्यानमें धरा। घर उसकेमें तब कर दिया लक्ष्मीका बसेरा ॥ हो० ॥१४॥ बलि वादमें मुनिराजसों जब पार न पाया। तब रातको तलवार ले शेठ मारने आया। मुनिराजने निजध्यानमें मन लीन लगाया। उस वक्त हो प्रत्यक्ष तहां देव बचाया ॥ हो० ॥ १५ ॥ जब रामने हनुमंतको गढ़ लंक पठाया। सीताकी खबर लेनको सहसैन्य सिधाया ॥ मग बीच दो मुनिराजकी लख आगमें काया। झट वार मूसलधारसे उपसर्ग बुझाया ॥ हो० ॥१६॥ जिनन थहीको माथ निवाता था उदारा। घेरेमें पड़ा था वह कुलिशकरण विचारा। उस वक्त तुम्हें प्रेमसे संकटमें उचारा। रघुवीरने सब पीर तहां तुरत निवारा ॥ हो० ॥ १७ ॥ रणपाल कुँवरके पड़ी थी पांवमें बेरी। उस वक्त तुम्हें ध्यानमें ध्याया था सबेरी ॥ तत्काल ही सुकुमारकी सब झड़ पड़ी बेरी। तुम रायकुँवरकी सभी दुखदन्द निबेरी ॥ हो० ॥ १८ ॥ जब सेठके नन्दनको डसा नाग जु कारा। उस वक्त तुम्हें पीरमें धर धीर पुकारा ॥ ततकाल ही उस बालका विष भूर उतारा। वह

जाग उठा सोके मानों सेज सकारा ॥ हो० ॥ १९ ॥ मुनि मानतुङ्गको दई जब भूपने पीरा ॥ तालेमें किया बन्द मरी लोह जँजीरा ॥ मुनि ईशने आदिशकी स्तुतिकी है गमीरा । चक्रेश्वरी तब आनीके झट दूरकी पीरा ॥ हो० ॥ २० ॥ शिवकोटने हट था किया सामंतभद्रसों । शिवपिंडकी बन्दन करौ शंकौ अभद्रसों ॥ उस वक्त स्वयम्भू रचा गुरु भाव भद्रसों । जिनचन्द्रकी प्रतिमा तहां प्रगटी सुभद्रसों ॥ हो० ॥ २१ ॥ सूवेने तुम्हें आनके फल आम चढ़ाया । मेंडक ले चला फूल भरा भक्तिका भाया ॥ तुम दोनोंको अभिराम स्वर्गधाम बसाया । हम आपसे दातारको लख आज ही पाया ॥ हो० ॥ २२ ॥ कपि स्वान सिंह नेवल अज बैल बिचारे । तिर्यंच जिन्हें रंच न था बोध चितारे ॥ इत्यादिको सुरधाम दे शिव धाममें धारे । हम आपसे दातारको प्रभु आज निहारे ॥ हो० ॥ २३ ॥ तुम ही अनन्त जन्तुका भय भीर निवारा । वेदो पुराणमें गुरू गणधरने उचारा ॥ हम आपकी शरणागतीमें आके पुकारा । तुम होप्र त्यक्ष कल्पवृक्ष इच्छिताकारा ॥ हो० ॥ २४ ॥ प्रभु भक्त व्यक्त जक्त भक्त मुक्तके दानी । आनन्दकन्द वृन्दको हो मुक्तके दानी ॥ मोह दीन जान दीनबन्धु पातक भानो । संसार विषम खार तार अन्तरजामी । हो० ॥ २५ ॥ करुणानिधानवानको अब क्यों न निहारी । दानी अनन्तदानके दाता हो सँभारी ॥ वृपंचन्दनन्द वृन्दका उपसर्ग निवारौ । संसार विषम खारसे प्रभु पार उतारौ ॥ हो दीनबन्धु श्रीपति करुणानिधानजी । अब मेरी व्यथा क्यों न हरौ वार क्या लगी ॥ २६ ॥

दोहा ।

जासु धर्म पर भावसौं, संकट कटत अनंत । मंगलमूरति देव मो, जैवंतो अरहन्त ॥१॥ हे करुणानिधि सुजनको, कष्टवषैं लखि लेत । तजि विलंब दुख नष्ट किय, अब विलंब किंह हेत ॥ २ ॥

षट्पद ।

तब विलंब नहिं कियो, दियो नमिको रजताचल । तब विलंब नहिं कियो, मेघवाहन लंकाथल ॥ तब विलंब नहिं कियो, शेठ सुत दारिद भंजे । तब विलंब नहिं कियो, नाग जुज सुरपद रंजे ॥ इमि चूरि भूरि दुख भक्तके, सुख पूरे शिवतियरवन । प्रभु मोर दुःखनाशनविषैं, अब विलंबकारन कवन ॥३॥ तब विलंब नहिं कियो, सिया पावक जल कीन्हौं । तब विलंब नहिं कियो, चंदना शृंखल छीन्हौं ॥ तब विलंब नहिं कियो, चीर द्रुपदीको बाढ्यौ । तब विलंब नहिं कीयो, सुलोचन गंगा काढ्यौ ॥ इमि चूरि भूरि दुख भक्तके, सुख पूरे शिवतियरवन । प्रभु मोर दुःख नाशनविषैं, अब विलंब कारन कवन ॥ ४ ॥ तब विलंब नहिं कियो, सांप किय कुसुम सु माला । तब विलंब नहिं कियो, उर्मिला सुरथ निकाला ॥ तब विलंब नहिं कियो, शीलबल फाटक खुल्ले । तब विलंब नहिं कियो, अंजना वन मन फुल्ले ॥ इमि चूरि भूरि दुख भक्तके, सुख पूरे शिवतियरवन । प्रभु मोर दुःखनाशनविषै, अब विलंब कारन कवन ॥ ५ ॥ तब विलंब नहिं कियो, शेठ सिंहासन दीन्हौं । तब विलंब नहिं कियो, सिंधु श्रीपाल कढ़ीन्हौं ॥ तब विलंब नहिं कियो, प्रतिज्ञा वज्रकर्ण पल । तब विलंब नहिं कियो,

सुधन्ना काढ़ि वापि थल ॥ इम चूरि भूरि दुख भक्तके, सुख पूरे शिवतियरवन । प्रभू मोर दुःखनाशनविषैं, अब विलंब कारन कवन ॥ ६ ॥ तब विलंब नहिं कियो, कंस मय त्रिजुग उबारे । तब विलंब नहिं कियो, कृष्णसुत शिला उतारे ॥ तब विलंब नहिं कियो खड्ग मुनिराज बचायो । तब विलंब नहिं कियो, नीरमातंग उचायो ॥ इमि० ॥ टेक ॥ ७ ॥ तब विलंब नहिं कियो, शेठ सुत निरविष कीन्हों । तब विलंब नहिं कियो, मानतुंगबंध हरीन्हों ॥ तब विलंब नहिं कियो, वादिमुनिकोढ़ मिटायो । तब विलंब नहिं कियो, कुमुद जिन पास मिटायो ॥ इमि० ॥ टेक ॥ ८ ॥ तब विलंब नहिं कियो, अंजनाचोर उबारे । तब विलंब नहिं कियो, पूरवा भील सुधारे ॥ तब विलंब नहिं कियो, गृद्धपक्षी सुंदर तन । तब विलंब नहिं कियो, मेक दिय सुर अद्भुत तन ॥ इमि० ॥ टेक ॥ ९ ॥ इहविधि दुखनिरवार, सारसुख प्रापति कीन्हों । अपनो दास निहारि भक्तवत्सल गुन चीन्हों ॥ अब विलंब किहिं हेत, कृपा कर इहां लगाई । कहा सुनो अरदास नाहिं, त्रिभुवनके राई ॥ जनवृंद सुमनवचतन अबै, गही नाथ पद शरन सुध । ले दयाल मम हालपै, कर मंगल मंगलकरन ॥ १० ॥

(९)

जिनवचनस्तुति ।

हो करुणासागर देव तुमी निर्दोष तुमारा वाचा है । तुमरे वाचामें हे स्वामी, मेरा मन सांचा राचा है ॥ टेक ॥ १ ॥ बुधि केवल अप्रतिछेदविषैं, सब लोकालोक समाना है । मनु ज्ञेय गरास विकास अटक, झलाझल जोत जगाना है ॥ सर्वज्ञ तुमी सब व्यापक

हो निरदोष दशा अमलाना है । यह लच्छन श्रीअरहंत वीना, नहिं और कहीं ठहराना है ॥ हो क.रु० ॥ २ ॥ धर्मादिक पंच वसैं जहँ लौं, वह लोकाकाश कहावै है । तिस आगैं केवल एक अनंत, अलोककाश रहावै है ॥ अवकाश अकाशविषैं गति औ, थिति धर्म अधर्म सुभावै है । परिवर्तन लच्छन काल धरै, गुणद्रव्य जिनागम गावै है ॥ हो क.रु० ॥ ३ ॥ इक जीवो धर्माधर्म, दरब ये, महा असंख्यप्रदेशी है । आकाश अनंतप्रदेशी है, ब्रह्मंड अखंड अलेशी है ॥ पुग्गलकी एक प्रमाणूसो, यद्यपि वह एकप्रदेशी है । मिलनेकी सकति स्वभावोंतैं होती बहु खंध सुथेशी है ॥ हो करु० ॥४॥ कालाणू भिन्न असंख अणू, मिलनेकी शक्ति न धारा है ॥ तिसतैं कायाकी गिनतिमें, नहिं काल दरबको धारा है ॥ हैं स्वयंसिद्ध षट्द्रव्य यही, इनहीका सर्व पसारा है । निर्वाध जथारथ लच्छन इनका, जिनशासनमें सारा है ॥ हो करु० ॥ ५ ॥ सब जीव अनंत प्रमान कहे, गुन लच्छन ज्ञायकवंता है । तिसतैं जड़ पुग्गल मूरतकी, हैं वर्गगरान अनंता है ॥ तिसतैं सब भाविनकाल समयकी, गण अनंत अनंता है । यह भेद सुभेदविज्ञान विना, क्या और न को दरसंता है । हो० ॥६॥ इक पुग्गलकी अविभाग अणू, जितने नभमें थिति कीना जो । तितनेमहँ पुग्गल जीव अनंत, वसैं धर्मादि अछीना जी ॥ अवगाहन शक्ति विचित्र यही, नभकी वरनी परवीनाजी । इसही विधिसों सब द्रव्यनिमें, गुन शक्ति वसै अनकीना जी ॥ हो० ॥७॥ इक काल अणूपरतें दुतियेपर, जाहि जबै गत मंदी है । इक पुग्गलकी अविभाग अणू, सो समय कही निरद्वंदी है ॥ इसतैं

नहिं सूच्छमकाल कोई, निरअंश समय यह छंदी है। यातैं सब काळप्रमान बँधा, वरनी श्रुति जैति जिनंदी है ॥ हो० ॥८॥ जब पुग्गलकी अविभाग अणू, अतिशीघ्र उताल चलानी है। इक समयमांहि सो चौदह राजू, जात चली परमानी है ॥ परसे तहँ सर्वपदारथकों, क्रमसों यह भेद विधानी है। नहि अंश समयका होत तहाँ, यह गतिकी शक्ति बखानी है ॥ हो० ॥ ९ ॥ गुन द्रव्यनिके आधार रहैं, गुनमें गुन और न राजैहै। न किसी गुणसों गुन और मिलैं, यह और विरुच्छन साजै है। ध्रुव वे उतपाद सुभाव लिये, तिरकाल अबाधित छाजै है। षट हानि वृद्धि सदीव करें, जिनवैन सुनें भ्रम भाजै है ॥ हो० ॥ १० ॥ जिम सागरबीच कलोल उठी, सो सागरमांहि समानी है। परजै करि सर्व पदार्थमें तिमि, हानि वृद्धि उठानी है ॥ जब शुद्ध दरबपर दृष्टि धरै, तब भेदविकल्प नशानी है। नयन्यासनतें बहु भेद सु तो परमान लियें परमानी है ॥ हो० ॥११॥ जितने जिनवैनके मारग हैं, तितने नयभेद विभाखा है। एकांतकी पच्छ मिथ्यात वही, अनेकांत गहैं, सुखसाखा है ॥ परमागम है सर्वंग पदारथ, नय इकदेशी भाषा है। यह नय परमान जिनागम साधित, सिद्ध करै अभिलाषा है ॥ हो० ॥ १२ ॥ चिन्मूरतके परदेशप्रती, गुन हैं सु अनंत अनंता जी ॥ न मिलैं गुन आपुसमें कबहूं सत्ता निज भिन्न धरंता जो ॥ सत्ता चिनमूरतकी सबमें, सब काळ सदा वरतंता जी। यह वस्तु सुभाव जथारथको, जिय सम्यकवंत लखंता जी ॥ हो० ॥१३॥ सविरोध विरोधविवर्जित धर्म, धरै सब वस्तु विराजै है। जहँ भाव तहां सु अभाव वसै, इन आदि अनंत सु छाजै है ॥

निरपेक्षित सो न सधै कहूं, सापेक्षा सिद्ध समाने है। यह अनेकांतसों कथन मथन करी, स्यादवाद धुनि गाजै है॥ हो० ॥ १४ ॥ जिस काल कथंचित अस्ति कही, तिस काल कथंचित नाहीं है। उभयातमरूप कथंचित सो, निरवाच कथंचित ताही है॥ पुनि अस्ति अवाच्य कथंचित स्यों, वह नास्ति अवाच्य कथा ही है। उभयातमरूप अकथ्य कथंचित, एक ही काल सुमाही है॥ हो० ॥१५॥ यह सात सुभंग सुभाव मयी, सब वस्तु अभंग सुसाधा है। परवादिविजय करिवे कहँ श्रीगुरु, स्यादहिवाद अराधा है॥ सरवज्ञतच्छ परोच्छ यही, इनो इत भेद अवाधा है। 'वृन्दावन' सेवत स्यादहिवाद कटै जिसतैं भवबाधा है॥ हो करुणासागर देव तुमी, निर्दोष तुमारा वाचा है। तुमरे वाचामें हे स्वामी, मेरा मन सांचा राचा है॥ हो० ॥ १६ ॥

(१२) समाधिशतक भाषा।

(लाला गुमानीलालजी कृत)

दोहा। श्री आदीश्वर चरणयुग, प्रथम नमों चित ल्याय। प्रगट कियो युग आदि वृष, भजत सुमंगल थाय॥ १ ॥ सन्मति प्रमुसन्मति करन, बन्दत विघ्न विलात। पुनः पंच परमेष्ठिको, नमो त्रिजग विख्यात॥ २ ॥ गौतम गुरु फिर शारदा, स्याद्वाद जिस चिन्ह। मंगल कारण तासको, नमों कुमतिहो भिन्न॥ ३ ॥ मंगलहित नमि देव श्री, अरिहंत गुरु निर्ग्रंथ। दया रूप वृष पोत भव, वारिधि शिवपुर पंथ॥ ४ ॥ इस विधि मंगल करनसे,

रहत उदंगल दूर। विघ्न कोटि तत्क्षण टरें, तम नाशत ज्यों सूर ॥ ५ ॥ श्री सर्वज्ञ सहाय मम, सुबुधि प्रकाशो आनि। तो कवित्त दोहानमें, रचों समाधि बखानि ॥ ६ ॥ मरण समाधि करें सु जो, सो नर जग गुण खान। इन्द्र चक्रपति हो पुनः, अनुक्रम ह्वै निर्वाण ॥ ७ ॥ देख गुमानीरामकृत, वचन रूप सुप्रबन्ध। लघुमति ता संकोचिकें, रचें सु दोहा छंद ॥ ८ ॥ पिंगल व्याकरणादि कछु, लखो नहीं मति बाल। कंठ राखनेके लिये, रचों बालवत ख्याल ॥ ९ ॥ लघु धी तथा प्रमादसे, शब्द अर्थ छल हीन। बुधजन सोधि उचरियो, हंसोनलख मतिक्षीण ॥१०॥ मंद कषाय भेसे जु हों, शांति रूप परणाम। तब समाधिविधि आदरें, मरण समाधिसु नाम ॥ ११ ॥ सो मैं अब दृष्टान्तयुत, कहों त्रियोग सम्हार। भवि अहिनिशि पढ्यो सुपढ़, करत मरण म उदार ॥ १२ ॥ छप्पय छन्द। सुता ज्यों गृह सिंहताहि इक पुरुष विचक्षण। जाग्रत किय ललकार सिंह उठ देख ततक्षण। हनन वृन्द रिपु तोहि निकट आयो यह तेरे ॥ सावधान हो चेत करो पुरुषारथनेरे। जबलों रिपु कुछ दूर हैं, कर सम्हाल जीतो तिन्हें ॥ यह महत्पुरुषकी रीति है, ढील किये आवतकनें ॥१३॥ वचन सुनत यों सिंह गुफासे बाहर आयो। गर्जो घन जिमि सुनो शत्रु हिय थिर न रहायो ॥ जीतनको असमर्थ लाजि हस्ती सब कांपे। निर्भय हरि पौरुष सम्हाल नहीं सके जो जापे ॥ त्यों सम्यग्ज्ञानीनरसुधी मरणसमयचिह्नसेनलख। तिहिंजीतन निजपौरुष जे सकलउपाधिक भावनख ॥ १४ ॥ आवतकाल तरस्य देख तब साहस ठाने ॥ कर्म संयोग संदेह इती स्थिति पूर्ण माने ॥ ताही-

से मम योग्य कार्य अब ढील न कीजे । जो चूकौ यह दांव घोर सन्सार पडीजे ॥ अतिकठिनकाकतालीयन्यों मनुजजन्म शुभवश लहा । सो वृथा गमाया धर्मबिन दौडदौड चहुंगतिवहा ॥१५॥ कर कषायं अति मन्द क्षमादिक दशवृष ध्यावे । अन्तर आत्म माहि शुद्ध उपयोग रमावे ॥ करे राग रुष मोह शिथिल अतिहीसो ज्ञानी । निरालम्ब चिद्रुप ध्यान धर बहु गुण खानी । तब रच रस स्वाद आवेघनोअतुल.भिन्न पांचो दरव । इसनिश्चयदृष्टि विशेकता लहै सुक्ख जो अकथ अव ॥१६॥ आनंद रत नित रहै ज्ञान मय ज्योति उजारी । पुरुषाकार अमूर्ति चेतना बहु गुण धारी ॥ ऐसा आतम-देव आप जानन बुधि पागी । पर द्रव्योंसे किसी भांति ना होवे रागी ॥ निज वीतराग ज्ञाता सुथिर अविनाशी पर जड़ लखा । वपुपूरनगलन अशाश्वता इमलखतिननिटरस चखा ॥ १७ ॥ समदृष्टी नर सदा मरणका भय ना माने । आयु अंत जब लखे स्वहितं तब याविधि ठाने ॥ आयु अल्प इस देह तनी अब रही दिखावे । अब काना मम चेत सावधानी यह दावे ॥ जिम रणभेरीके सुनतही सुभट जाय रिपुपर झुके । त्यों कालवलीके जीतने साहस ठाने मब चुके ॥ १८ ॥ सब जिय सोच विचार लखो पुद्गल परजायी । देखत उत्पति भई देखते अब खिर जायी ॥ मैं स्वरूप इस लखो विनाशिय पहिले याको । सो अब अवसर पाय विछै जांसी यह ताको ॥ मम ज्ञायक द्रष्टवारूप निज टाहि स्वेविधि आदरों । अव किसविधि देह नशे जु यह मैं तमाशगीरीकरों ॥ १९ ॥ मम स्वरूप द्रग ज्ञान सुक्ख वीर्य अनन्त मय । नर नारक पर्याय भेद बहु भये मृषानय ॥ जो पदर्थ त्रैलोकते सु तिन

ही के कर्ता। मैं चित अमल अड़ोल नहीं तिन कर्ता-हर्ता॥ वे आपहि बिछुडे मिलें पूरे गलें अचित सदा। तो देह रखाया क्यों रहे मूल भर्म न पड़ों कदा ॥२०॥ सवैया। ॥२१॥ काल अनादि मरो दुःखमैं पर द्रव्योंसे एकहि मानो। कालवली दृढगढ ग्रसौ लहि जन्म जरामरण फिर ठानो॥ खेद लहो वश मोहतने सु विचार सजे अब मूल दिखानो। मैं निज ज्ञायक-भावनको कर्ता अरु मुक्त सदा स्थिर जानो॥ २१॥ मोहतसंगसे देहपूजे जगमो निकसे तनको सब जोरें। मानत देहरु जीव एकत्र नशे यह तो शठ रोय पुकारें॥ हाय पिता त्रियपुत्र कलत्र सुमात हितु कहां जाय पधारें। और अनेक विलाप करें अति खेद कलेश-वियोग पसारें ॥२२॥ एम विचार करें सु विचक्षण अक्षण देख चखो जग जाई। कौन पिता त्रिय पुत्र हितू सो कलत्र यहां किनको कौन-माई॥ को गृह माल कहा धन भूषण जात चली किनकी ठकु-राई। ये सब वस्तु विनस्वर ज्यों स्वप्नेमें राज्य करे नर भाई ॥२३॥ देखत इष्ट लगे यह वस्तु विचारत ही कुछ नाहिं दिखावे। सो इम जान ममत्व सुमान त्रिलोकमें पुद्गल जो इद आवे॥ देह स्नेह-तजो तिस ही विधि रञ्चक खेद नमो चित्त पावे॥ जाउरहो यह देह प्रतक्ष विगार सुधार न मोह लखावे ॥२४॥ देखहु मोहतनी महिमा पर द्रव्य प्रत्यक्ष विनाशिक ढेरी। है दुख मूल उभय भवमें जगजीव सबे इसमाहिं फंसेरी॥ मूरख प्रीतिकरे अतिही अपना तन-जान रखावन हेरी। मैं इकज्ञायक भाव धरें सो लखों इस काल शरीर-को वेरी ॥२५॥ दोहा। माखी बैठे खांड पर, अग्नि देख भगजाय। काल देहको त्यों भखे, मो लख थिर न रहाय॥ २६॥ मरण योग्य

पहिले मुआ, जीया मृतक न होय। मरण दिखावत नाहि मम, भर्मगया सब लोय ॥२७॥ सवैया २३। चेतनके मरणादिक व्याधि लखि न त्रिलोक त्रिकाल मझारे। तो अब सोच करो किस काज अनंत दृगादिक भावको धारे॥ ता अवलोकत दुःख नशे ममज्ञान पियूषसु पूरितसारे। ज्ञायक ज्ञेयनको यह जीवपै ज्ञेयसे भिन्न अनाकुल न्यारे॥२८॥ व्यापक चेतन ठौहरीठौर यथा इकलौन डलीरस पागो। त्यों मैं ज्ञानका पिंडहूं पै व्यवहारसे देहप्रमाणसो लागो। निश्चय लोक प्रमाणाकार अनंत सुखामृतसे अनुरागो। मूषमही गल मोम-गयो नम युक्त तदाकृति देखहु सागो॥२९॥ दोहा। मैं अकलंक अवंक थिर, मिलत न काहू मांहि। नशो देह भावे रहो, हमें न किहिं विधि चाहि॥३०॥ छप्पय छंद। कहै एक नर सोच देह तुम्हरी तो नाहीं। पर याके संग ध्यान शुद्ध उपयोग लहाहीं। एता वपु उपकार कहौं सुन थिर चित माई॥ रत्न द्वीप नर आय एक झोंपडी बनाई। वहुरत्न एकठाकर अग्निलगी बुझावे तबसुनर। अबबुझत न जाने झोंपडी रत्न ले भागे सु नर॥३१॥ दोहा। त्यों मम संयम गुण सहित, रहो देह ना वैर। नशत उभय तो जानिये, संयम राखो चेर॥३२॥ संयम रहता देह बहु, क्षेत्र विदेहा जाय। तप कर चक्री इंद्र हो, अनुक्रम शिव थल पाय॥३३॥ मोह गयो आकुल गई; ध्यान चिगावे कौन। इन्द्र चक्र धर्नेद्रसुर, विष्णु महेश्वर जौन॥३४॥ सवैया—देह स्नेह करी किस कारण यह वपु ज्यों चपला चमकाई। नाहिं उपाव रखावनको कछु, औषधि मंत्ररु तंत्र बनाई। जो थितिपूरण होई तबे सुर इन्द्र नरेंद्र हरा मृत्य थाई। दाव बनो हितसाधनको वहुलोग चिगावहि मैं न चिगाई॥ ३५॥

(कुटुंबादि ममत्व त्याग) छप्पय छंद। अब कुटुम्बके लोग सुनो हित सीख हमारी। ए ताही सम्बन्ध देह तुम्हरो अवधारी। तुम राखत ना रहै सोच अपना कर भाई। यह गति सबकी होई चेत देखो पितु माई। मो करुणाभावति तुम तनी खेद धार क्यों दुःख-मनो। वृषधारयोग निजसुथिर हो ममत्वनसे अजत जो॥ २६॥ सवैया—जो दृढ़ व्याधि ग्रसे तन अन्त सु वेदना दुर्जय आवत तेरी कारण तास तने परणाम चिगे लख साहससे बुद्धि फेरी। पूर्व संचित कर्म उदय फल आय लगो गद ने वपु घेरी। भिन्नदशा मम रूप निराकुल है शरणानिज आतमकेरी॥ २७॥ छप्पय छंद। शरण पंच परमेष्ट वाह्य जिन वृष जिनवाणी। रत्नत्रयदश धर्म शरण सुनहो चिद् ज्ञानि। और शरण कोई नाहि नेम हमने यह धारो। इस विधिसे उपयोग थाम कर एम विचारो। अरिहन्त देव गुरुद्रव्य गुण, पर्यायन निर्णय करै। तबनिज सुरूपमें आयकर, साहससे दृढथिति धरै॥२८॥ सवैया २३। वपु मातपिता तुम एम सुनो ममदेह स्नेह वृथा तुम धारो। को तुमको मैं हाटतनी गति प्रातप्रयानकरै जन सारो। रीति धरो यटहंट तनीतुम अन्तरके दृगखोल विचारो। आपतनो दृढ सोच करो तुम आतम द्रव्य अनाकुल न्यारो॥२९॥ छप्पय छंद। यह सब मरसी काल कालसे बचे न कोई। देव इन्द्र थिति पूर्णदेख सुख रहे जु सोई॥ यम किंकर ले जांय आपनी कथा कौन है। तन धारे सो मरे वृथा कर खेद जो न है॥ यह आजकाल मुवा मनुज सुन प्रति तिना आदरो। यह निरोपाय जगरीति है जिनवृषमन साहस धरो॥

(स्त्री ममत्व त्याग)

सवैया २३। हे त्रिय देहतनी सुनसीख स्नेह तजो वपुसे अब प्यारी। देहसतो सम्बन्ध इतो अब पूर्ण हुओ नहीं खेद पसारो। कार्यसरे नहीं या तनसे तुम राखहु नांहि रहै तन नारी। पुद्गलकी पर्याय त्रिया नर सोच लखो दृग खोल निहारी॥ ४१॥ छप्पय छंद। भोग बुरे भव रोग बढावत वैरीजीके। होवे विरस विपाक समय लगें सेवत नीके॥ एकेंद्री वश होई विपति अतिसे दुख पायो। कुंजर झखअलि सलभ हिरण इन प्राण गमायो॥ पंच करन वश होई जो जुगति घोर दुःखपावहि। इन त्याग त्रिया संतोष मन, जो मम नार कहावही॥४२॥ भोग किये चिरकाल घने त्रिय-कार्य सरो न कछू सुख पायो। इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग निरन्तर आकुलताप तपायो॥ दुर्लभ जन्म सु बीत गयो अब कालके गाल-हिमें वपु आयो। सो त्रिय राखन कौन समर्थ वृथा कर खेद सो जन्म नशायो॥४३॥ छप्पय छंद। जो प्यारी मम नारि सीख हित चित्त धरीजो। शीलरत्न दृढ़ राखतत्व श्रद्धान सु कीजो॥ धर्म विना भव भ्रमे काल बहु हम तुम सबही। गति चारों दुःखरूप धरीं वृष गह्यो न कबही। अब मम सुख वांछे नार तू, वृष दृढाव तज आसतें। तुम भावनको फलभोग ही, शीघ्र जाहु मोक्षासतें॥४४॥ दोहा। नारि बुलाय सम्बोधि इम, सीख दई हितसाज। अवनिज पुत्र बुलाइयो, ममत्व निवारण काज॥४५॥

पुत्रादि ममत्व त्याग।

छप्पय छंद। पुत्र विचक्षण सुनो आयु पूर्ण अब म्हारी। तुम ममत्व बुद्धि तजो खेद दुखको कातारी। श्री जिनवर कर

धर्म भलीविधि पालन किजो । पूजा जप तप दान शीलसम्यक्त्व गही जो । फिर लोक निंद्य कार्य तजो, साधर्मिन से हित करो । तुमयुग भव सुख हो है सु सुत, सीख हमारी उर धरो ॥ ४६ ॥ सवैया २३ । देह अपावन वस्तु जगत्रय की या संगसे मैली । कर्म गढ़ी घन अस्थि जड़ी चर्म मढ़ी मल मूत्रकी थैली ! नव मल द्वार स्रवें वसु जाम कुवास विनावनकी वपु गैली । पोषत हो दुःखदोष करे सुत सोखत याहि मिले शिव सैली ॥ ४७ ॥ दोहा । जो तुम राखें देह यह, रहैं तो राखे धीर । मैं बरजो नातोहि सुत, करो सोच निज वीर ॥ ४८ ॥ मैं अनुक्रमसे गति सबनि, यहीं होयगी मीत । जिन वृष नवका बैठके, भव जल तर तज भीति ॥ ४७ ॥ दया बुद्धिसे सीख मैं, भई तोहि छल पीर । होनहार तुम होइ जो, रुचे सो कीजो धीर ॥ ५० ॥ यों कह सब परिवार त्रिय, सुत मित्रादिक भूर । मरण विगाड़न छल तिनें, किये पाससे दूर ॥ ५१ ॥ जो भ्राता सुत आदि गृह, भार चलावन योग । सौंप ताहि हित सीख दे, तजे जगतका रोग ॥ ५२ ॥ और मनुष्योंसे कछू, बतलानेको होई । ते बुलाय बतलाय कुछ, सल्य न राखे कोई ॥ ५३ ॥ दया दान अरु पुण्यको, जो कुछ मनमें होई । सो अपने कर से करे, करे विलम्ब न कोई ॥ ५४ ॥ साधर्मि पंडीत निकट, राखे इम बतलाय । मो परणाम लखो गिरे, तुम दृढ कीजो भाई ॥ ५५ ॥ छप्पय छंद । अब सम-दृष्टी पुरुष काल निज निकट सुजाने । तब सम्हाल पुरुषार्थ सत्य तज साहस ठाने ॥ शक्ति सार धर नेम एम मर्यादा लीजे । कर परिग्रह परिमाण रूप निज अनुभव कीजे । यह संशय

मन होइ जो, पूर्ण आयु न हो कदा। सवैया २३॥ शक्तिप्रमाण कहो गुरु त्यागपै, शक्ति छिपाय नहीं कुछ त्यागे। शक्ति छिपाय के त्याग करे प्रमादका दोष समाधिको लागे। और अभक्ष्य जानत औषधि, धांतु रसादिकसे नहीं पागे। छोडे जगत्त्रयकी आशा तब, अन्तर आतम ज्योतिसुजागे। ५७। छप्पय छंद। उतर खाटसे भूमि माहिं दृढ आसन मांडे। साधर्मिनको निकटसे सु इक टुक नहीं छांडे॥ शिथिल होइ जो मात्र कहा अनुभवसे कोई। कर विचार पुन तत्व देव गुरु निर्णय जोई॥ इम खेंच थाप उपयोग शुचि आत्मरूप रमावही। इम काल व्यतीत करे सुतब निपट निकट थिति आवही॥ ५८॥ दोहा। तब द्वादश भावन भजें, तीक्ष्ण दुःख हो हान। सो वरणों संक्षेपसे, भवि नित करो बखान॥ ५९॥ सवैया—यौवनरूप त्रियातन गोधन भोग विनश्वर हैं जगभाई। ज्यों चपला चमके नभमें जिमि, मंदिर देखत जात विलाई। देव खगादि नरेंद्र हरी मरते न बचावत कोई सहाई। ज्यों मृगको हरिदौड दले बन रक्षक ताहि न कोई रखाई॥६०॥ जीव भ्रमें गतिचार सहे दुःख लाख चौरासी करे नित फेरी। पै न लहो सुख रंच कदा संसारको पार लहो न कदेरी। पूर्व जो विधिबन्ध किये फल भोगत जीव अकेलही तेरी। पुत्र त्रिया नहिं शीर करें सब स्वार्थ मीर करें वपु केरी॥६१॥ ज्यों जल दुधको मेल जियातन भिन्न सदा नहीं मेलको धारे। तो प्रत्यक्ष जुदे धनधाम मिलें न कभी निज भाव मझारे। देह अपावन अस्थि पलादिकी रोग अनेक सो पूरित सारे। मूत्र मली घर है सुगली नवद्वार स्रवें किमि कीजिये प्यारे॥ ६२॥ आस्रवसे यह जीव भ्रमें भवयोग

चलाचलसे उपजेंगे । दुःख लहो त्रिकाल घनोरचि जो त्रुधिवन्त तिन्हें सुन जेंगे । पुण्यरुपापदुहू तजके निज आतमकी अनुभूति सजेंगे । आवत कर्मनको बरजें तब संवर भाव सुधी सु भजेंगे ! ॥ ६३ ॥ कर्म झडे निजकालहि पायन कार्य सरे तिनसे जिय केरो । जो तपसे विधि हानि करें कर निर्जरासे शिवमाहि बसेरो। जो षटद्रव्य मई यह लोक अनादिको है न करो किहि केरो । एक जिया भ्रम तो चिरको दुःख भोगत नाहि तजे भव फेरो ॥६४॥ अन्तम ग्रीवक हद लहो पद सम्यक ज्ञान नहीं कहूं पायो। आतमबोध लहो न कभी अति दुर्लभ जो जगमें मुनि गायो। मोहसे भाव जुदे लखके दृगज्ञान वृतादिक भाव बतायो । धर्म यही कहिए परमारथ या विधि द्वादश भावना भायो ॥६५॥ दारुण वेदना आयुके अंतमें देहसरूप अनित्य विचारो । दुःख रु सुख तो कर्मनकी गति देह बधो विधिके संग सारो। निश्चयसें ममरूप दृगादिक देहरु कर्मन से नित न्यारो । तो मुझे दुःख कहा वपुके संग पूर्व कर्म विपाव चितारो ॥६६॥ देहनकी बहुवार जो अग्र इसी विधि अन्त सु कष्ट लहायो । पै न लखो निज आतमरूप नहीं कहुं जन्म समाधिहि पायो । या भवमें सब योग बनो निज कार्य सुधारनको मुनि गायो। कर्म अरीहरि मोक्ष त्रियावर पूर्ण सुख लहो सु सवायो ॥६७॥ काल अनादि भ्रमें जिय एकहि पंच परावर्तन कर फेरी । द्रव्यरु क्षेत्र सुकाल तथा भवभाव कथा तिनकी बहुतेरी । वार अनन्त किये तहां पूर्ण अन्त लहो भवका न कदेरी । को बरने दुःखकी जु कथा गुण राज थके बुधि अल्पजु मेरी ॥ ६८ ॥ नित्य निगोद सुथौन जिया तज जो व्यवहार राशि कहूं आयो । भाग्य उदय त्रिसकाय धरो

विकलत्रयमें रुल खेद लहायो। वा पंचेंद्रिय होई पशुः सब ला न हतो निबला हत खायो। भूख तृषा हिमताप तपो अतिभार बहो दृढ बन्धन पायो॥ ६९॥ देह तजी अति शंकट भावनसे तब सुभ्रतनी गति धायो। भूमितहां दुःख रूप इसी मनुकोटिन विच्छू-नने डस खायो। देह तहां कुमरोगन पूरित कंटक सेजनसे सु घिसायो। घातकरे दलसें मळके निज बैर भजो असुरान भिडायो॥ ७०॥ मेरु प्रमाण गले तहां लोह हिमां तंप याविधिको मुनि गायो। नाज भखें सब लोक तनो न मिठे गद एक कणा न लहायो। सागर नीर पिये न बूझे तृष्णा जल बूंद न दृष्टी लखायो। को वरणे स्थिति सागरकी कहूं भाग्यउदय नरकी गति आयो। बास कियो नव मास अधोमुख मात जने दुःखसे जु घनेरो। बालपने गददन्त पलादिक ज्ञान बिना न मने बचनेरो। यौवन मामिन संग रचे जु कषाय जली गृह भार बडेरो। पुत्र उछाह सु हर्ष बढ़ो सु वियोगसे आकुल ताप तपेरो॥ ७२॥ द्रव्य उपार्जन कष्ट सहे अब यों करनो यह तो हम कीनो। संतत भोग न तो दुःख भोग कुपुत्र कुनार तने दुःख भीनो। पीड़ित रोग दरिद्र फंसे अति आकुल से कर बंध नवीनो। आरति ठान भलो सिख मान सो मूढ कभी सत्संग न कीनो॥७३॥ वृद्ध भयो तृष्णा जु दहो मुख लार बहै तन हालत सारो। वस्त्र सम्हाल नहीं तनकी वृषकी जु कथा तहां कौन उचारो। काल अचानक कंठ दबे तब खाय विना वृष यों तन प्यारो। चेतन कूच कियो तनसे सुकुटुम्बके इन्धनसे वपु जारो॥ निर्जरा कीन अकाम कभी लहि स्वर्ग तनी गति सुक्स सुमानो। हो विषया रस मत्त तहां अति आतुर भोग न चाह

दहानो। देख विभव पर झूर डसो जम माल लखी चयते विललानो आरतिसे मर कर्म ठगो जिय फेर भवार्णवमें भरमानो ॥७५॥ यों जु भ्रमो चिरकाल जिया विन सम्यक सुक्ख समाज न पायो। जन्म जरा मरणादिक रोग कलेश तनो कहुं अंत न आयो। आप स्वरूप विसार रचे पर दुःख चितारत फाटत कायो। तो अब यो दुःख नाहिं कछु लख सम्यककी हद चेतनरायो ॥७६॥ दोहा। ईस चिंतन कर वेदना, सवे निवारे सूर। फिर निर्भय नरसिंह वत, कहा करे हितपूर ॥ ७७ ॥ छप्पयछंद। शक्ति वचनकी रहै जैन श्रुत मुखसे गावे। या विन वचन न कहै नेम घर ममत्व नशावे ॥ निकट आयु लख पहर चार द्वे इक दिनकेरी। चउ विधि तज आहार परिग्रह द्वै विधिटेरी। पुनशक्ति देखतज जीव बहु जुदी जुदी शक्तिः धरे। इम नेम जाव जिय त्यागहित, साधनमें न कसर परे ॥७८॥ अंत सल्लेषणा माह आराधना चउ विधि ध्यावे। क्षण २ करे सम्हाल भाव कहूं डिगन न पावे ॥ करदृढ़ तत्व प्रतीति धार सम्यक निरखेदे। वेदना तीक्ष्ण निपट ताहि अन्तर नहीं वेदे ॥ जब वचन बंद होता लखे, तब सुवचनसे यों कहब। तुम जिनवानी पढ़ियो जुबहु, प्रसत काल यह देह अब ॥ ७९ ॥ दोहा। परमेष्टी पांचोनको, रूप सु उर में धार। नमस्कार हित युत करे, फिर फिर कर शिरधार ॥ ८० ॥ जैनधर्म जिन विंब अरु, जिन वाणी जिनधाम। शुद्ध भावसे देव नव, तिनको करे प्रणाम ॥ ८१ ॥ कृत्याकृत्यम जिन भवन, सिद्ध क्षेत्र अवतार। तिनको वंदो भावसे, युगल पान शिरधार ॥ ८२ ॥ उत्तम क्षमा समस्तसे, कर हित मिति बतलाय। आप क्षमा करवायके, वैर न राखे माय ॥ ८३ ॥

मौन लहै तब धीर सो, अन्तरके दृग खोल ।. तजे राग रुप मोह सब, कर परणाम अडोल ॥ ८४ ॥ जबलौं शिथिल न होई तन, इंद्रिय बल मन दौर । तबलौ अनुभव कीजिये, प्रभू आतम गुण और ॥ ८५ ॥ शिथिल पडो जब जानिये, इंद्रिय तन मन द्वार । तब नवकार उचारिये, महा मंत्र जग सार ॥ ८६ ॥ सवैया ॥ २३ ॥ ज्ञानविना नर नारि पशुः हुइ योग मिले बड़ भाग सम्हारे । प्राण तजे नवकार उचारत तो गति नीच तनी नव धारे । अजन-चोर करी मृगराज अजासुत आदि जपे नवकारे । स्वर्ग तनो सुख वेग लयो शुभ बीजसे वृक्ष यथा शुभसारे ॥८७॥ दोहा ॥ मरण समय औषधि निपुण, दुःख नाशक सुखमूल । बार बार मंत्रहि जपे, तजे जगति दुःख शूल ॥ ८७ ॥ मैंटे वांछा सकल पुन, करे न बन्ध निदान । रत्नछोड़ काच न ग्रहै, त्यों समाधि फल जान ॥ ८९ ॥ सवैया २३ । जीव प्रदेश खिंच. तनसे दुःखसे नहीं आकुल ताप तपेंगे । जीति परीषह हो सुखरूप निरंतर सो नवकार जपेंगे । आसन जो शुचि होइ जिथा शुभ ध्यान धरें बसु कर्म छिपेंगे । कंठ लगे कफ आन जबे शुभ मूलसे वे दश प्राण चपेंगे ॥ ९० ॥ दोहा । या विधि अधिक सम्हालसे, तजें देह सुख मौन । शुभगति सन्मुख होइ कर, जीव करै गति गौन ॥ ९१ ॥ छप्पयछंद । जो समाधि आदरे तासु वान्छा मन भावे । कर उदार परमाण ताहि निशिदिन ही ध्यावे ॥ कब आवे वह घडी समाधि सु मरण करोंगो । अंत सल्लेषण माड़ कर्मरिपुसे जु लड़ोंगो ॥ यह चाह रहै निशिदिन जबे, कुगति बन्धना नह करे । सम्यक्त्ववान जग पुज्य हो, निश्चयसे शिवत्रिय वरे ॥९२॥

पंचम काल करालमें न संयम जो गाई। पर समाधि आदरे तास महिमा अधिकाई ॥ ताफल सुर गति लहै इंद्र चक्री नर राई। हो सब जग भोग विदेहां जन्म लहाई ॥ सुखभोगधार तपकर्महर, शिव सुन्दरि परणे सुजन। मुख एक थकी वरणों सुकिम, धन्य समाधि महिमा सुमन ॥ ९३ ॥ दोहा। देह अशुचि शुचिको यहां, कुछ न विचार करेह। पढे पाठ मंत्रहि जप, अशुचि सदां यह देह ॥ ९४ ॥ श्री काश्यप क्रम यमलको, नम विक्रम आन। द्वादागम दोषा सुधर, मूर्द्धन क्षनद विहान ॥ ९५ ॥ नाक कत्रा भ्रत तास रुच, रास्मन उदय रहन्त। शतक समाधि सु विस्तरो। तब लग जय जयवन्त ॥ ९६ ॥ सवैया २३। मंगलसे बहु विघ्न नशे यह पाठ सुपूर्ण मंगल कीने। है निमित्त वड वीरं दई शिख:श्रावक प्रेर उदासिय मीने। शखन कंठ सुहेत रचे सब जीव पढे सु समाधिहि चीन्हे। तास प्रमाण श्लोकनका युगसे जु पचास कही जु नवीने ॥ ९७ ॥ नाम समाधि शतक यथा इकसे इक छन्द कवित्त सु कीने। कर्त्ता मूल जिनेश गणी कपसे सो राम गुमानीजीने। ता अनुसार सो प्राण पुरामह छंद रचे लघु धी बदलीने। लक्ष्मणदास सो भ्रात बड़े तिनने यह सोधि समापति कीने ॥९८॥ दोहा। इक नव युग पर युग धरो, शुभ सम्वत्सर जान। भाद्रव धवल सु तीज गुरु, पूर्ण किया विधान ॥ ९९ ॥ यामें छंद रचे इते, दोहा पैंतालीस। पुन छप्पय इकवीस हैं, कवित रचे पैंतीस ॥ १०० ॥ संख्या सब श्लोक मिल, युगशत और पचास। अल्प बुद्धि वरणो सु यह, बुधजन सोधो जासु ॥१०१॥

॥ इति समाधिशतक छन्दबद्ध सम्पूर्णम् ॥

पांचवा खंड ।

(१) अकृत्रिमचैत्यालय पूजा ।

चौपाई ।

आठ किरोड़ रु छप्पन लाख । सहस सत्याणव चतुशत भाख ॥
जोड़ इक्यासी जिनवर नाच । तीनलोक आह्वन करान ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसबन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्र-चतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयानि अत्रावतरतावतरत । संवौषट् ।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रच-तुःशतैकाशीतिअकृत्रिमजिनचैत्यालयानि अत्र तिष्ठत तिष्ठत। ठः ठः

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रच-तुःशतैकाशीति अकृत्रिम जिन चैत्यालयानि अत्र मम सन्निहितानि भात भवत वषट् ।

छंद त्रिभंगी ।

छीरोदधिनीरं, उज्जल सारं, छान सुचीरं, भरि झारी ।
अति मधुरलखावन, परम सु पावन, तृषा बुझावन, गुण भारी ॥
वसुकोटि सु छप्पन लाख सताणव, सहस चारसत इक्यासी ।
जिनगेह अकीर्तिम तिहुंजगभीतर, पूजत पद ले अविनासी ॥१॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्र-चतुःशतैकाशीतिअकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो जलं निर्वपामि ॥ १ ॥

मलयागर पावन, चंदन बावन, तापबुझावन, घसि लीनो ।
धरी कनककटोरी, द्वै कर जोरी, तुमपद ओरी, चित दीनो ॥वसु०॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्धयष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रच-
तुःशतैकाशीतिअकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो चंदनं निर्वपामि ॥ २ ॥

बहुभांति अनोखे, तंदुल चोखे, लखि निरदोखे, हम लीने ।
धरि कंचनथाली, तुमगुणमाली, पुंजविशाली कर दीने ॥ वसु० ॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्धयष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रच-
तुःशतैकाशीतिअकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो अक्षतान् निर्वपामि ॥ ३ ॥

शुभ पुष्प सुभाती, है बहु भांती, अलि लिपटाती, लेय वरं ।
धरि कनक-रकेबी करगह लेवी, तुमपद जुगकी, भेट धरं ॥
वसुकोटि सुछप्पन, लाख सताणव, सहस चारसत, इक्यासी ।
जिनगेह अकीर्तिम तिहुंजगभीतर, पूजत पद ले, अविनाशी ॥४॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्धयष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रच-
तुःशतैकाशीतिअकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यः पुष्पं निर्वपामि ॥४॥

खुरमा गिंदौड़ा; बरफी पेड़ा, घेवर मोदक, भरि थारी ।
विधिपूर्वक कीने, घृतपयभीने, खंडमें लीने, सुखकारी ॥ वसु० ॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्धयष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रच-
तुःशतैकाशीतिअकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामि ॥ ५ ॥

मिथ्यात महातम, छाय रह्यो हम, निजभव परणति, नहिं सूजे ।
इहकारण पाकैं, दीप सजाकैं, थाल धराकैं, हम पूजैं ॥ वसु० ॥६॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्धयष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रच-
तुःशतैकाशीतिअकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो दीपं निर्वपामि ॥६॥

दशगंध कुटाकें, धूप बनाकें, निजकर लेकें; धरि ज्वाला ।
तसु धूम उड़ाई, दशदिश छाई, बहु महकाई; अति आला ॥वसु०॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसह-स्रचतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो धूपं निर्वपामि ॥७॥

बादाम छुहारे, श्रीफल धारे, पिस्ता प्यारे, द्राखवरं।
इनआदि अनोखे, लखिनिरदोखे, थापलजोखे, भेट धरं॥ वसु०॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसह-स्रचतुःशतैकाशीति अकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यः फलं निर्वपामि ॥८॥

जल चंदन तंदुल, कुसुम रु नेवज, दीप धूप फल, थाल रचौं॥
जयघोष कराऊं, बीन बजाऊं, अर्घ चढ़ाउं, खूब नचौं॥ वसु०॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्र-चतुःशतैकाशीतिअकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामि ॥९॥

अथ प्रत्येक अर्घ।

चौपाई।

अधोलोक जिन आगमसाख। सात कोड़ि अरु बहत्तर लाख॥
श्रीजिनभवनमहा छवि देइ। ते सब पूजौं वसुविध लेई॥ १॥

ॐ ह्रीं मध्यलोकसम्बन्धिसप्तकोटिद्विसप्ततिलक्षाकृत्रिमश्री-जिन चैत्यालयेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामि॥ १॥

मध्यलोकजिनमंदिरठाठ। साढ़ेचारशतक अरु आठ॥
ते सब पूजों अर्घ चढ़ाय। मनवचतन त्रयजोग मिलाय॥ २॥

ॐ ह्रीं मध्यलोकसम्बन्धिचतुःशताष्टपञ्चाशतश्रीजिनचै-त्यालयेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामि॥ २॥

अडिल्ल।

उर्द्धलोककेमाहिं भवनजिन जानिये।
लाख चौरासी सहस सत्यानव मानिये॥

तापै धरि तेईस जजौं शिरनायकैं।
कंचनथालमझार जलादिक लायकैं॥ ३॥

ॐ ह्रीं ऊर्द्धलोकसम्बन्धिचतुरशीतिसप्तनवति सहस्रत्रयोविंशति श्रीजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घ्यम्॥ ३॥

गीताछन्द।

वसुकोटि छप्पनलाख ऊपर, सहसमसत्याणव मानिये।
सतच्यारपै गिन ले इक्यासी, भवनजिनवर जानिये॥
तिहुँलोकभीतर सासते, सुर असुर नर पूजा करैं।
तिन भवनको हम अर्घ लेकैं, पूजि हैं जगदुख हरैं॥ ४॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पञ्चशाल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिअकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामि॥ ४॥

अथ जयमाला।

दोहा।

अब बरणों जयमालिका, सुनो भव्य चित लाय।
जिनमंदिर तिहुं लोकके, देहुं सकल दरसाय॥ १॥

पद्धड़िछन्द।

जय अमल अनादि अनंत जान। अनिमित जु अकीर्तम अचल मान।
जय अजय अखंड अरूपधार। षट् द्रव्य नहीं दीसैं लगार॥ २॥
जय निराकार अधिकार होय। राजत अनंतपरदेश सोय।
जय शुद्ध सुगुण अवगाह पाय। दशदिशमाहिं इहविधि लखाय॥३॥
यह भेद अलोकाकाश जान। तामध्य लोक नभ तीन मान॥
स्वयमेव बन्यो अविचल अनंत। अविनाशि अनादि जु कहत संत॥४॥

पुरुषाअकार ठाढ़ो निहार। कटि हाथ धारि द्वै पग पसार॥
दच्छन उत्तरदिशि सर्व ठौर। राजू जु सात भाख्यो निचोर॥६॥
जय पूर्व अपर दिश घाटबाधि। सुन कथन कहूं ताको जु साधि॥
लखि श्वभ्रतलें राजू जु सात। मधिलोक एक राजू रहात॥६॥
फिर ब्रह्मसुरग राजु जु पांच। भू सिद्ध एक राजू जु सांच॥
दश चार ऊंच राजु गिनाय। षट्द्रव्य लये चतुकोण पाय॥७॥
तसु वातवलय लपटाय तीन। इह निराधार लखियो प्रवीन॥
त्रसनाड़ी तामधि जान खास। चतुकोन एक राजू जु व्यास॥८॥
राजू उतंग चौदह प्रमान। लखि स्वयं सिद्ध रचना महान॥
तामध्य जीव त्रस आदि देय। निज थान पाय तिष्ठे भलेय॥९॥
लखि अधोभागमें श्वभ्रस्थान। गिन सात कहे आगम प्रमान॥
षटठानमाहिं नारकि वसंय। इक श्वभ्रभाग फिर तीन भेय॥१०॥
तसु अधो भाग नारकि रहाय। फुनि ऊर्द्धभाग द्वय थान पाय॥
बस रहे भवन व्यंतर जु देव। पुर हर्म्य छजै रचना स्वमेव॥११॥
तिह थान गेह जिनराज भाख। गिन सात कोटि बहत्तरि जु लाख॥
ते भवन नमों मनवचनकाय। गतिश्वभ्रहरनहारे लखाय॥१२॥
पुनि मध्यलोक गोलाअकार। लखि दीप उदधि रचना विचार॥
गिन असंख्यात भाखे जु संत। लखि संभुरमन सबके जु अंत॥१३॥
इक राजुव्यासमें सर्व जान। मधिलोकतनों इह कथन मान॥
सबमध्य दीप जंबू गिनेय। त्रयदशम रुचिकवर नाम लेय॥१४॥
इन तेरहमें जिनधाम जान। सतचार अठावन हैं प्रमान॥
खग देव असुर नर आय आय। पद पूज जांय शिर नाय नाय॥
जयं ऊर्द्धलोकसुर कल्पवास। तिहँ थान छजें जिनभवन खास॥

जय लाखचुरासीपि लखेय । जय सहस सत्याणव और टेय ॥१६॥
जय वीसतीन फुनि जोड़ देय । जिनभवन अकीर्तम जान लेय ॥
प्रतिभवन एक रचना कहाय । जिनबिंब एकसत आठ पाय ॥१७॥
शतपंच धनुष उन्नत लसाय । पद्मासनजुत वर ध्यान लाय ॥
शिर तीन छत्र शोभित विशाल जय पादपीठ मणिजड़ित लाल१८
भामंडलकी छवि कौन गाय फुनि चँवर दुरत चौसठि लसाय ॥
जय दुंदुभिरव अद्भुत सुनाय । जयपुष्पवृष्टि गंधोदकाय ॥१९॥
जय तरुअशोक शोभा भलेय । मंगल विभूति राजत अमेय ।
घटतूप छजे मणिमाल पाय । घटधूपधूम्र दिग सर्व छाय ॥२० ॥
जयकेतुपंक्ति सोहैं महान । गंधर्वदेव गुन करत गान ॥
सुर जनम लेत लखि अवधि पाय । तिष थान प्रथम पूजन कराय
जिनगेहतणा वरनन अपार । हम तुच्छबुद्धि किम लहत पार ।
जयदेव जिनेसुर जगत भूप । नमि 'नेम' मँगे निज देहरूप ॥२२॥

दोहा ।

तीनलोकमें सासते, श्रीजिनभवन विचार ॥
मनवचतन करि शुद्धता, पूजौं अरघ उतार ॥ २३ ॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्र-चतुःशतैकाशीतिअकृत्रिमश्रीजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामि ॥२३॥

(यहां विसर्जन भी करना चाहिये ।)

कवित्त ।

तिहुं जगभीतर श्रीजिनमंदिर, बने अकीर्त्तम अति सुखदाय ।
नर सुर खग करि वंदनीक जे, तिनको भविजन पाठ कराय ॥

धनधान्यादिक संपति तिनके, पुत्रपौत्र सुख होत भलाय।
चक्री सुर खग इंद्र होयके, करम नाश सिवपुर सुख थाय ॥२४॥
(इत्याशीर्वादाय पुष्पांजलिं क्षिपेत्।)

(२) एकीभावस्तोत्रम्।

(श्रीवादिराजप्रणीतम्)

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्मबन्धो घोरं दुःखं भवभवगतो दुर्निवारः करोति। तस्याप्यस्य त्वयि जिनरवे भक्तिरुन्मुक्तये चेज्जेतुं शक्यो भवति न तया कोपरस्तापहेतुः ॥ १ ॥ ज्योतीरूपं दुरितनिवहध्वान्तविध्वंसहेतुं त्वामेवाहुर्जिनवर चिरं तत्त्वविद्याभियुक्ताः। चेतोवासे भवसि च मम स्फारमुद्भासमानस्तस्मिन्नंहः कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे ॥ २ ॥ आनन्दाश्रुस्नपितवदनं गद्गदं चाभिजल्पन्यश्चायेत त्वयि दृढमनाः स्तोत्रमन्त्रैर्भवन्तम्। तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देहवल्मीकमध्यान्निष्कास्यन्तेविधिविषमव्याधयः काद्रवेयाः ॥ ३ ॥ प्रागेवेह त्रिदिवभवनादेष्यता भव्यपुण्यात्पृथ्वीचक्रं कनकमयतां देव निन्ये त्वयेदम्। ध्यानद्वारं मम रुचिकरं स्वान्तगेहं प्रविष्टस्तत्किं चित्रं जिन वपुरिदं यत्सुवर्णी करोषि ॥ ४ ॥ लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन्निर्निमित्तेन बन्धुस्त्वय्येवासौ सकलविषया शक्तिरप्रत्यनीका। भक्तिस्फीतां चिरमधिवसन्मामिकां चित्तशय्यां मय्युत्पन्नं कथमिव ततः क्लेशयूथं सहेथाः ॥ ५ ॥ जन्माटव्यां कथमपि मया देव दीर्घं भ्रमित्वा प्राप्तैवेयं तव नयकथा स्फारपीयूषवापी। तस्या मध्ये हिमकरहिमव्यूहशीते

नितान्तं निर्मग्नं मा न रहति कथं दुःखदावोपतापाः ॥ ६ ॥ पादन्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं हेमाभासो भवति सुरभिः श्रीनिवासश्च पद्मः । सर्वाङ्गेण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेषं मनो मे श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर्यन्नमामभ्युपैति ॥७॥ पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं भक्तिपात्र्या पिबन्तं कर्मारण्यात्पुरुषमसमानन्दधाम प्रविष्टम् । त्वां दुर्वारस्मरमदहरं त्वत्प्रसादैकभूमिं क्रूराकाराः कथमिव रुजाकण्टका निर्लुठन्ति ॥ ८ ॥ पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्नमूर्तिर्मानस्तम्भो भवति च परस्तादृशो रत्नवर्गः । दृष्टिप्राप्तो हरति स कथं मानरोगं नराणां प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्तिहेतुः ॥९॥ हृद्यः प्राप्तो मरुदपि भवन्मूर्तिशैलोपवाही सद्यः पुंसां निरवधिरुजाधूलिबन्धं धुनोति । ध्यानाहूतो हृदयकमलं यस्य तु त्वं प्रविष्टस्तस्याशक्यः क इह भुवने देवलोकोपकारः ॥ १० ॥ जानासि त्वं मम भवभवे यच्च यादृक्च दुःखं जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि । त्वं सर्वेशः सकृप इति च त्वामुपेतोस्मि भक्त्या यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव एव प्रमाणम् ॥११॥ प्रापद्दैवं तव नुतिपदैर्जीवकेनोपदिष्टैः पापाचारी मरणसमये सारमेयोऽपि सौख्यम् । कः संदेहो यदुपलभते वासवश्रीप्रभुत्वं जल्पञ्जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कारचक्रम् ॥ १२ ॥ शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा भक्तिर्नो चेदनवधिसुखा वञ्चिका कुञ्चिकेयम् । शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्तिकामस्य पुंसो मुक्तिद्वारं परिदृढमहामोहमुद्राकवाटम् ॥ १३ ॥ प्रच्छन्नः खल्वयमघमयैरन्धकारैः समन्तात्पन्था मुक्तेः स्थपुटितपदः क्लेशगर्तैरगाधैः । तत्कस्तेन व्रजति सुखतो देव तत्त्वावभासी यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद्भारतीरत्नदीपः

॥ १४ ॥ आत्मज्योतिर्निधिरनवधिर्द्रष्टुरानन्दहेतुः कर्मक्षोणीपटलपिहितो याऽनवाप्यः परेषाम् । हस्ते कुर्वन्त्यनतिचिरतस्तं भवद्भक्तिभाजः स्तोत्रैर्बन्धप्रकृतिपुरुषोद्दामधात्रीखनित्रैः ॥ १५ ॥ प्रत्युत्पन्नानयहिमगिरेरायता चामृताब्धेर्या देव त्वत्पदकमलयोः सङ्गता भक्तिगङ्गा । चेतस्तस्यां मम रुचिवशादाप्लुतं क्षालितांहः कल्माषं यद्भवति किमियं देव संदेहभूमिः ॥ १६ ॥ प्रादुर्भूतस्थिरपदसुख त्वामनुध्यायतो मे त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा । मिथ्यैवेयं तदपि ननु ते तृप्तिमभ्रेषरूपां दोषात्मानोऽप्यभिमतफलास्त्वत्प्रसादाद्भवन्ति ॥ १७ ॥ मिथ्यावादं मलमपनुदन्सप्तभङ्गीतरङ्गैर्वागम्भोधिर्भुवनमखिलं देव पर्येति यस्ते । तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश्चेतसैवाचलेन व्यातन्वन्तः सुचिरममृतासेवया तृप्नुवन्ति ॥ १८ ॥ आहार्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावादहृद्यः शस्त्रग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः । सर्वाङ्गेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां तत्किं भूषावसनकुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः ॥ १९ ॥ इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते तस्यैवेयं भवलयकरी श्लाघ्यतामातनोति । त्वं निस्तारी जननजलधेः सिद्धिकान्तापतिस्त्वं त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमित्थम् ॥ २० ॥ वृत्तिर्वाचामपरसदृशी न त्वमन्येन तुल्यस्तुत्युद्गाराः कथमिव ततस्त्वय्यमी नः क्रमन्ते । मैवं भूवंस्तदपि भगवन्भक्तिपीयूषपुष्टास्ते भव्यानामभिमतफलाः पारिजाता भवन्ति ॥ २१ ॥ कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव प्रसादो व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्षयैवानपेक्षम् । आज्ञावश्यं तदपि भुवनं संनिधिर्वैरहारी

क्वैवं भूतं भुवनतिलक ! प्रामवं त्वत्परेषु ॥२२॥ देव स्तोतुं त्रि-दिवगणिकामण्डलीगीतकीर्ति तोतूर्ति त्वां सकलविषयज्ञानमूर्ति जनो यः। तस्य क्षेत्र न पदमटतो जातु जोहूर्ति पन्थास्तत्त्वग्रन्थस्म-रणविषये मोमूर्ति मर्त्यः ॥ २३ ॥ चित्ते कुर्वन्निरवधिसुखज्ञान-दृग्वीर्य रूप देव त्वां यः समयनियमादादरेण स्तवीति। श्रेयो-मार्गं स खलु सुकृति तावता पूरयित्वा कल्याणानां भवतिविषयः पञ्चधा पञ्चितानाम्। २४। भक्तिप्रह्वमहेन्द्रपूजितपद त्वत्कीर्तने न क्षमाः सूक्ष्मज्ञानदृशोऽपि संयमभृतः के हन्त मन्दा वयम्। अ-स्माभिस्तवनच्छलेन तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते. स्वात्माधीनसुखैषिणां स खलु नः कल्याणकल्पद्रुमः ॥२५॥ वादिराजमनु शाब्दिकलोको वादिराजमनु तार्किकसिंहः। वादिराजमनु काव्यकृतस्ते वादिराज मनु भव्यसहायः ॥ २६ ॥

इति श्रीवादिराजकृतमेकीभावस्तोत्रम्।

---

(३) स्वयंभूस्तोत्रभाषा।

चौपाई।

राजविषे जुगलनि सुख किया। राज त्याग भवि शिवपद लिया ॥
स्वयंबोध स्वयंभू भगवान। वंदौं आदिनाथ गुणखान ॥ १ ॥
इंद्र क्षीरसागरजल लाय। मेरु न्हवाये गाय बजाय।
मदन विनाशक सुख करतार। वंदौं अजित अजितपदकार ॥ २ ॥
शुक्लध्यानकरि करम वनाशि। घाति अघाति सकल दुखराशि ॥
लह्यो मुकतिपदसुख अविकार। वंदौं संभव भवदुख टार ॥ ३ ॥

माता पच्छिम रयनमँझार। सुपने सोलह देखे सार॥
भूप पूछि फल सुनि हरषाय। वंदौं अभिनंदन मनलाय॥ ४॥
सब कुवादवादी सरदार। जीते स्यादवादधुनिधार॥
जैनधरमपरकाशक स्वाम। सुमतिदेवपद करहुँ प्रनाम॥ ५॥
गर्भअगाऊ धनपति आय। करी नगरशोभा अधिकाय॥
बरखे रतन पंचदश मास। नमौं पदमप्रभु सुखकी रास॥ ६॥
इंद फनिंद नरिंद त्रिकाल। वानी सुनि सुनि होहिं खुस्याल॥
द्वादशसभा ज्ञानदातार। नमौं सुपारसनाथ निहार॥ ७॥
सुगुन छियालिस हैं तुममाहिं। दोष अठारह कोई नाहिं॥
मोहमहातमनाशक दीप। नमौं चंद्रप्रभ राख समीप॥ ८॥
द्वादशविधि तप करम विनाश। तेरहभेद चरित परकाश॥
निज अनिच्छ भविइच्छकदान। वंदौं पुहपदंत मनआन॥ ९॥
भविसुखदाय सुरगतैं आय। दशविध धरम कह्यो जिनराय॥
आपसमान सबनि सुखदेह। वंदौं शीतल धर्मसनेह॥ १०॥
समता सुधा कोपविषनाश। द्वादशांगवानी परकाश॥
चारसंघ आनंददातार। नमौं श्रेयांस जिनेश्वर सार॥ ११॥
रतनत्रयचिरमुकुटविशाल। सोभै कंठ सुगुनमनिमाल॥
मुक्तिनारभरता भगवान। वासुपूज वंदौं धर ध्यान॥ १२॥
परमसमाधिरूप जिनेश। ज्ञानी ध्यानी हितउपदेश॥
कर्मनाशि शिवसुख विलसंत। वंदौं विमलनाथ भगवंत॥ १३॥
अंतर बाहिर परिग्रह डारि। परमदिगंबरव्रतकौं धारि॥
सर्वजीवहित राह दिखाय। नमौं अनंत वचनमनकाय॥ १४॥
सात तत्त्व पंचासतिकाय। अरथ नवौं छ दरब बहु भाय॥

लोक अलोक सकल परकाश । वंदौं धर्मनाथ अविनाश ॥ १५ ॥
पंचम चक्रवर्ति निधिभोग । कामदेव द्वादशम मनोग ॥
शांतिकरन सोलम जिनराय । शान्तिनाथ वंदौं हरखाय ॥ १६ ॥
बहुथुति करे हरष नहिं होय । निंदे दोष गहैं नहिं कोय ॥
शीलमान परब्रह्मस्वरूप । वंदौं कुंथुनाथ शिवभूप ॥ १७ ॥
द्वादशगण पूजैं सुखदाय । थुतिवंदना करैं अधिकाय ॥
जाकी निजथुति कबहुं न होय । वंदौं अरजिनवर पद दोय ॥१८॥
परभव रतनत्रय अनुराग । इस भव ब्याहसमय वैराग ॥
बालब्रह्म पूरन व्रत धार । वंदौं मल्लिनाथ जिनसार ॥ १९ ॥
बिन उपदेश स्वयं वैराग । थुति लौकांत करैं पग लाग ॥
नमः सिद्ध कहि सब व्रत लेहिं । वंदौं मुनिसुव्रत व्रत देहिं ॥२०॥
श्रावक विद्यावंत निहार । भगतिभावसौं दिया अहार ॥
बरसे रतनराशि ततकाल । वंदौं नमिप्रभु दीनदयाल ॥ २१ ॥
सब जीवनकी बंदी छोर । रागदोष दो बंदन तोर ॥
रजमति तजि शिवतियसों मिले । नेमीनाथ वंदौं सुखनिले ॥२२
दैत्य कियो उपसर्ग अपार ध्यान देखी आयो फनिधार ॥
गयो कमठ शठ मुख कर श्याम । नमौं मेरुसम पारसस्वाम ॥२३॥
भवसागरतैं जीव अपार । धरमपोतमें धरे निहार ॥
डूबत काढ़े दया विचार । वर्द्धमान वंदौं बहुवार ॥ २४ ॥

दोहा ।

चौबीसौं पदकमलजुग, वंदौं मनवचकाय ॥
'द्यानत' पढ़ै सुनै सदा, सो प्रभु क्यों न सुहाय ॥ २५ ॥

[४] बारहभावना।

[रत्नचंद्रजीकृत।]

सवैया ३१॥

भोग उपभोग जे कहे हैं संसाररूप रमा धन पुत्र औ कलत्र आदि जानिये॥ ज्यूंहीं जल बुद्बुद प्रत्यक्ष है लखावतनु विद्युतचमत्कार थिर न रहानिये। त्यूं ही जग अथिर विलासको असार ज्ञान थीर नहीं दीसे सो अनादि अनुमानिये॥ यह जो विचारे सो अनित्य अनुपेक्षा कहे प्रथम ही भेद जिनराज जो बखानिये॥ १॥ निर्जन अरण्य माहिं ग्रहे मृग सिंह शरण न दीसे अशरण ताहि कहिये॥ हरिहरादि चक्रवर्ति पद त्यूं अथिर गिनो जन्ममरण सो अनाद ही ते लहिये॥ याहीको विचारियो असार संसार मान एक अवलंब जिनधर्म ताहि गहिये। दृढ हिये धार निज आत्मको कर विचार तज के विकार सब निश्चल हो रहिये॥ २॥ कर्म काण्ड दाही थकी आत्मा भ्रमणकरे नट जैसो नाटक अनन्तकाल करे है। पिता हूते पुत्र होय जनक होय सुत हू ते स्वामी हूतेदास भृत्य स्वामी पद धरे है। माता हूते त्रिया होय कामिनीते माय होय भववन मांहि जीव यूंही संसरे है॥३॥ मैंहू जो एकाकी सदा देखिये अनंत काल जन्म मृत्यु बहु दुख सहो है। रोगनग्रसो है एकैपाप फल भुंजे घनो एकै शोकवन्तको उदुतीनाहि सहो है। स्वजन न तात मात साथी नहिं कोय यह रत्नत्रय साथि निजताहि नहि गहो है। एकै यह आत्मध्यावे एकै तपसा करावे होय शुद्ध भावे तब मुक्ति पद लहो है॥ ४॥ आत्म है

अन्य और पुद्गल हूं अन्य लखो अन्य मात तात पुत्र त्रिया सब जानरे । जैसे निशिमाहिं तरुहुपैं खग मेलें होंय प्रात उड जाय ठौरठौर तिमि मानरे ॥ तैसे विनाशीक यह सकल पदार्थ हैं हाटमध्याजन अनेक होय मेले आनरे । इनहुतें काज कछु सरैन-नेगो नाहिं भैया अनित्यानुप्रेक्षरूप यह पहचानरे ॥ ५ ॥ त्वचा पल अन्तरसाजालमलमूत्र धाम शुक्रमल रूधिर कुधातु सप्तमई है, ऐसो तन अशुचि अनेक दुर्गंध भरो श्रवे नव द्वार तामें मूढ मतिदई है ॥ ऐसी यह देह ताही लखके उदास रहो मानो जीव एक शुद्ध वुद्ध परणई हैं ॥ अशुचि अनुप्रेक्षा यह धारे जो इसी ही भांति तनके विकार तिन मुक्तरमा लई है ॥ ६ ॥

चौपई ।

आश्रवअनुप्रेक्ष हियधारं । सत्तावनआश्रवकेद्वारं ॥ कर्माश्रवपैसा रजुहोय । ताकोभेदकहु अवसोय ॥ मिथ्याअविरतयोग-कषाय । यहसत्तावनं भेद लखाय । वंधोफिरेइनकेवशजीव । भव-सागरमें रुले सदीव । विकल्परहित ध्यान जब होय शुभआश्रवको कारण सोय ॥ कर्म्मशत्रुकोकरसंहार। तवपावे पचमगति सार ॥७॥ आश्रवको निरोध जो ठान । सोईसम्वंर करे बखान ॥ सम्वरकरसु-निरजरा होय । सोहै द्वय परकारहि सोय ॥ इक स्वयमेव निर्ज-रा पेख दुजी निर्जरा तपहि विशेष ॥ ८ ॥ पूर्व सकल अवस्था-कही संवर करजो निर्जरासही ॥ सोय निर्जरा दो परकार । सवि-पाकी अविपाकीसार ॥ सविपाकी सवजीवन होय । सविपाकी मु-निवरके जोय ॥ तपके बलकर मुनि भोगाय । सोई भाव निर्जरा थाय । वंधे कर्म्म छूटे जिह घरी । सोई द्रव्य निर्जरा खरी ॥९॥

अधोमध्य अर ऊरध जान । लोकत्रय यह कहे बखान ॥ चौदह राजु सबे उतंग । वातत्रय वेढे सरबंग ॥ घनाकार राजू गण ईस । कहैं तीनसै तैतालीस ॥ अधोलोक चौकूंटो जान मध्यलोक झालरी समान ॥ ऊर्द्धलोक मृदंगाकार । पुरुषाकार त्रिलोक निहार ॥ ऐसो निजघट लखे जुकोय । सोलोकानुप्रेक्ष यह होय ॥ १० ॥ दुर्लभ ज्ञान चतुरगतिमाहिं । भ्रमतभ्रमत मानुषगति-पाहि ॥ जैसे जन्म दरिद्री कोय । मिलोरत्ननिधिताको सोय ॥ त्यूं मिलियो यह नर परयाय । आर्यखंड उंच कुल पय ॥ आयु-पूरण पंचइन्द्री भोग मंदकषाय धर्मसंयोग ॥ यह दुर्लभ है या जग-माहिं । इनबिनमिले मुक्तिपद नाहिं ॥ ऐसी भावना भावे सार । दुर्लभ अनुप्रेक्षा सु विचार ॥ ११ ॥ पाळे धर्म यत्नकर कोय । शिव मदिर ते लहेजुसोई ॥ धर्म भेद दशविधि निरधार । उत्तमक्षमा पुन मार्दवसार ॥ आर्जव सत्य शौच पुन जान ॥ संयमतप त्यागहि पहिचान ॥ आकिंचन ब्रह्मचर्य गनेव ॥ यह दश भेद कहे जिनदेव ॥ धर्महि ते तीर्थंकरगति । धर्महि ते होवे सुरपति । धर्मही ते चक्रेश्वर जान । धर्मही ते हरि प्रतिहरि मान । धर्मही ते मनोज अवतार । धर्महीते हो भवदधि पार । रत्नचन्द्र यह करे बखान । धर्महिते पावें निर्वान ॥

—※—

(५) बारह भावना ।

(भैयालाल कृत)

॥ चोपाई ॥

पंच परम गुरु बन्दन करूं । मन वच भाव सहित उर

धरूं। बारह भावन पावन जान। भाऊं आतम गुण पहिचान ॥ १ ॥ थिर नहीं दीखे नयनों वस्त। देहादिक अरु रूप समस्त। थिर बिन नेह कौनसे करूं। अथिरदेख ममता परिहरूं ॥ २ ॥ अशरण तोहि शरण नहीं कोय। तीन लोकमें दृग धर जोय ॥ कोई न तेरा राखन हार। कर्म वशे चेतन निरधार ॥ ३ ॥ अरु संसार भावना येह। परद्रव्यनसे कैसे नेह ॥ ॥ तू चेतन वे जड़ सर्वंग। ताते तजो परायो संग ॥ ४ ॥ जीव अकेला फिरे त्रिकाल। ऊरध मध्य भवन पाताल ॥ दूजा कोई न तेरे साथ। सदा अकेला भ्रमे अनाथ ॥ ५ ॥ भिन्न सदा पुद्गलसे रहे। भर्म बुद्धिसे जड़ता गहे ॥ वे रूपी पुद्गलके स्कंध। तू चिन्मूरति सदा अबंध ॥ ६ ॥ अशुचि देख देहादिक अंग। कौन कुवस्तु लगी तो संग। अस्थि चाम रुधिरादिक गेह। मल मूत्रनि लख तजो स्नेह ॥ ७ ॥ आश्रव परसे कीजे प्रीत। ताते बंध पड़े विपरीत। पुद्गल तोहि अपन यो नाहिं। तू चेतन वह जड़ सब आहिं ॥ ८ ॥ सम्वर परको रोकन भाव। सुख होवेको यही उपाव ॥ आवें नहीं नये जहां कर्म। पिछले रुक प्रगटे निजधर्म ॥ ९ ॥ थिति पूर्ण है खिर खिर जाय। निर्जरभाव अधिक अधिकाय ॥ निर्मल होय चिदानंद आप। मिटे सहज परसंग मिलाप ॥ १० ॥ लोक मांहि तेरो कुछ नाहि। लोक अन्य तू अन्य लखाहि ॥ वह सब षट् द्रव्यनका धाम ॥ तू चिन्मूरति आतमराम ॥ ११ ॥ दुर्लभ परको रोकन भाव। सो सो दुर्लभ हैं सुन राव। जो तेरे है ज्ञान अनंत। सो नहीं दुर्लभ

सुनो महंत ॥ १२ ॥ धर्म स्वभाव आप ही जान। आप स्वभाव धर्म सोई मान ॥ जब वह धर्म प्रगट तोहे होइ। तब परमात्म पद लख सोइ ॥ १३ ॥ येही बारह भवन सार। तीर्थंकर भावें निर्धार ॥ होय विराग महाव्रत लेय। तब भवभ्रमण जलांजलि देय ॥ १४ ॥ भैया भावो भाव अनूप। भावत होय तुरत शिवभूप। सुख अनंत विलसो निशि दीश। इम भाषो स्वामी जगदीश ॥ १५ ॥

दोहा।

प्रथम अथिर अशरण जगत्, एक अन्य अशुचान।
आश्रम संवर निर्जरा, लोक बोध दुलभान। १६

इति बारहभावना भैया भगवतीदासकृत सम्पूर्णम्।

(६) बृहत्स्वयंभूस्तोत्र।

(श्री भद्रगजवादिगजकेसरी स्वामी समन्तभद्राचार्य विरचित)

स्वयम्भुवा भूतहितेन भूतले समञ्जसज्ञानविभूतिचक्षुषा।
विराजितं येन विधुन्वता तमः क्षपाकरेणेव गुणोत्करैः करैः ॥१॥
प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषुः शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्धतत्त्वः पुनरद्भुतोदयो ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः ॥ २ ॥
विहाय यः सागरवारिवाससं वधूमिवेमां वसुधावधूं सतीम्।
मुमुक्षुरिक्ष्वाकुकुलादिरात्मवान् प्रभुः प्रवव्राज सहिष्णुरच्युतः ॥३॥
स्वदोषमूलं स्वसमाधितेजसा निनाय यो निर्दयभस्मसात्क्रियाम्।
जगाद तत्त्वं जगतेऽर्थिनेऽञ्जसा बभूव च ब्रह्मपदामृतेश्वरः ॥ ४ ॥

स विश्वचक्षुर्वृषभोऽर्चितः सतां समग्रविद्यात्मवपुर्निरञ्जनः ।
पुनातु चेतो मम नाभिनन्दनो जिनो जितक्षुल्लकवादिशासनः ॥५॥
यस्य प्रभावात्त्रिदिवच्युतस्य क्रीडास्वपि क्षीवमुखारविन्दः ।
अजेयशक्तिर्भुवि बन्धुवर्गश्चकार नामाजित इत्यवन्ध्यम् ॥ ६ ॥
अद्यापि यस्याजितशासनस्य सतां प्रणेतुः प्रतिमङ्गलार्थम् ।
प्रगृह्यते नाम परं पवित्रं स्वसिद्धिकामेन जनेन लोके ॥ ७ ॥
यः प्रादुरासीत्प्रभुशक्तिभूम्ना भव्याशयालीनकलङ्कशान्त्यै ।
महामुनिर्मुक्तघनोपदेहो यथारविन्दाभ्युदयाय भास्वान् ॥ ८ ॥
येन प्रणीतं पृथु धर्मतीर्थं ज्येष्ठं जनाः प्राप्य जयन्ति दुःखम् ।
गाङ्गं ह्रदं चन्दनपङ्कशीतं गजप्रवेका इव घर्मतप्ताः ॥ ९ ॥
स ब्रह्मनिष्ठः सममित्रशत्रुर्विद्याविनिर्वान्तकषायदोषः ।
लब्धात्मलक्ष्मीरजितोऽजितात्मा जिनःश्रियं मे भगवान् विधत्तां ॥१०
त्वं शम्भवःसंभवतर्षरोगैः संतप्यमानस्य जनस्य लोके ।
आसीरिहाकस्मिक एव वैद्यो वैद्यो यथा नाथ ! रुजां प्रशान्त्यै ॥११॥
अनित्यमत्राणमहं क्रियाभिः प्रसक्तमिथ्याध्यवसायदोषम् ।
इदं जगज्जन्मजरान्तकार्तं निरंजनां शान्तिमजीगमस्त्वम् ॥१२॥
शतह्रदोन्मेषचलं हि सौख्यं तृष्णामयाप्यायनमात्रहेतुः ।
तृष्णाभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रं तापस्तदायासयतीत्यवादीः ॥ १३ ॥
बंधश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतुः बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः ।
स्याद्वादिनो नाथ ! तवैव युक्तं नैकान्तदृष्टेस्त्वमतोऽसि शास्ता ॥१४॥
शक्रोऽप्यशक्तस्तव पुण्यकीर्तेः स्तुत्यां प्रवृत्तः किमु मादृशोऽज्ञः ।
तथापि भक्त्या स्तुतपादपद्मो ममार्य ! देयाः शिवतातिमुच्चैः ॥१५॥

गुणाभिनन्दादभिनन्दनो भवान् दयावधूं क्षान्तिसखीमशिश्रयत् ।
समाधितन्त्रस्तदुपोपपत्तये द्वयेन नैर्ग्रन्थ्यगुणेन चायुजत ॥ १६ ॥
अचेतने तत्कृतबन्धजेऽपि ममेदमित्याभिनिवेशकग्रहात् ।
प्रभङ्गुरे स्थावरनिश्चयेन च क्षतं जगत्तत्त्वमजिग्रहद्भवान् ॥ १७ ॥
क्षुदादिदुःखप्रतिकारतः स्थितिर्न चेन्द्रियार्थप्रभवाल्पसौख्यतः ।
ततो गुणो नास्ति च देहदेहिनोरितीदमित्थं भगवान् व्यजिज्ञपत् ॥ १८ ॥
जनोऽतिलोलोऽप्यनुबन्धदोषतो भयादकार्येष्विह न प्रवर्तते ।
इहाप्यमुत्राप्यनुबन्धदोषवित्कथं सुखे संसजतीति चाब्रवीत् ॥ १९ ॥
स चानुबन्धोऽस्य जनस्य तापकृत्तृषोऽभिवृद्धिः सुखतो न च स्थितिः ।
इति प्रभो ! लोकहितं यतो मतं ततो भवानेव गतिः सतां मतः ॥ २० ॥
अन्वर्थसंज्ञः सुमतेर्मुनिस्त्वं स्वयं मतं येन सुयुक्तिनीतम् ।
यतश्च शेषेषु मतेषु नास्ति सर्वक्रियाकारकतत्त्वसिद्धिः ॥ २१ ॥
अनेकमेकं च तदेव तत्त्वं भेदान्वयज्ञानमिदं हि सत्यम् ।
मृषोपचारोऽन्यतरस्य लोपे तच्छेषलोपोऽपि ततोऽनुपाख्यम् ॥ २२ ॥
सतः कथञ्चित्तदसत्त्वशक्तिः खे नास्ति पुष्पं तरुषु प्रसिद्धम् ।
सर्वस्वभावच्युतमप्रमाणं स्ववाग्विरुद्धं तव दृष्टितोऽन्यत् ॥ २३ ॥
न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति न च क्रियाकारकमत्र युक्तम् ।
नैवासतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तमःपुद्गलभावतोऽस्ति ॥ २४ ॥
विधिर्निषेधश्च कथञ्चिदिष्टौ विवक्षया मुख्यगुणव्यवस्था ।
इति प्रणीतिः सुमतेस्तवेयं मतिप्रवेकः स्तुवतोऽस्तु नाथ ! ॥ २५ ॥
पद्मप्रभः पद्मपलाशलेश्यः पद्मालयालिङ्गितचारुमूर्तिः ।
बभौ भवान् भव्यपयोरुहाणां पद्माकराणामिव पद्मबन्धुः ॥ २६ ॥
बभार पद्मां च सरस्वतीं च भवान्पुरस्तात्प्रतिमुक्तिलक्ष्म्याः ।

सरस्वतीमेव समग्रशोभां सर्वज्ञलक्ष्मीं ज्वलितां विमुक्तः ॥ २७ ॥
शरीररश्मिप्रसरः प्रभोस्ते बालार्करश्मिच्छविरालिलेप ।
नरामराकीर्णसभां प्रभावच्छैलस्य पद्माभमणेः स्वसानुम् ॥२८॥
नभस्तलं पल्लवयन्निव त्वं सहस्रपत्राम्बुजगर्भचारैः ।
पादाम्बुजैः पातितमोहदर्पो भूमौ प्रजानां विजहर्थ भूत्यै ॥२९॥
गुणाम्बुधेर्विप्रुषमप्यजस्रं नाखण्डलः स्तोतुमलं तवर्षेः ।
प्रागेव मादृक्किमुतातिभक्तिर्मां बालमालापयतीदमित्थम् ॥३०॥
स्वास्थ्यं यदात्यन्तिकमेष पुंसां स्वार्थो न भोगः परिभंगुरात्मा ।
तृषोऽनुषङ्गान्न च तापशांतिरितीदमाख्यद्भगवान् सुपार्श्वः ॥३१॥
अजङ्गमं जङ्गमनेययन्त्रं यथा तथा जीवधृतं शरीरम् ।
बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च स्नेहो वृथात्रेति हितं त्वमाख्यः ॥३२॥
अलंघ्यशक्तिर्भवितव्यतेयं हेतुद्वयाविष्कृतकार्यलिङ्गा ।
अनीश्वरो जन्तुरहंक्रियार्त्तः संहत्य कार्येष्विति साध्ववादीः ॥३३॥
बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो नित्यं शिवं वाञ्छति नास्य लाभः ।
तथापि बालो भयकामवश्यो वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः ॥३४॥
सर्वस्य तत्त्वस्य भवान्प्रमाता मातेव बालस्य हितानुशास्ता ।
गुणावलोकस्य जनस्य नेता मयापि भक्त्या परिणूयसेऽद्य ॥ ३५ ॥
चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम् ।
वन्देऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं जिनं जितस्वान्तकषायबन्धम् ॥३६॥
यस्याङ्गलक्ष्मीपरिवेशभिन्नं तमस्तमोरेरिव रश्मिभिन्नम् ।
ननाश बाह्यं बहु मानसं च ध्यानप्रदीपातिशयेन भिन्नम् ॥३७॥
स्वपक्षसौस्थित्यमदावलिप्ता वाक्सिंहनादैर्विमदा बभूवुः ।
प्रवादिनो यस्य मदार्द्रगण्डा गजा यथा केशरिणो निनादैः ॥३८॥

यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः पदं बभूवाद्भुतकर्मतेजाः ।
अनन्तधामाक्षरविश्वचक्षुः समंतदुःखक्षयशासनश्च ॥ ३९ ॥
स चन्द्रमा भव्यकुमुद्वतीनां विपन्नदोषाभ्रकलङ्कलेपः ।
व्याकोशवाङ्न्यायमयूखमालः पूयात्पवित्रो भगवान्मनो मे ॥४०॥
एकान्तदृष्टिप्रतिषेधि तत्त्वं प्रमाणसिद्धं तदतत्स्वभावम् ।
त्वया प्रणीतं सुविधे स्वधाम्ना नैतत्समालीढपदं त्वदन्यैः ॥ ४१ ॥
तदेव च स्यान्न तदेव च स्यात्तथा प्रतीतेस्तव तत्कथञ्चित् ।
नात्यन्तमन्यत्वमनन्यता च विधेर्निषेधस्य च शून्यदोषात् ॥४२॥
नित्यं तदेवेदमिति प्रतीतेर्न नित्यमन्यत्प्रतिपत्तिसिद्धेः ।
न तद्विरुद्धं बहिरन्तरङ्गनिमित्तनैमित्तिकयोगतस्ते ॥ ४३ ॥
अनेकमेकं च पदस्य वाच्यं वृक्षा इति प्रत्ययवत्प्रकृत्या ।
आकाङ्क्षिणः स्यादिति वै निपातो गुणानपेक्षे नियमेऽपवादः ॥४४॥
गुणप्रधानार्थमिदं हि वाक्यं जिनस्य ते तद्द्विषतामपथ्यम् ।
ततोऽभिवन्द्यं जगदीश्वराणां ममापि साधोस्तव पादपद्मम् ॥ ४५ ॥
न शीतलाश्चन्दनचन्द्ररश्मयो न गाङ्गमम्भो न च हारयष्टयः ।
यथा मुनेस्तेऽनघवाक्यरश्मयःशमाम्बुगर्भाः शिशिरा विपश्चिताम् ॥४६॥
सुखाभिलाषानलदाहमूर्च्छितं मनो निजं ज्ञानमयामृताम्बुभिः ।
विदिध्यपस्त्वं विषदाहमोहितं यथाभिषग्मन्त्रगुणैः स्वविग्रहं ॥४७॥
स्वजीविते कामसुखे च तृष्णया दिवा श्रमार्त्ता निशि शेरते प्रजाः ।
त्वमार्य ! नक्तंदिवमप्रमत्तवानजागरेवात्मविशुद्धवर्त्मनि ॥ ४८ ॥
अपत्यवित्तोत्तरलोकतृष्णया तपस्विनः केचन कर्म कुर्वते ।
भवान्पुनर्जन्मजराजिहासया त्रयीं प्रवृत्तिं शमधीरवारुणात् ॥४९॥
त्वमुत्तमज्योतिरजः क निर्वृतः क ते परे बुद्धिलवोद्धवक्षताः ।

ततः स्वनिः श्रेयसभावनापरैर्बुधप्रवेकैर्जिनशीतलेड्यसे ॥ ५० ॥
श्रेयान् जिनः श्रेयसि वर्त्मनीमाः श्रेयः प्रजाः शासदजेयवाक्यः ।
भवांश्चकाशे भुवनत्रयेऽस्मिन्नेको यथा वीतघनो विवस्वान् ॥५१॥
विधिर्विषक्तप्रतिषेधरूपः प्रमाणमत्रान्यतरत्प्रधानम् ।
गुणो परो मुख्यनियामहेतुर्नयः स दृष्टान्तसमर्थनस्ते ॥५२॥
विवक्षितो मुख्य इतीष्यतेऽन्यो गुणो विवक्षो न निरात्मकस्ते ।
तथारिमित्रानुभयादिशक्तिर्द्वयावधिः कार्यकरं हि वस्तु ॥ ५३ ॥
दृष्टान्तसिद्धावुभयोर्विवादे साध्यं प्रसिद्धयेन्न तु तादृगस्ति ।
यत्सर्वथैकान्तनियामदृष्टं त्वदीयदृष्टिर्विभवत्यशेषे ॥ ५४ ॥
एकान्तदृष्टिप्रतिषेधसिद्धिर्न्यायेषुभिर्मोहरिपुं निरस्य ।
असि स्म कैवल्यविभूतिसम्राट् ततस्त्वमर्हन्नसि मे स्तवार्हः ॥५५॥
शिवासु पूज्योऽभ्युदयक्रियासु त्वं वासुपूज्यस्त्रिदशेन्द्रपूज्यः ।
मयापि पूज्योऽल्पधिया मुनीन्द्र दीपार्चिषा किं तपनो न पूज्यः॥५६॥
न पूज्ययार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ ! विवान्तवैरे ।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ॥५७॥
पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ ॥५८॥
यद्वस्तु बाह्यं गुणदोषसूतेर्निमित्तमभ्यन्तरमूलहेतोः ।
अध्यात्मवृत्तस्य तदङ्गभूतमभ्यन्तरं केवलमप्यलं ते ॥ ५९ ॥
बाह्येतरोपाधिसमग्रतेयं कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः ।
नैवान्यथा मोक्षविधिश्च पुंसां तेनाभिवन्द्यस्त्वमृषिर्बुधानाम् ॥६०॥
य एव नित्यक्षणिकादयो नया मिथोऽनपेक्षाः स्वपरप्रणाशिनः ।
त एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः परस्परेक्षाः स्वपरोपकारिणः ॥६१॥

यथैकशः कारकमर्थसिद्धये समीक्ष्य शेषं स्वसहायकारकम्।
तथैव सामान्यविशेषमातृका नयास्तवेष्टा गुणमुख्यकल्पतः ॥६२॥
परस्परेक्षान्वयभेदलिङ्गतः प्रसिद्धसामान्यविशेषयोस्तव।
समग्रतास्ति स्वपरावभासकं यथा प्रमाणं भुवि बुद्धिलक्षणम् ॥६३॥
विशेषवाच्यस्य विशेषणं वचो यतो विशेष्यं विनियम्यते च यत्।
तयोश्च सामान्यमतिप्रसज्यते विवक्षितात्स्यादिति तेऽन्यवर्जनम् ॥६४॥
नयास्तव स्यात्पदसत्यलाञ्छिता रसोपविद्धा इव लोहधातवः।
भवन्त्यभिप्रेतगुणा यतस्ततो भवन्तमार्याः प्रणिता हितैषिणः ॥६५॥
अनन्तदोषाशयविग्रहो ग्रहो विषङ्गवान्मोहमयश्चिरं हृदि।
यतो जितस्तत्त्वरुचौ प्रसीदता त्वया ततोभूर्भगवाननन्तजित् ॥६६॥
कषायनाम्नां द्विषतां प्रमाथिनामशेषयन्नाम भवानशेषवित्।
विशोषणं मन्मथदुर्मदामयं समाधिभैषज्यगुणैर्व्यलीनयन् ॥ ६७ ॥
परिश्रमाम्बुर्भयवीचिमालिनी त्वया स्वतृष्णासरिदार्य! शोषिता।
असंगघर्मार्कगभस्तितेजसा परं ततो निर्वृतिधाम तावकम् ॥ ६८ ॥
सुहृत्त्वयि श्रीसुभगत्वमश्नुते द्विषन् त्वयि प्रत्ययवत्प्रलीयते।
भवानुदासीनतमस्तयोरपि प्रभो! परं चित्रमिदं तवेहितम् ॥६९॥
त्वमीदृशस्तादृश इत्ययं मम प्रलापलेशोऽल्पमतेर्महामुने!।
अशेषमाहात्म्यमनीरयन्नपि शिवाय संस्पर्श इवामृताम्बुधेः ॥ ७० ॥
धर्मतीर्थमनघं प्रवर्त्तयन् धर्म इत्यनुमतः सतां भवान्।
कर्मकक्षमदहत्तपोऽग्निभिः शर्म शाश्वतमवाप शङ्करः ॥ ७१ ॥
देवमानवनिकायसत्तमै रेजिषे परिवृतो वृतो बुधैः।
तारकापरिवृतोऽतिपुष्कलो व्योमनीव शशलाञ्छनोऽमलः ॥ ७२ ॥
प्रातिहार्यविभवैः परिष्कृतो देहतोऽपि विरतो भवानभूत्।

मोक्षमार्गमशिषन्नरामरानापि शासनफलैषणातुरः ॥ ७३ ॥
कायवाक्यमनसां प्रवृत्तयो नाऽभवंस्तव मुनेश्चिकीर्षया ।
नासमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयो धीर तावकमचिन्त्यमीहितम् ॥ ७४ ॥
मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान् देवतास्वपि च देवता यतः ।
तेन नाथ ! परमासि देवता श्रेयसे जिनवृष प्रसीद नः ॥ ७५ ॥
विधाय रक्षां परतः प्रजानां राजा चिरं योऽप्रतिमप्रतापः ।
व्यधात्पुरस्तात्स्वत एव शान्तिर्मुनिर्दयामूर्तिरिवाघशान्तिम् ॥७६॥
चक्रेण यः शत्रुभयंकरेण जित्वा नृपः सर्वनरेन्द्रचक्रम् ।
समाधिचक्रेण पुनर्जिगाय महोदयो दुर्जयमोहचक्रम् ॥ ७७ ॥
राजश्रिया राजसु राजसिंहो रराज यो राजसुभोगतन्त्रः ।
आर्हन्त्यलक्ष्म्या पुनरात्मतन्त्रो देवासुरोदारसभे रराज ॥ ७८ ॥
यस्मिन्नभूद्राजनि राजचक्रं मुनौ दयादीधितिधर्मचक्रम् ।
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलिदेवचक्रं ध्यानोन्मुखे ध्वंसि कृतान्तचक्रम् ॥७९॥
स्वदोषशान्त्यावहितात्मशान्तिः शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम् ।
भूयाद्भवक्लेशभयोपशान्त्यै शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ॥८०॥

कुन्थुप्रभृत्यखिलसत्त्वदयैकतानः
कुन्थुर्जिनो ज्वरजरामरणोपशान्त्यै ।
त्वं धर्मचक्रमिह वर्तयसि स्म भूत्यै
भूत्वा पुरा क्षितिपतीश्वरचक्रपाणिः ॥ ८१ ॥
तृष्णार्चिषः परिदहन्ति न शान्तिरासा-
मिष्टेन्द्रियार्थविभवैः परिवृद्धिरेव ।
स्थित्यैव कायपरितापहरं निमित्त-
मित्यात्मवान्विषयसौख्यपराङ्मुखोऽभूत् ॥ ८२ ॥

बाह्यं तपः परमदुश्चरमाचरँस्त्व-
माध्यात्मिकस्य तपसः परिबृंहणार्थम् ।
ध्यानं निरस्य कलुषद्वयमुत्तरस्मिन्
ध्यानद्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने ॥ ८३ ॥

हुत्वा स्वकर्मकटुकप्रकृतींश्चतस्रो
रत्नत्रयातिशयतेजसि जातवीर्य्यः ।
विभ्राजिषे सकलवेदविधेर्विनेता
व्यभ्रे यथा वियति दीप्तरुचिर्विवस्वान् ॥ ८४ ॥

यस्मान्मुनीन्द्र ! तव लोकपितामहाद्या
विद्याविभूतिकणिकामपि नाप्नुवन्ति ।
तस्माद्भवन्तमजमप्रतिमेयमार्याः
स्तुत्यं स्तुवन्ति सुधियः स्वहितैकताना: ॥ ८५ ॥

गुणस्तोकं सदुल्लंघ्य तद्बहुत्वकथा स्तुतिः ।
आनन्त्यात्ते गुणा वक्तुमशक्यास्त्वयि सा कथम् ॥ ८६ ॥
तथापि ते मुनीन्द्रस्य यतो नामापि कीर्तितम् ।
पुनाति पुण्यकीर्तेर्नस्ततो ब्रूयाम किञ्चन ॥ ८७ ॥
लक्ष्मीविभवसर्वस्वं मुमुक्षोश्चक्रलाञ्छनम् ।
साम्राज्यं सार्वभौमं ते जरत्तृणमिवाभवत् ॥ ८८ ॥
तव रूपस्य सौन्दर्यं दृष्ट्वा तृप्तिमनापिवान् ।
चक्षः शक्रः सहस्राक्षो बभूव बहुविस्मयः ॥ ८९ ॥
मोहरूपो रिपुः पापः कषायभटसाधनः ।
दृष्टिसम्पदुपेक्षास्त्रैस्त्वया धीर ! पराजितः ॥ ९० ॥
कन्दर्पस्योद्धरो दर्पस्त्रैलोक्यविजयार्जितः ।

क्षेपयामास ते धीर त्वयि प्रतिहतोदयः ॥ ९१ ॥
आयत्यां च तदात्वे च दुःखयोनिर्निरुत्तरा ।
तृष्णानदी त्वयोत्तीर्णा विद्यानावा विविक्तया ॥ ९२ ॥
अन्तकः क्रन्दको नृणां जन्मज्वरसखा सदा ।
त्वामन्तकान्तकं प्राप्य व्यावृत्तः कामकारतः ॥ ९३ ॥
भूषावेषायुधत्यागि विद्यादमदयापरम् ।
रूपमेव तवाचष्टे धीर ! दोषविनिग्रहम् ॥ ९४ ॥
समन्ततोऽङ्गभासां ते परिवेषेण भूयसा ।
तमो बाह्यमपाकीर्णमध्यात्मं ध्यानतेजसा ॥ ९५ ॥
सर्वज्ञज्योतिषोद्भूतस्तावको महिमोदयः ।
कं न कुर्यात् प्रणम्रं ते सत्त्वं नाथ ! सचेतनम् ॥ ९६ ॥
तव वागमृतं श्रीमत्सर्वभाषास्वभावकम् ।
प्रणीयत्यमृतं यद्वत् प्राणिनो व्यापि संसदि ॥ ९७ ॥
अनेकान्तात्मदृष्टिस्ते सती शून्यो विपर्ययः ।
ततः सर्वं मृषोक्तं स्यात्तदयुक्तं स्वघाततः ॥ ९८ ॥
ये परस्खलितोन्निद्राः स्वदोषेभनिमीलिनः ।
तपस्विनस्ते किं कुर्युरपात्रं त्वन्मतश्रियः ॥ ९९ ॥
ते तं स्वघातिनं दोषं शमीकर्तुमनीश्वराः ।
त्वद्द्विषः स्वहनो बालास्तत्त्वावक्तव्यतां श्रिताः ॥ १०० ॥
सदेकानित्यवक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नयाः ।
सर्वथेति प्रदुष्यन्ति पुष्यन्ति स्यादितीहिते ॥ १०१ ॥
सर्वथा नियमत्यागी यथादृष्टमपेक्षकः ।
स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषाम् ॥ १०२ ॥

अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः ।
अनेकान्तः प्रमाणात्ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात् ॥ १०३ ॥
इति निरुपमयुक्तिशासनः प्रियहितयोगगुणानुशासनः ।
अरजिनमदमतीर्थनायकस्त्वमिव सतां प्रतिबोधनायकः ॥ १०४ ॥
मतिगुणविभवानुरूपतस्त्वयि वरदागमदृष्टिरूपतः ।
गुणकृशमपि किञ्चनोदितं मम भवता दुरिताशनोदितम् ॥ १०५ ॥
यस्य महर्षेः सकलपदार्थप्रत्यवबोधः समजनि साक्षात् ।
सामरमर्त्यं जगदपि सर्वं प्राञ्जलिभूत्वा प्रणिपतति स्म ॥ १०६ ॥
यस्य च मूर्त्तिः कनकमयीव स्वस्फुरदाभाकृतपरिवेषा ।
वागपि तत्त्वं कथयितुकामा स्यात्पदपूर्वा रमयति साधून् ॥१०७॥
यस्य पुरस्ताद्विगलितमाना न प्रतितीर्थ्या भुवि विवदन्ते ।
भूरपि रम्या प्रतिपदमासीज्जातविकोशाम्बुजमृदुहासा ॥ १०८ ॥
यस्य समन्ताज्जिनशिशिरांशोः शिष्यकसाधुग्रहविभवोऽभूत् ।
तीर्थमपि स्वं जननसमुद्रत्रासितसत्त्वोत्तरणपथोऽग्रम् ॥ १०९ ॥
यस्य च शुक्लं परमतपोऽग्निर्ध्यानमनन्तं दुरितमधाक्षीत् ।
तं जिनसिंहं कृतकरणीयं मल्लिमशल्यं शरणमितोऽस्मि ॥ ११० ॥
अधिगतमुनिसुव्रतस्थितिर्मुनिवृषभो मुनिसुव्रतोऽनघः ।
मुनिपरिषदि निर्बभौ भवानुडुपरिषत्परिवीतसोमवत् ॥ १११ ॥
परिणतशिखिकण्ठरागया कृतमदनिग्रहविग्रहाभया ।
भवजिनतपसः प्रसूतया ग्रहपरिवेषरुचेव शोभितम् ॥ ११२ ॥
शशिरुचिशुक्ललोहितं सुरभितरं विरजो निजं वपुः ।
तव शिवमतिविस्मयं यते यदपि च वाङ्मनसोऽयमीहितम् ॥११३॥

स्थितिजननिरोधलक्षणं चरमचरं च जगत्प्रतिक्षणम् ।
इति जिनसकलज्ञलाञ्छनं वचनमिदं वदतां वरस्य ते ॥ ११४ ॥
दुरितमलकलङ्कमष्टकं निरुपमयोगबलेन निर्दहन् ।
अभवदभवसौख्यवन् भवान् भवतु ममापि भवोपशान्तये ॥११५॥

स्तुतिः स्तोतुः साधोः कुशलपरिणामाय स तदा
भवेन्मा वा स्तुत्यः फलमपि ततस्तस्य च सतः ।
किमेवं स्वाधीनाज्जगति सुलभं श्रायसपथे
स्तुयान्नत्वा विद्वान्सततमपि पूज्यं नमिजिनम् ॥ ११६ ॥

त्वया धीमन् ब्रह्मप्रणिधिमनसा जन्मनिगडं
समूलं निर्भिन्नं त्वमसि विदुषां मोक्षपदवी ।
त्वयि ज्ञानज्योतिर्विभवकिरणैर्भाति भगव-
न्नभूवन् खद्योता इव शुचिरवावन्यमतयः ॥ ११७ ॥

विधेयं वार्यं चानुभयमुभयं मिश्रमपि तत्
विशेषैः प्रत्येकं नियमविषयैश्चापरि मतैः ।
सदान्योन्यापेक्षैः सकलभुवनज्येष्ठगुरुणा
त्वया गीतं तत्त्वं बहुनयविवक्षेतरवशात् ॥ ११८ ॥

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं
न सा तत्रारम्भोस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ ।
ततस्तत्सिद्ध्यर्थं परमकरुणो ग्रन्थमुभयं
भवानेवात्याक्षीन्न च विकृतवेषोपधिरतः ॥ ११९ ॥

वपुर्भूषावेषव्यवधिरहितं शान्तिकरणं
यतस्ते संचष्टे स्मरशरविषातङ्कविजयम् ।

विना भीमैः शस्त्रैरदयहृदयामर्षविलयं
ततस्त्वं निर्मोहः शरणमसि नः शान्तिनिलयः ॥ १२० ॥
भगवानृषिः परमयोगदहनहुतकल्मषेन्धनम् ।
ज्ञानविपुलकिरणैः सकलं प्रतिबुध्य बुद्धः कमलायतेक्षणः ॥१२१॥
हरिवंशकेतुरनवद्यविनयदमतीर्थनायकः ।
शीलजलधिरभवो विभवस्त्वमरिष्टनेमिजिनकुञ्जरोऽजरः ॥१२२॥
त्रिदशेन्द्रमौलिमणिरत्नकिरणविसरोपचुम्बितम् ।
पादयुगलममलं भवतो विकसतकुशेशयदलारुणोदरम् ॥ १२३ ॥
नखचन्द्ररश्मिकवचातिरुचिरशिखराङ्गुलिस्थलम् ।
स्वार्थनियतमनसः सुधियः प्रणमन्ति मन्त्रमुखरा महर्षयः ॥१२४॥
द्युतिमद्रथाङ्गरविबिम्बकिरणजटिलांशुमण्डलः ।
नीलजलजदलराशिवपुः सहबन्धुभिर्गरुडकेतुरीश्वरः ॥ १२५ ॥
हलभृच्च ते स्वजनभक्तिमुदितहृदयौ जनेश्वरौ ।
धर्मविनयरसिकौ सुतरां चरणारविन्दयुगलं प्रणेमतुः ॥ १२६ ॥
ककुदं भुवः खचरयोषिदुषितशिखरैरलङ्कृतः ।
मेघपटलपरिवीततटस्तव लक्षणानि लिखितानि वज्रिणा ॥१२७॥
वहतीति तीर्थमृषिभिश्च सततमभिगम्यतेऽद्य च ।
प्रीतिविततहृदयैःपरितो भृशमूर्जयन्त इति विश्रुतोऽचलः॥१२८॥
बहिरन्तरप्युभयथा च करणमविघाति नार्थकृत् ।
नाथ युगपदखिलं च सदा त्वमिदं तलामलकवद्विवेदिथ ॥१२९॥
अतएव ते बुधनुतस्य चरितगुणमद्भुतोदयम् ।
न्यायविहितमवधार्य जिने त्वयि सुप्रसन्नमनसःस्थिता वयं ॥१३०॥

तमालनीलैः सधनुस्तडिद्गुणैः प्रकीर्णभीमाशनिवायुवृष्टिभिः ।
बलाहकैर्वैरिवशैरुपद्रुतो महामना यो न चचाल योगतः ॥१३१॥
बृहत्फणामण्डलमण्डपेन यं स्फुरत्तडित्पिङ्गरुचोपसर्गिणाम् ।
जुगूह नागो धरणो धराधरं विरागसन्ध्यातडिदम्बुदो यथा ॥१३२॥
स्वयोगनिस्त्रिंशनिशातधारया निशात्य यो दुर्जयमोहविद्विषम् ।
अवापदार्हन्त्यमचिन्त्यमद्भुतं त्रिलोकपूजातिशयास्पदं पदम् १३३॥
यमीश्वरं वीक्ष्य विधूतकल्मषं तपोधनास्तेऽपि तथा बुभूषवः ।
वनौकसः स्वश्रमवन्ध्यबुद्धयः शमोपदेशं शरणं प्रपेदिरे ॥ १३४ ॥
स सत्यविद्यातपसां प्रणायकः समग्रधीरुग्रकुलाम्बरांशुमान् ।
मया सदा पार्श्वजिनः प्रणम्यते विलीनमिथ्यापथदृष्टिविभ्रवः ॥१३५
कीर्त्या भुवि भासितया विरतं गुणसमुच्छ्रया भासितया ।
भासोडुसभासितया सोम इव व्योम्नि कुन्द शोभासितया । १३६ ।
तव जिनशासनविभवो जयति कलावपि गुणानुशासनविभवः ।
दोषकशासनविभवः स्तुवंति चैनं प्रभाकृशासनविभवः ॥१३७॥
अनवद्यः स्याद्वादस्तव दृष्टेष्टाविरोधतः स्याद्वादः ।
इतरो न स्याद्वादो साद्वितयविरोधान्मुनीश्वरास्याद्वादः ॥१३८॥
त्वमसि सुरासुरमहितो ग्रन्थिकसत्त्वाशयप्रणामामहितः ।
लोकत्रयपरमहितेऽनावरणज्योतिरुज्वलद्धामहितः ॥१३९॥
सभ्यानामभिरुचितं दधासि गुणभूषणं श्रिया चारुचितम् ।
मग्नं स्वस्यां रुचिरं जयसि च मृगलाञ्छनं स्वकान्त्या रुचितम्
त्वं जिन ! गतमदमायस्तव भावानां मुमुक्षुकामदमायः ।
श्रेयान् श्रीमदमायस्त्वया समादेशि सप्रयामदमायः ॥१४१॥

गिरिभित्त्यवदानवतः श्रीमत इव दन्तिनः श्रवद्दानवतः ।
तव शमवादानवतो गतमूर्जितमपगतप्रमादानवतः ॥ १४२ ॥
बहुगुणसंपदसकलं परमतमपि मधुरवचनविन्यासकलम् ।
नयभक्त्यवतंसकलं तव देव ! मतं समन्तभद्रं सकलम् ॥ १४३ ॥
यो निःशेषजिनोक्तधर्मविषयः श्रीगौतमाद्यैः कृतः
सूक्तार्थैरमलैः स्तवोयमसमः स्वल्पैः प्रसन्नैः पदैः ।
तद्व्याख्यानमदो यथाह्यवगतः किञ्चित्कृतं लेशतः
स्थेयाँश्चन्द्रदिवाकरावधि बुधप्रह्लादचेतस्यलम् ॥ १४४ ॥

(७) द्रव्यसंग्रह ।

जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं ।
देविंदविंदवंदं वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥ १ ॥
जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो ।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥ २ ॥
तिक्काले चदुपाणा इंदिय बलमाउ आणपाणो य ।
ववहारा सो जीवो णिच्चयणयदो दु चेदणा जस्स ॥ ३ ॥
उवओगो दुवियप्पो दंसणं णाणं च दंसणं चदुधा ।
चक्खु अचक्खु ओही दंसणमध केवलं णेयं ॥ ४ ॥
णाणं अट्ठवियप्पं मदिसुदओही आणाणणाणाणि ।
मणपज्जय केवलमवि पच्चक्खपरोक्खभेयं च ॥ ५ ॥
अट्ठचदुणाणदंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं ।

ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥ ६ ॥
वण्ण रस पंच गंधा दो फासा अट्ठ णिच्चया जीवे।
णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो ॥ ७ ॥
पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्चयदो।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥ ८ ॥
ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि।
आदा णिच्चयणयदो चेदणभावं खु आदस्स ॥ ९ ॥
अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा णिच्चयणयदो असंखदेसो वा ॥ १० ॥
पुढविजलतेउवाऊवणप्फदी विविहथावरेइंदी।
विगतिगचदुपंचक्खा तसजीवा होंति संखादि ॥ ११ ॥
समणा अमणा णेया पंचेंद्रिय णिम्मणा परे सव्वे।
बादरसुहमेइंदी सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥ १२ ॥
मग्गणगुणठाणेहिं य चउदसहिं हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥ १३ ॥
णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पादवयेहिं संजुत्ता ॥ १४ ॥
अज्जीवो पुण णेओ पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं।
कालो पुग्गल मुत्तो रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु ॥ १५ ॥
सद्दो बंधो सुहमो थुलो संठाणभेदतमछाया।
उज्जोदादवसहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥ १६ ॥
गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी।

तोयं जह मच्छाणं अच्छंता णेव सो णेई ॥ १७ ॥
ठाणजुदाण अधम्मो पुग्गलजीवाणं ठाणसहयारी ।
छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई ॥ १८ ॥
अवगासदाणजोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं ।
जेणं लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥ १९ ॥
धम्माधम्मा कालो पुग्गलजीवा य संति जावदिये ।
आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥ २० ॥
दव्वपरिवट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो ।
परिणामादीलक्खो वट्टणलक्खो य परमट्ठो ॥ २१ ॥
लोयायासपदेसे इक्केक्के जे ठिया हु इक्केक्का ।
रयणाणं रासीमिव ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥ २२ ॥
एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं ।
उत्तं कालविजुत्तं णयव्वा पंच अत्थिकाया दु ॥ २३ ॥
संति जदो तेणेदे अत्थीति भणंति जिणवरा जम्हा ।
काया इव बहुदेसा तम्हा काया य अत्थिकाया य ॥ २४ ॥
होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे अणंत आयासे ।
मुत्ते तिविह पदेसा कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥ २५ ॥
एयपदेसो वि अणू णाणाखंधप्पदेसदो होदि ।
बहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सव्वण्हु ॥ २६ ॥
जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणुवट्ठद्धं ।
तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥ २७ ॥
आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खा सपुण्णपावा जे ।
जीवाजीवविसेसा ते वि समासेण पभणामो ॥ २८ ॥

आसवदि जेण कम्मं परिणामेणप्पणो स विण्णेओ।
भावासवो जिणुत्तो कम्मासवणं परो होदि॥ २९॥
मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहादओऽथ विण्णेया।
पण पण पणदह तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स ३०
णाणावरणादीणं जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि।
दव्वासवो स णेओ अणेयभेओ जिणक्खादो॥ ३१॥
बज्झदि कम्मं जेण दु चेदणभावेण भावबंधो सो।
कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो॥ ३२॥
पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविधो बंधो।
जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति॥ ३३॥
चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ।
सो भावसंवरो खलु दव्वासवरोहणे अण्णो॥ ३४॥
वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपिहा परीसहजओ य।
चारित्तं बहुभेय णायव्वा भावसंवरविसेसा॥ ३५॥
जहकालेण तवेण य भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण।
भावेण सडदि णेया तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा॥ ३६॥
सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्पणो हु परिणामो।
णेओ स भावमोक्खो दव्वविमोक्खो य कम्मपुधभावो॥ ३७॥
सुहअसुहभावजुत्ता पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा।
सादं सुहाउ णामं गोदं पुण्ण पराणि पावं च॥ ३८॥
सम्मद्दसण णाणं चरण मोक्खस्स कारणं जाणे।
ववहारा णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा॥ ३९॥

रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुयत्तु अण्णदवियम्हि ।
तम्हा तत्तियमइओ होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा ॥ ४० ॥
जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु ।
दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि ॥ ४१ ॥
संसय विमोहविब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स ।
गहणं सम्मं णाण सायरमणेयभेयं च ॥ ४२ ॥
जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं ।
अविसेसिदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णये समये ॥ ४३ ॥
दंसणपुव्वं णाणं छदुमत्थाणं ण दुण्णि उवओगा ।
जुगवं जम्हा केवलिणाहे जुगवं तु ते दो वि ॥ ४४ ॥
असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं ।
वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणया दु जिणभणियं ॥ ४५ ॥
बहिरब्भंतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठं ।
णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं ॥ ४६ ॥
दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा ।
तम्हा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसहं ॥ ४७ ॥
मा मुज्झह मा रज्जह मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअत्थेसु ।
थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए ॥ ४८ ॥
पणतीस सोल छप्पण चदु दुगमेगं च जवह झाएह ।
परमेट्ठीवाचयाणं अण्णं च गुरूवएसेण ॥ ४९ ॥

णट्ठचदुघाइकम्मो दंसणसुहणाणवीरियमईओ ।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥ ५० ॥

णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा ।
पुरिसायारो अप्पा सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो ॥ ५१ ॥

दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे ।
अप्पं परं च जुंजइ सो आयरिओ मुणी झेओ ॥ ५२ ॥

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो ।
सो उवज्झाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥ ५३ ॥

दंसणणाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं ।
साधयदि णिच्चसुद्धं साहू स मुणी णमो तस्स ॥ ५४ ॥

जं किंचि वि चिंतंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू ।
लद्धूणय एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्चयं झाणं ॥ ५५ ॥

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किं वि जेण होइ थिरो ।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे झाणं ॥ ५६ ॥

तवसुदवदवं चेदा झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा ।
तम्हा तत्तियणिरदा तल्लद्धीए सदा होह ॥ ५७ ॥

दव्वसंगहमिण मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदपुण्णा ।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचंदमुणिणा भणियं जं ॥ ५८ ॥

———

(८) रत्नकरण्डश्रावकाचार

(श्री समन्तभद्रस्वामीविरचित)

नमः श्रीवर्द्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥ १ ॥
देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणम् ।
संसारदुःखतः सत्त्वान्यो धरत्युत्तमे सुखे ॥ २ ॥
सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः ।
यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः ॥ ३ ॥
श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्
त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥ ४ ॥
आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना ।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥ ५ ॥
क्षुत्पिपासाजरातङ्कजन्मान्तकभयस्मयाः ।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते ॥ ६ ॥
परमेष्ठी परंज्योतिर्विरागो विमलः कृती ।
सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्तः सार्वः शास्तोपलाल्यते ॥ ७ ॥
अनात्मार्थं विना रागैः शास्ता शास्ति सतो हितम् ।
ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शान्मुरजः किमपेक्षते ॥ ८ ॥
आप्तोपज्ञमनुल्लङ्घ्यमदृष्टेष्टविरोधकम् ।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥ ९ ॥
विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः ।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥ १० ॥

इदमेवेदृशमेव तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा ।
इत्यकम्पायसाम्भोवत्सन्मार्गेऽसंशया रुचिः ॥ ११ ॥
कर्मपरवशे सान्ते दुःखैरन्तरितोदये ।
पापबीजे सुखेऽनास्था श्रद्धानाकाङ्क्षणा स्मृता ॥ १२ ॥
स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रयपवित्रिते ।
निर्जुगुप्सागुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता ॥ १३ ॥
कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसम्मतिः ।
असंपृक्तिरनुत्कीर्तिरमूढा दृष्टिरुच्यते ॥ १४ ॥
स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाश्रयाम् ।
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वदन्त्युपगूहनम् ॥ १५ ॥
दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः ।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितिकरणमुच्यते ॥ १६ ॥
स्वयूथ्यान्प्रति सद्भावसनाथापेतकैतवा ।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ॥ १७ ॥
अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम् ।
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥ १८ ॥
तावदञ्जनचौरोऽङ्गे ततोऽनन्तमती स्मृता ।
उद्दायनस्तृतीयेऽपि तुरीये रेवती मता ॥ १९ ॥
ततो जिनेन्द्रभक्तोऽन्यो वारिषेणस्ततः परः ।
विष्णुश्च वज्रनामा च शेषयोर्लक्ष्यतां गता ॥ २० ॥
नांगहीनमलं छेत्तुं दर्शनं जन्मसन्ततिम् ।
न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदना ॥ २१ ॥

आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम्।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥ २२ ॥
वरोपलिप्सयाशंवान् रागद्वेषमलीमसाः।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यथे ॥ २३ ॥
सग्रन्थारम्भहिंसानां ससारावर्त्तवर्तिनाम्।
पाखण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाखण्डिमोहनम् ॥ २४ ॥
ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः।
अष्टावाश्रीत्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥ २५ ॥
स्मयेन योन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मोधार्मिकैर्विना ॥ २६ ॥
यदि पापनिरोधोऽन्यसम्पदा किं प्रयोजनम्।
अथ पापास्रवोऽस्त्यन्यसम्पदा किं प्रयोजनम् ॥ २७ ॥
सम्यग्दर्शनसपन्नमपि मातङ्गदेहजम्।
देवादेवं विदुर्भस्मगूढां गारान्तरौजसम् ॥ २८ ॥
श्वापि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्बिषात्।
कापि नाम भवेदन्या सम्पद्धर्माच्छरीरिणाम् ॥ २९ ॥
भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिंगिनाम्।
प्रणामं विनयं चैव न कुर्य्युः शुद्धदृष्टयः ॥ ३० ॥
दर्शनं ज्ञानचारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते।
दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्ष्यते ॥ ३१ ॥
विद्यावृत्तस्य संभूतिस्थितिवृद्धिफलोदयाः
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरिव ॥ ३२ ॥

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुने: ॥ ३३ ॥
न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।
श्रेयाऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम् ॥ ३४ ॥
सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिका ॥३५॥
ओजस्तेजोविद्यावीर्ययशोवृद्धिविजयविभवसनाथाः।
महाकुला महार्था मानवतिलका भवन्ति दर्शनपूताः ॥३६॥
अष्टगुणपुष्टितुष्टा दृष्टिविशिष्टाः प्रकृष्टशोभाजुष्टाः।
अमराप्सरसां परिषदि चिरं रमन्ते जिनेन्द्रभक्ताःस्वर्गे ॥३७॥
नवनिधिसप्तद्वयरत्नाधीशाः सर्वभूमिपतयश्चक्रम्।
वर्तयितुं प्रभवन्ति स्पष्टदृशः क्षत्रमौलिशेखरचरणाः ॥३८॥
अमरासुरनरपतिभिर्यमधरपतिभिश्च नूतपादाम्भोजाः।
दृष्ट्या सुनिश्चितार्था वृषचक्रधरा भवन्ति लोकशरण्याः॥३९॥
शिवमजरमरुजमक्षयमव्याबाधं विशोकभयशङ्कम्।
काष्ठागतसुखविद्याविभवं विमलं भजन्ति दर्शनशरणाः ॥४०॥

देवेन्द्रचक्रमहिमानममेयमानम्
राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्रशिरोर्चनीयम्।
धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकम्
लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः ॥ ४१ ॥

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥ ४२ ॥

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम् ।
बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥ ४३ ॥
लोकालोकविभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च ।
आदर्शमिव तथामतिरवैति करणानुयोगं च ॥ ४४ ॥
गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षांगम् ।
चरणानुयोगसमयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति ॥ ४५ ॥
जीवाजीवसुतत्त्वे पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च ।
द्रव्यानुयोगदीपः श्रुतविद्यालोकमातनुते ॥ ४६ ॥
मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः
रागद्वेषनिवृत्त्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥ ४७ ॥
रागद्वेषनिवृत्तेर्हिंसादिनिवर्त्तना कृता भवति ।
अनपेक्षितार्थवृत्तिः कः पुरुष सेवते नृपतीन् ॥ ४८ ॥
हिंसानृतचौर्य्येभ्यो मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च ।
पापप्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम् ॥ ४९ ॥
सकलं विकलं चरणं तत्सकलं सर्वसंगविरतानाम् ।
अनगाराणां विकलं सागाराणां ससंगानाम् ॥ ५० ॥
गृहिणां त्रेधा तिष्ठत्यणुगुणशिक्षाव्रतात्मकं चरणम् ।
पञ्चत्रिचतुर्भेदं त्रयं यथासङ्ख्यमाख्यातम् ॥ ५१ ॥
प्राणातिपातवितथव्याहारस्तेयकाममूर्च्छेभ्यः ।
स्थूलेभ्यः पापेभ्यो व्युपरमणमणुव्रतं भवति ॥ ५२ ॥
सङ्कल्पात्कृतकारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्त्वान् ।
न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः ॥ ५३ ॥

छेदनबन्धनपीडनमतिभारारोपणं व्यतीचाराः ।
आहारवारणापि च स्थूलवधाद्व्युपरतेः पञ्च ॥ ५४ ॥
स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदे ।
यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थुलमृषावादवैरमणम् ॥ ५५ ॥
परिवादरहोभ्याख्या पैशून्यं कूटलेखकरणं च ।
न्यासापहारितापि च व्यतिक्रमाः पञ्च सत्यस्य ॥ ५६ ॥
निहितं वा पतितं वा सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टं ।
न हरति यन्न च दत्ते तदकृशचौर्य्यादुपारमणम् ॥ ५७ ॥
चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसन्मिश्राः ।
हीनाधिकविनिमानं पञ्चास्तेये व्यतीपाताः ॥ ५८ ॥
न तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत् ।
सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसन्तोषनामापि ॥ ५९ ॥
अन्यविवाहाकरणानङ्गक्रीडाविटत्वविपुलतृषः ।
इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पञ्च व्यतीचाराः ॥ ६० ॥
धनधान्यादिग्रन्थं परिमाय ततोऽधिकेषु निःस्पृहता ।
परिमितपरिग्रहः स्यादिच्छापरिमाणनामपि ॥ ६१ ॥
अतिवाहनातिसंग्रहविस्मयलोभातिभारवहनानि ।
परिमितपरिग्रहस्य च विक्षेपा पञ्च लक्ष्यन्ते ॥ ६२ ॥
पञ्चाणुव्रतनिधयो निरतिक्रमणाः फलन्ति सुरलोकं ।
यत्रावधिरष्टगुणा दिव्यशरीरं च लभ्यन्ते ॥ ६३ ॥
मातंगो धनदेवश्च वारिषेणस्ततः परः ।
नीली जयश्च संप्राप्ता पूजातिशयमुत्तमम् ॥ ६४ ॥

धनश्रीसत्यघोषौ च तापसा रक्षकावपि ।
उपाख्येयास्तथा श्मश्रुनवनीतो यथाक्रमम् ॥ ६५ ॥
मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपञ्चकम् ।
अष्टौमूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥ ६६ ॥
दिग्व्रतमनर्थदण्डव्रतं च भोग पभोगपरिमाणम् ।
अनुबृंहणाद्गुणानामाख्यान्ति गुणव्रतान्यार्याः ॥ ६७ ॥
दिग्वलयं परिगणितं कृत्वातोऽहं बहिर्न यास्यामि ।
इतिसङ्कल्पो दिग्व्रतमामृत्यणुपापविनिवृत्त्यै ॥ ६८ ॥
मकराकरसरिदटवीगिरिजनपदयोजनानि मर्य्यादाः ।
प्राहुर्दिशां दशानां प्रतिसंहारे प्रसिद्धानि ॥ ६९ ॥
अवधेर्बहिरणुपापप्रतिविरतेर्दिग्व्रतानि धारयताम् ।
पञ्चमहाव्रतपरिणतिमणुव्रतानि प्रपद्यन्ते ॥ ७० ॥
प्रत्याख्यानतनुत्वान्मन्दतराश्चरणमोहपरिणामाः ।
सत्त्वेन दुरवधारा महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते ॥ ७१ ॥
पञ्चानां पापानां हिंसादीनां मनोवचःकायैः ।
कृतकारितानुमोदैस्त्यागस्तु महाव्रतं महताम् ॥ ७२ ॥
ऊर्द्धाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाताः क्षेत्रवृद्धिरवधीनाम् ।
विस्मरणं दिग्विरतेरत्याशाः पञ्च मन्यन्ते ॥ ७३ ॥
अभ्यन्तरं दिगवधेरपार्थिकेभ्यः सपापयोगेभ्यः ।
विरमणमनर्थदण्डव्रतं विदुर्व्रतधराग्रण्यः ॥ ७४ ॥
पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः पञ्च ।
प्राहुः प्रमादचर्य्यामनर्थदण्डानदण्डधराः ॥ ७५ ॥

तिर्यक्क्लेशवणिज्याहिंसारम्भप्रलम्भनादीनाम् ।
कथाप्रसङ्गप्रसवः स्मर्त्तव्यः पाप उपदेशः ॥ ७६ ॥

परशुकृपाणखनित्रज्वलनायुधशृङ्गिशृङ्खलादीनाम् ।
वधहेतूनां दानं हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधाः ॥ ७७ ॥

वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः ।
आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः ॥ ७८

आरम्भसङ्गसाहसमिथ्यात्वद्वेषरागमदमदनैः ।
चेतःकलुषयतां श्रुतिरवधीनां दुःश्रुतिर्भवति ॥ ७९ ॥

क्षितिसलिलदहनपवनारम्भं विफलं वनस्पतिच्छेदं ।
सरणं सारणमपि च प्रमादचर्यां प्रभाषन्ते ॥ ८० ॥

कन्दर्पं कौत्कुच्यं मौखर्यमतिप्रसाधनं पञ्च ।
असमीक्ष्य चाधिकरणं व्यतीतयोऽनर्थदण्डकृद्विरतेः ॥ ८१ ॥

अक्षार्थानां परिसंख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम् ।
अर्थवतामप्यवधौ रागरतीनां तनूकृतये ॥ ८२ ॥

भुक्त्वा परिहातव्यो भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः ।
उपभोगोऽशनवसनप्रभृतिः पञ्चेन्द्रियो विषयः ॥ ८३ ॥

त्रसहतिपरिहरणार्थं क्षौद्रं पिशितं प्रमादपरिहृतये ।
मद्यं च वर्जनीयं जिनचरणौ शरणमुपयातैः ॥ ८४ ॥

अल्पफलबहुविघातान्मूलकमार्द्राणि शृङ्गवेराणि ।
नवनीतनिम्बकुसुमं कैतकमित्येवमवहेयम् ॥ ८५ ॥

यदनिष्टं तद्व्रतयेद्यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात् ।
अभिसन्धिकृता विरतिर्विषयाद्योग्याद्व्रतं भवति ॥ ८६ ॥

नियमो यमश्च विहितौ द्वेधा भोगोपभोगसंहारे।
नियमः परिमितकालो यावज्जीवं यमो ध्रियते ॥ ८७ ॥
भोजनवाहनशयनस्नानपवित्राङ्गरागकुसुमेषु।
ताम्बूलवसनभूषणमन्मथसंगीतगीतेषु ॥ ८८ ॥
अद्य दिवा रजनी वा पक्षो मासस्तथर्तुरयनं वा।
इति कालपरिच्छित्त्या प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः ॥ ८९ ॥
विषयविषतोऽनुपेक्षानुस्मृतिरतिलौल्यमतितृषाऽनुभवो।
भोगोपभोगपरिमाव्यतिक्रमा पञ्च कथ्यन्ते ॥ ९० ॥
देशावकाशिकं वा सामायिकं प्रोषधोपवासो वा।
वैयावृत्यं शिक्षाव्रतानि चत्वारि शिष्टानि ॥ ९१ ॥
देशावकाशिकं स्यात्कालपरिच्छेदनेन देशस्य।
प्रत्यहमणुव्रतानां प्रतिसंहारो विशालस्य ॥ ९२ ॥
गृहहारिग्रामाणां क्षेत्रनदीदावयोजनानां च।
देशावकाशिकस्य स्मरन्ति सीमा तपोवृद्धाः ॥ ९३ ॥
संवत्सरमृतुरयनं मासचतुर्मासपक्षमृक्षं च।
देशावकाशिकस्य प्राहुः कालावधिं प्राज्ञाः ॥ ९४ ॥
सीमान्तानां परतः स्थूलेतरपञ्चपापसंत्यागात्।
देशावकाशिकेन च महाव्रतानि प्रसाध्यन्ते ॥ ९५ ॥
प्रेषणशब्दानयनं रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ।
देशावकाशिकस्य व्यपदिश्यन्तेऽत्ययाः पञ्च ॥ ९६ ॥
आसमयमुक्ति मुक्तं पञ्चाघानामशेषभावेन।
सर्वत्र च सामायिकाः सामायिकं नाम शंसन्ति ॥ ९७ ॥

मूर्धरुहमुष्टिवासोबन्धं पर्य्यंकबन्धनं चापि ।
स्थानमुपवेशनं वा समयं जानन्ति समयज्ञाः ॥ ९८ ॥
एकान्ते सामायिकं निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषु च ।
चैत्यालयेषु वापि परिचेतव्यं प्रसन्नधिया ॥ ९९ ॥
व्यापारवैमनस्याद्विनिवृत्त्यामन्तरात्मविनिवृत्त्या ।
सामायिकं बध्नीयादुपवासे चैकभुक्ते वा ॥ १०० ॥
सामायिकं प्रतिदिवसं यथावदप्यनलसेन चेतव्यं ।
व्रतपञ्चकपरिपूरणकारणमवधानयुक्तेन ॥ १०१ ॥
सामायिके सारम्भाः परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि ।
चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावं ॥ १०२ ॥
शीतोष्णदंशमशकपरीषहमुपसर्गमपि च मौनधराः ।
सामायिकं प्रतिपन्ना अधिकुर्वीरन्नचलयोगाः ।
अशरणमशुभमनित्यं दुःखमनात्मानमावसामि भवम् ।
मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति ध्यायन्तु सामयिके ॥ १०४ ॥
वाक्कायमानसानां दुःप्रणिधानान्यनादरस्मरणे ।
सामायिकस्यातिगमा व्यज्यन्ते पञ्च भावेन ॥ १०५ ॥
पर्वण्यष्टम्यां च ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु ।
चतुरभ्यवहार्य्याणां प्रत्याख्यानं सदेच्छाभिः ॥ १०६ ॥
पञ्चानां पापानामलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणाम् ।
स्नानाञ्जननस्यानामुपवासे परिहृतिं कुर्य्यात् ॥ १०७ ॥
धर्मामृतं सतृष्णः श्रवणाभ्यां पिबतु पाययेद्वान्यान् ।
ज्ञानध्यानपरो वा भवतूपवसन्नतन्द्रालुः ॥ १०८ ॥

चतुराहारविसर्जनमुपवासः प्रोषधः सकृद्भुक्तिः ।
स प्रोषधोपवासो यदुपोष्यारम्भमाचरति ॥ १०९ ॥
ग्रहणविसर्गास्तरणान्यदृष्टमृष्टान्यनादरास्मरणे ।
यत्प्रोषधोपवासव्यतिलङ्घनपञ्चकं तदिदम् ॥ ११० ॥
दानं वैयावृत्त्यं धर्माय तपोधनाय गुणनिधये ।
अनपेक्षितोपचारोपक्रियमगृहाय विभवेन ॥ १११ ॥
व्यापत्तिव्यपनोदः पदयोः संवाहनं च गुणरागात् ।
वैयावृत्त्यं यावानुपग्रहोऽन्योऽपि संयमिनाम् ॥ ११२ ॥
नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन ।
अपसूनारम्भाणामार्याणामिष्यते दानम् ॥ ११३ ॥
गृहकर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम् ।
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि ॥ ११४ ॥
उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा ।
भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु ॥ ११५ ॥
क्षितिगतमिववटबीजं पात्रगतं दानमल्पमपि काले ।
फलतिच्छायाविभवं बहुफलमिष्टं शरीरभृतां ॥ ११६ ॥
आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्च दानेन ।
वैयावृत्त्यं ब्रुवते चतुरात्मत्वेन चतुरस्राः ॥ ११७ ॥
श्रीषेणवृषभसेने कौण्डेशः शूकरश्च दृष्टान्ताः ।
वैयावृत्त्यस्यैते चतुर्विकल्पस्य मन्तव्याः ॥ ११८ ॥
देवाधिदेवचरणे परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणम् ।
कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यं ॥ ११९ ॥

अर्हच्चरणसपर्यामहानुभावं महात्मनामवदत् ।
भेकः प्रमोदमत्तः कुसुमेनैकेन राजगृहे ॥ १२० ॥

हरितपिधाननिधाने ह्यनादरास्मरणमत्सरत्वानि ।
वैयावृत्त्यस्यैते व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥ १२१ ॥

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे ।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥ १२२ ॥

अन्तक्रियाधिकरणं तपःफलं सकलदर्शिनः स्तुवते ।
तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यं ॥ १२३ ॥

स्नेहं वैरं सङ्गं परिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः ।
स्वजनं परिजनमपि च क्षान्त्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः ॥१२४॥

आलोच्य सर्वमेनः कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजं ।
आरोपयेन्महाव्रतमामरणस्थायि निःशेषं ॥ २२५ ॥

शोकं भयमवसादं क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा ।
सत्त्वोत्साहमुदीर्य च मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः ॥ १२६ ॥

आहारं परिहाप्य क्रमशः स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम् ।
स्निग्धं च हापयित्वा खरपानं पूरयेत्क्रमशः ॥ १२७ ॥

खरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या ।
पञ्चनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन ॥ १२८ ॥

जीवितमरणाशंसे भयमित्रस्मृतिनिदाननामानः ।
सल्लेखनातिचाराः पञ्च जिनेन्द्रैः समादिष्टाः ॥ ११९ ॥

निःश्रेयसमभ्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम् ।
निःपिबति पीतधर्मा सर्वैर्दुःखैरनालीढः ॥ १३० ॥

जन्मजरामयमरणैः शोकदुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम् ।
निर्वाणं शुद्धसुखं निःश्रेयसमिष्यते नित्यम् ॥ १३१ ॥

विद्यादर्शनशक्तिस्वास्थ्यप्रह्लादतृप्तिशुद्धियुजः ।
निरतिशया निरवधयो निःश्रेयसमावसन्ति सुखं ॥१३२॥

कालकल्पशतेऽपि च गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या ।
उत्पातोऽपि यदि स्यात् त्रिलोकसंभ्रान्तिकरणपटुः ॥१३३॥

निःश्रेयसमाधिपन्नास्त्रैलोक्यशिखामणिश्रियं दधते ।
निष्किट्टिकालिकाच्छविचामीकरभासुरात्मानः ॥ १३४ ॥

पूजार्थाज्ञैश्वर्यैर्बलपरिजनकामभोगभूयिष्ठैः ।
अतिशयितभुवनमद्भुतमभ्युदयं फलति सद्धर्मः ॥ १३५ ॥

श्रावकपदानि देवैरेकादश देशितानि येषु खलु ।
स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह संतिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः ॥ १३६ ॥

सम्यग्दर्शनशुद्धः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः ।
पञ्चगुरुचरणशरणो दर्शनिकस्तत्त्वपथगृह्यः ॥ १३७ ॥

निरतिक्रमणमणुव्रतपञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि ।
धारयते निःशल्यो योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिकः ॥ १३८ ॥

चतुरावर्त्तत्रितयश्चतुःप्रणामः स्थितो यथाजातः ।
सामयिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी ॥ १३९ ॥

पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य ।
प्रोषधनियमविधायी प्रणधिपरः प्रोषधानशनः ॥ १४० ॥

मूलफलशाकशाखाकरीकन्दप्रसूनबीजानि ।
नामानि योऽत्तिसोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्तिः ॥ १४१ ॥

अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम्
स च रात्रिभुक्तिविरतः सत्त्वेष्वनुकम्पमानमनाः ॥ १४२ ॥
मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतिगन्धि बीभत्सं ।
पश्यन्नङ्गमनङ्गाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥ १४३ ॥
सेवाकृषिवाणिज्यप्रमुखादारम्भतो व्युपारमति ।
प्राणातिपातहेतोर्योऽसावरम्भविनिवृत्तः ॥ १४४ ॥
बाह्येषु दशसु वस्तुषु ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः ।
स्वस्थः सन्तोषपरः परिचित्तपरिग्रहाद्विरतः ॥ १४५ ॥
अनुमतिरारम्भे वा परिग्रहे वैहिकेषु कर्मसु वा ।
नास्ति खलु यस्य समधीरनुमतिविरतः स मन्तव्यः ॥१४६॥
गृहतो मुनिवनमित्वा गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य ।
भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः ॥ १४७ ॥
पापमरातिर्धर्मो बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन् ।
समयं यदि जानीते श्रेयो ज्ञाता ध्रुवं भवति ॥ १४८ ॥
येन स्वयं वीतकलङ्कविद्या दृष्टिक्रियारत्नकरण्डभावं ।
नीतस्तमायाति पतीच्छयेव सर्वार्थसिद्धिस्त्रिषुविष्टपेषु॥१४९॥

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव
सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु ।
कुलमिव गुणभूषा कन्यका संपुनीता-
ज्जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः ॥ १५० ॥

(१) आलापपद्धतिः
(श्रीमद्देवसेनविरचिता)

गुणानां विस्तरं वक्ष्ये स्वभावानां तथैव च।
पर्यायाणां विशेषेण नत्वा वीरं जिनेश्वरम् ॥ १ ॥

आलापपद्धतिर्वचनरचनाऽनुक्रमेण नयचक्रस्योपरि उच्यते। सा च किमर्थम्? द्रव्यलक्षणसिद्ध्यर्थं स्वभावसिद्ध्यर्थञ्च। द्रव्याणि कानि? जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि। सद्द्रव्यलक्षणम् उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् इति द्रव्याधिकारः

लक्षणानि कानि? अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्वं, अगुरुलघुत्वं, प्रदेशत्वं, चेतनत्वमचेतनत्वं मूर्तत्वममूर्तत्वं द्रव्याणां दश सामान्यगुणाः प्रत्येकमष्टावष्टौ सर्वेषाम्।

[एकैकद्रव्ये अष्टौ अष्टौ गुणा भवन्ति। जीवद्रव्ये अचेतनत्वं मूर्तत्वं च नास्ति, पुद्गलद्रव्ये चेतनत्वममूर्तत्वं च नास्ति धर्माधर्माकाशकालद्रव्येषु चेतनत्वं मूर्तत्वं च नास्ति। एवं द्विद्विगुणवर्जिते अष्टौ अष्टौ गुणाः प्रत्येकद्रव्ये भवन्ति।]

ज्ञानदर्शनसुखवीर्याणि स्पर्शरसगन्धवर्णाः गतिहेतुत्वं स्थितिहेतुत्वमवगाहनहेतुत्वं वर्त्तनाहेतुत्वं चेतनत्वमचेतनत्वं मूर्तत्वममूर्तत्वं द्रव्याणां षोडश विशेषगुणाः। षोडशविशेषगुणेषु जीवपुद्गलयोः षडिति। जीवस्य ज्ञानदर्शनसुखवीर्याणि चेतनत्वममूर्तत्वमिति षट्। पुद्गलस्य स्पर्शरसगन्धवर्णाः मूर्तत्वमचेतनत्वमिति षट्।

---

१ सूक्ष्मा अवाग्गोचरा प्रतिक्षणं वर्तमाना आगमप्रामाण्यदभ्युपगम्या अगुरुलघुगुणाः २ क्षेत्रत्वम् अविभागि पुद्गलपरमाणुनावष्टब्धम्। ३ इति खपुस्तकेऽधिकपाठः।

इतरेषां धर्माधर्माकाशकालानां प्रत्येकं त्रयो गुणाः। धर्मद्रव्ये गतिहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमेते त्रयो गुणाः। अधर्मद्रव्ये स्थितिहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमिति। आकाशद्रव्ये अवगाहनहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमिति कालद्रव्ये वर्त्तनाहेतुत्वममूर्तत्वमचेतनत्वमिति विशेषगुणाः। अन्तस्थाश्चत्वारो गुणाः स्वजात्यपेक्षया सामान्यगुणा विजात्यपेक्षया तएव विशेषगुणाः। इति गुणाधिकारः।

गुणविकाराः पर्यायास्ते द्वेधा स्वभावविभावपर्यायभेदात्। अगुरुलघुविकाराः स्वभावपर्यायास्ते द्वादशधा षड्वृद्धिरूपाः षड्ढानिरूपाः। अनन्तभागवृद्धिः, असंख्यातभागवृद्धिः, संख्यातभागवृद्धिः, संख्यातगुणवृद्धिः, असंख्यातगुणवृद्धिः, अनन्तगुणवृद्धिः, एवं षड्वृद्धिरूपास्तथा अनन्तभागहानिः, असंख्यातभागहानिः, संख्यातभागहानिः संख्यातगुणहानिः, असंख्यातगुणहानिः, अनन्तगुणहानिः, एवं षड्ढानिरूपा ज्ञेयाः विभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायाश्चतुर्विधा नरनारकादिपर्यायाः अथवा चतुरशीतिलक्षा योनयः। विभावगुणव्यञ्जनपर्याया मत्यादयः। स्वभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायाश्चरमशरीरात् किञ्चिन्न्यूनसिद्धपर्यायाः स्वभावगुणव्यञ्जनपर्याया अनन्तचतुष्टयस्वरूपा जीवस्य। पुद्गलस्य तु द्व्यणुकादयो विभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायाः। रसरसान्तरगन्धगन्धान्तरादिविभावगुणव्यञ्जनपर्यायाः। अविभागिपुद्गलपरमाणुः स्वभावद्रव्यव्यञ्जनपर्यायः। वर्णगन्धरसैकैकाविरुद्धस्पर्शद्वयं स्वभावगुणव्यञ्जनपर्यायाः।

अनाद्यनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम्।

---

१ द्रव्यक्षेत्र ...पेक्षया। २ स्वभावपर्यायाः सर्वद्रव्येषु विभावपर्याया जीवपुद्गलयोश्च। ३ आद्यन्तरहिते।

उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले ॥१॥
धर्माधर्मनभःकाला अर्थपर्यायगोचराः।
व्यञ्जनेन तु संबद्धौ द्वावन्यौ जीवपुद्गलौ ॥ २ ॥

इति पर्यायाधिकारः। गुणपर्ययवद्द्रव्यम्।

स्वभावाः कथ्यन्ते। अस्ति[1]स्वभावः, नास्ति[2]स्वभावः, नित्य[3]स्वभावः अनित्य[4]स्वभावः, एक[5]स्वभाव, अनेकस्वभावः, भेद[6]स्वभावः, अभेदस्वभावः, भव्यस्वभावः, अभव्यस्वभावः, परम[7]स्वभावः, द्रव्याणामेकादश सामान्यस्वभावाः, चेतन[8]स्वभावः, अचेतन[9]स्वभावः, मूर्त[10]स्वभावः, अमूर्त्तस्वभावः एकप्रदेशस्वभावः, अनेकप्रदेशस्वभावः, विभाव[11]स्वभावः, शुद्धस्वभावः, अशुद्धस्वभावः, उपचरितस्वभाव एते द्रव्याणां दश विशेषस्वभावाः। जीवपुद्गलयोरेकविंशतिः, चेतनस्वभावः मूर्तस्वभावः, विभावस्वभावः, एकप्रदेशस्वभावः, अशुद्ध-[उपचरित स्वभाव]स्वभाव एतैः पञ्चभिः स्वभावैर्विना धर्मादित्रयाणां षोडश स्वभावाः सन्ति। तत्र बहुप्रदेशं विना कालस्य पञ्चदश[12] स्वभावाः।

एकविंशतिभावाः स्युर्जीवपुद्गलयोर्मताः।
धर्मादीनां षोडश स्युः काले पञ्चदश स्मृताः ॥ ३ ॥

---

१ स्वभावलाभादच्युतत्वादग्निदाहवदस्तिस्वभावः। २ परस्वरूपेणाभावान्नास्तिस्वभावः ३ निज निज नानापर्यायेषु तदेवेदमिति द्रव्यस्योपलम्भान्नित्यस्वभावः। ४ तस्याप्यनेकपर्यायपरिणामित्वादनित्यस्वभावः। ५ स्वभावानामेकाधारत्वादेकस्वभावः। ६ गुणगुण्यादिसंज्ञाभेदाद्भेदस्वभावः। ७ पारिणामिकभावप्रधानत्वेन परमस्वभावः। ८ असद्भूतव्यवहारेण कर्मनोकर्मणोरपि चेतनस्वभावः। ९ जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेणाचेतनस्वभावः। १० जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेण मूर्तस्वभावः। ११ "तत्काळपर्यायाक्रान्तं वस्तु भावो विधीयते" १२ तस्य एकप्रदेशसम्भवात्।

ते कुतो ज्ञेयाः ? प्रमाणनयविवक्षातः । सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम् ।
तद्द्वेधा प्रत्यक्षेतरभेदात् । अवधिमनःपर्ययावेकदेशप्रत्यक्षौ । केवलं
सकलप्रत्यक्षं । मतिश्रुते परोक्षे । प्रमाणमुक्तं । तदवयवा नयाः ।

नयभेदा उच्यन्ते,—

णिच्छयववहारणया मूलमभेयाण याण सव्वाणं ।
णिच्छय साहणहेओ दव्वयपज्जत्थिया मुणह ॥ ४ ॥

द्रव्यार्थिकः, पर्यायार्थिकः, नैगमः, संग्रहः, व्यवहारः, ऋजुसूत्रः, शब्दः, समभिरूढः, एवंभूत इति नव नयाः स्मृताः । उपनयाश्च कथ्यन्ते । नयानां समीपा उपनयाः । सद्भूतव्यवहारः असद्भूतव्यवहारः उपचरितासद्भूतव्यवहारश्चेत्युपनयास्त्रेधा ।

इदानीमेतेषां भेदा उच्यन्ते । द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः ।

कर्मोपाधिनिरपेक्षः शुद्धद्रव्यार्थिको यथा संसारी जीवः सिद्धसदृक् शुद्धात्मा । उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहकः शुद्धद्रव्यार्थिको यथा द्रव्यं नित्यम् । भेदकल्पनानिरपेक्षः शुद्धो द्रव्यार्थिको यथा निजगुणपर्यायस्वभावाद्द्रव्यमभिन्नम् ।

कर्मोपाधिसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथा क्रोधादिकर्मजभाव आत्मा । उत्पादव्ययसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथैकस्मिन् समये द्रव्यमुत्पादव्ययध्रौव्यात्मकम् । भेदकल्पनासापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथात्मनो दर्शनज्ञानादयो गुणाः । अन्वयद्रव्यार्थिको यथा—गुणपर्यायस्वभावं द्रव्यम् । स्वद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिको यथा—स्वद्रव्या-

---

१ निश्चयनया द्रव्यस्थिताः व्यवहारनयाः पर्यायस्थिताः । २ नयान् गृहीत्वा वस्तुनोऽनेकविकल्पत्वेन कथनमुपनयः । ३ आदिशब्देन स्वक्षेत्रस्वकालस्वभावा ग्राह्याः ।

दिचतुष्टयापेक्षया द्रव्यमस्ति। परद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिको यथा—परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया द्रव्यं नास्ति। परमभावग्राहकद्रव्यार्थिको यथा—ज्ञानस्वरूप आत्मा। अत्रानेकस्वभावानां मध्ये ज्ञानाख्यः परमस्वभावो गृहीतः।

इति द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः।

अथपर्यायार्थिकस्य षड्भेदा उच्यन्ते,—

अनादि नित्यपर्यायार्थिको यथा पुद्गलपर्यायो नित्यो मेर्वादिः। सादिनित्यपर्यायार्थिको यथा—सिद्धपर्यायो नित्यः। सत्तागौणत्वेनोत्पादव्ययग्राहकस्वभावो ऽनित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा—समयं समयं प्रति पर्याया विनाशिनः। सत्तासापेक्षस्वभावो ऽनित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा—एकस्मिन् समये त्रयात्मकः पर्यायः। कर्मोपाधिनिरपेक्षस्वभावो ऽनित्यशुद्धपर्यायार्थिको यथा—सिद्धपर्यायसदृशाः शुद्धाः संसारिणां पर्यायाः। कर्मोपाधिसापेक्षस्वभावोऽनित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा—संसारिणामुत्पत्तिमरणे स्तः। इति पर्यायार्थिकस्य षड् भेदाः।

नैगमस्त्रेधा भूतभाविवर्त्तमानकालभेदात्। अतीते वर्त्तमानारोपणं यत्र स भूतनैगमो यथा—अद्य दीपोत्सवदिने श्रीवर्द्धमानस्वामी मोक्षं गतः। भाविनि भूतवत्कथनं यत्र स भाविनैगमो यथा—अर्हन् सिद्ध एव। कर्तुमारब्धमीषन्निष्पन्नमनिष्पन्नं वा वस्तु निष्पन्नवत्कथ्यते यत्र स वर्त्तमाननैगमो यथा—ओदनः पच्यते इति नैगमस्त्रेधा।

१ सुवर्णे हि रजतादिरूपतया नास्ति रजतक्षेत्रेण रजतकालेन रजतपर्यायेण च नास्ति। २ पूर्वपर्यायस्य विनाशः, उत्तरपर्यायस्योत्पादः, द्रव्यत्वेन ध्रुवत्वम्।

संग्रहो द्विविधः। सामान्यसंग्रहो यथा—सर्वाणि द्रव्याणि परस्परमविरोधीनि। विशेषसंग्रहो यथा—सर्वे जीवाः परस्परमविरोधिनः इति सङ्ग्रहोऽपि द्विधा।

व्यवहारोऽपि द्वेधा। सामान्यसङ्ग्रहभेदको व्यवहारो यथा—द्रव्याणि जीवाजीवाः। विशेषसंग्रहभेदको व्यवहारो यथा—जीवाः संसारिणो मुक्ताश्च इति व्यवहारोऽपि द्वेधा।

ऋजुसूत्रो द्विविधः। सूक्ष्मर्जुसूत्रो यथा—एकसमयावस्थायी पर्यायः। स्थूलर्जुसूत्रो यथा—मनुष्यादिपर्यायास्तदायुःप्रमाणकालं तिष्ठन्ति इति ऋजुसूत्रोऽपि द्वेधा।

शब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः प्रत्येकमेकैका नयाः। शब्दनयो यथा दारा भार्या कलत्रं जलं आपः। समभिरूढनयो यथा गौः पशुः। एवंभूतनयो यथा—इन्दतीति इन्द्रः। उक्ता अष्टाविंशतिर्नयभेदाः।

उपनयभेदा उच्यन्ते—सद्भूतव्यवहारो द्विधा। शुद्धसद्भूतव्यवहारो यथा—शुद्धगुणशुद्धगुणिनोः शुद्धपर्यायशुद्धपर्यायिणोर्भेदकथनम्। अशुद्धसद्भूतव्यवहारो यथाऽशुद्धगुणाऽशुद्धगुणिनोरशुद्धपर्यायाऽशुद्धपर्यायिणोर्भेदकथनम्। इति सद्भूतव्यवहारोऽपि द्वेधा।

असद्भूतव्यवहारस्त्रेधा। स्वजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा—परमाणुर्बहुप्रदेशीति कथनमित्यादि। विजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा मूर्तं मतिज्ञानं यतोमूर्तद्रव्येण जनितम्। स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा ज्ञेये जीवेऽजीवे ज्ञानमिति कथनं ज्ञानस्य विषयात्। इत्यसद्भूतव्यवहारस्त्रेधा।

---

१ सिद्धपर्यायसिद्धजीवयोः।

उपचरितासद्भुतव्यवहारस्त्रेधा । स्वजात्युपचरितासद्भुतव्यवहारो यथा—पुत्रदारादि मम । विजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा-वस्त्राभरणहेमरत्नादि मम । स्वजातिविजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा—देशराज्यदुर्गादि 'मम इत्युपचरितासद्भुतव्यवहारस्त्रेधा ।

सहभुवो गुणाः, क्रमवर्तिनः पर्यायाः । गुण्यन्ते पृथक्क्रियन्ते द्रव्यं द्रव्यांतरात्ते गुणाः। अस्तीत्येतस्य भावोऽस्तित्वं सद्रूपत्वम्। वस्तुनो भावो वस्तुत्वम्, सामान्यविशेषात्मकं वस्तु । द्रव्यस्य भावो द्रव्यत्वम् निजनिजप्रदेशसमूहैरखण्डवृत्त्या स्वभावविभावपर्यायान् द्रवति द्रोष्यति अदुद्रवदिति द्रव्यम् । सद्द्रव्यलक्षणम्, सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्नोतीति सत् । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् । प्रमेयस्य भावः प्रमेयत्वम् प्रमाणेन (स्वपरस्वरूप-) परिच्छेद्यं प्रमेयम् । अगुरुलघोर्भावोऽगुरुलघुत्वम्। सूक्ष्मा वागगोचरा प्रतिक्षणं वर्तमाना आगमप्रमाणादभ्युपगम्या अगुरुलघुगुणाः।

" सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते ।
आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः " ॥ ५ ॥

प्रदेशस्य भावः प्रदेशत्वं क्षेत्रत्वं अविभागिपुद्गलपरमाणुनावष्टब्धम् । चेतनस्य भावश्चेतनत्वम् चैतन्यमनुभवनम् ।

चैतन्यमनुभूतिः स्यात् सा क्रियारूपमेव च ।
क्रिया मनोवचःकायेष्वन्विता वर्तते ध्रुवम् ॥ ६ ॥

अचेतनस्य भावोऽचेतनत्वमचैतन्यमननुभवनम् । मूर्तस्य भावो मूर्तत्वं रूपादिमत्वम् । अमूर्तस्य भावोऽमूर्तत्वं रूपादिरहित-

१ अन्वयिनः । २ प्राप्नोति । ३ ज्ञातुं योग्यम् । ४ व्याप्तं । ५ अनुभूतिर्जीवाजीवादिपदार्थानां चेतनमात्रम् । ६ रूपरसगन्धस्पर्श-वत्वम् ।

" दुर्नयैकान्तमारूढा भावानां स्वार्थिका हि ते ॥
स्वार्थिकाश्च विपर्यस्ताः सकलङ्का नया यतः " ॥ ८ ॥

तत्कथं तथाहि—सर्वथैकान्तेन सद्रूपस्य न नियतार्थव्यवस्था-संकरादिदोषत्वात् तथा—सद्रूपस्य सकलशून्यताप्रसङ्गात् । नित्यस्यै-करूपत्वादेकरूपस्यार्थक्रियाकारित्वाभावः; अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः । अनित्यपक्षेऽपि, अनित्यरूपत्वादर्थक्रियाकारि-त्वाभावः; अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः । एकस्वरूपस्यै-कांतेन विशेषाभावः; सर्वथैकरूपत्वात् विशेषाभावे सामान्यस्या-प्यभावः ।

" निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत्खरविषाणवत् ।
सामान्यरहितत्वाच्च विशेषस्तद्वदेव हि " ॥ ९ ॥

इति ज्ञेयः ।

अनेकपक्षेऽपि तथा द्रव्याभावो निराधारत्वात् आधाराधेया-भावाच्च । भेदपक्षेऽपि विशेषस्वभावानां निराधारत्वादर्थक्रियाका-रित्वाभावः; अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः । अभेदपक्षे-ऽपिसर्वेषामेकत्वम् सर्वेषामेकत्वेऽर्थक्रियाकारित्वाभाव अर्थक्रियाका-रित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः । भव्यस्यैकांतेन पारिणामिकत्वात् द्रव्य-स्य द्रव्यांतरत्वप्रसङ्गात् सङ्करादिदोषसम्भवात् । सङ्करव्यतिकर-विरोधवैयधिकरण्यानवस्थासंशयाप्रतिपत्त्यभावाश्चेति । सर्वथाऽभ-व्यस्यैकान्तेऽपि तथा शून्यताप्रसङ्गात् स्वभावस्वरूपस्यैकान्तेन संसाराभावः । विभावपक्षेऽपि मोक्षस्याप्यभावः । सर्वथा चैतन्य-

१ यथा सिंहो माणवकः (माणवको मार्जारः) ।
२ निरन्वयत्वादित्यपि पाठः । ३ भव्याभव्यजीवत्वानि ।

मेवेत्युक्ते सर्वेषां शुद्धज्ञानचैतन्यावाप्तिः स्यात्, तथा सति ध्यानं ध्येयं ज्ञानं ज्ञेयं गुरुशिष्याद्यभावः । सर्वथाशब्दः सर्वप्रकारवाची, अथवा सर्वकालवाची, अथवा नियमवाची, वा अनेकान्तसापेक्षी वा ? यदि सर्वप्रकारवाची सर्वकालवाची अनेकान्तवाची वा सर्वादिगणे पठनात् सर्वशब्द एवंविधश्चेत्तर्हि सिद्धं नः समीहितम् । अथवा नियमवाची चेत्तर्हि सकलार्थानां तव प्रतीतिः कथं स्यात् ? नित्यः, अनित्यः, एकः, अनेक भेदः अभेदः कथं प्रतीतिः स्यात नित्यमितपक्षत्वात् । तथाऽचैतन्यपक्षेऽपि सकलचैतन्योच्छेदः स्यात्, मूर्त्तस्यैकान्तेनात्मनो मोक्षस्यावाप्तिः स्यात । सर्वथाऽमूर्त्तस्यापि तथात्मनः संसारविलोपः स्यात् । एकप्रदेशस्यैकान्तेनाखण्डपरिपूर्णस्यात्मनोऽनेककार्यकारित्व एव हानिः स्यात् । सर्वथाऽनेकप्रदेशत्वेऽपि तथा तस्यानर्थकार्यकारित्वं स्वस्वभावशून्यताप्रसङ्गात् । शुद्धस्यैकान्तेनात्मनो न कर्ममलकलङ्कावलेपः सर्वथा निरञ्जनत्वात् । सर्वथाऽशुद्धैकान्तेऽपि तथात्मनो न कदापि शुद्धस्वभावप्रसङ्गः स्यात तन्मयत्वात[1] । उपचरितैकान्तपक्षेऽपि नात्मज्ञता सम्भवति नियमितपक्षत्वात । तथात्मनोऽनुपचरितपक्षेऽपि परज्ञतादीनां विरोधः स्यात्[2] ।

" नानास्वभावसंयुक्तं द्रव्यं ज्ञात्वा प्रमाणतः ।
तच्च सापेक्षसिद्धयर्थं स्यान्नयमिश्रितं कुरु " ॥१०॥

स्वद्रव्यादिग्राहकेणास्तिस्वभावः । परद्रव्यादिग्राहकेण नास्तिस्वभावः । उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहकेण नित्यस्वभावः ।

---

१ अशुद्धस्वभावमयत्वात् । २ मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्त्तते ।

केनचित्पर्यायार्थिकेनानित्यस्वभावः। भेदकल्पनानिरपेक्षेणैकस्वभावः। अन्वयद्रव्यार्थिकेनैकस्याप्यनेकद्रव्यस्वभावत्वम्। सद्भूतव्यवहारेण गुणगुण्यादिभिर्भेदस्वभावः। भेदकल्पनानिरपेक्षेण गुणगुण्यादिभिरभेदस्वभावः। परमभावग्राहकेण भव्याभव्यपारिणामिकस्वभावः। शुद्धाशुद्धपरमभावग्राहकेण चेतनस्वभावो जीवस्य। असद्भूतव्यवहारेण कर्मनोकर्मणोरपि चेतनस्वभावः। परमभावग्राहकेण कर्मनोकर्मणोरचेतनस्वभावः।

जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेणाचेतनस्वभावः। परमभावग्राहकेण कर्मनोकर्मणोर्मूर्त्तस्वभावः। जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेण मूर्त्तस्वभावः। परमभावग्राहकेण पुद्गलं विहाय इतरेषाममूर्त्तस्वभावः। पुद्गलस्योपचारादपि नास्त्यमूर्त्तत्वम्। परमभावग्राहकेण कालपुद्गलाणूनामेकप्रदेशस्वभावत्वम्। भेदकल्पनानिरपेक्षेणेतरेषां धर्माधर्माकाशजीवानां चाखण्डत्वादेकप्रदेशत्वम्। भेदकल्पनासापेक्षेण चतुर्णामपि नानाप्रदेशस्वभावत्वम्। पुद्गलाणोरुपचारतो नानाप्रदेशत्वं न च कालाणोः स्निग्धरूक्षत्वाभावात्। अरूक्षत्वाच्चाणोरमूर्त्तपुद्गलस्यैकविंशतितमो भावो न स्यात्। परोक्षप्रमाणापेक्षयाऽसद्भूतव्यवहारेणाप्युपचारेणामूर्त्तत्वंन पुद्गलस्य। शुद्धाशुद्धद्रव्यार्थिकेन विभावस्वभावत्वम्। शुद्धद्रव्यार्थिकेन शुद्धस्वभावः। अशुद्धद्रव्यार्थिकेनाशुद्धस्वभावः। असद्भूतव्यवहारेणोपचरितस्वभावः।

"द्रव्याणां तु यथारूपं तल्लोकेऽपि व्यवस्थितम्।
तथाज्ञानेन संज्ञातं नयोऽपि हि तथाविधः" ॥ ११ ॥

इति नययोजनिका।

---

१ नयेन। २ जीवधर्माधर्माकाशकालानाम्। ३ जीवपुद्गलयोः।

सकलवस्तुग्राहकं प्रमाणं, प्रमीयते परिच्छिद्यते[1] वस्तुतत्त्वं येन ज्ञानेन तत्प्रमाणम्। तद्द्वेधा सविकल्पेतरभेदात्। सविकल्पं मानसं तच्चतुर्विधम्। मतिश्रुतावधिमनःपर्ययरूपम्। निर्विकल्पमनोरहितं केवलज्ञानमिति प्रमाणस्य व्युत्पत्तिः। प्रमाणेन वस्तु संगृहीतार्थैकांशो नयः, श्रुतविकल्पो वा, ज्ञातुरभिप्रायो वा नयः, नानास्वभावेभ्यो व्यावृत्य एकस्मिन्स्वभावे वस्तु नयति प्राप्नोतीति वा नयः। स द्वेधा सविकल्पनिर्विकल्पभेदादिति नयस्य व्युत्पत्तिः। प्रमाणनययोर्निक्षेप आरोपणं स नामस्थापनादिभेदेन चतुर्विध इति निक्षेपस्य व्युत्पत्तिः। द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः। शुद्धद्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्धद्रव्यार्थिकः। अशुद्धद्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति अशुद्धद्रव्यार्थिकः। सामान्यगुणादयोऽन्वयरूपेण[3] द्रव्यं द्रव्यमिति द्रवति व्यवस्थापयतीत्यन्वयद्रव्यार्थिकः। स्वद्रव्यादि[2]ग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति स्वद्रव्यादिग्राहकः। परद्रव्यादिग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति परद्रव्यादिग्राहकः। परमभावग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति परमभावग्राहकः।

इति द्रव्यार्थिकस्य व्युत्पत्तिः।

पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः। अनादिनित्यपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येत्यनादिनित्यपर्यायार्थिकः। सादिनित्यपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति सादिनित्यपर्यायार्थिकः। शुद्धपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्धपर्यायार्थिकः। अशुद्धपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येत्यशुद्धपर्यायार्थिकः।

इति पर्यायार्थिकस्य व्युत्पत्तिः।

---

१ निश्चीयते। २ आदिशब्देन द्रव्यभावौ गृह्येते. ३ सामान्यं जीवत्वादि गुणा ज्ञानादयः।

नैकं गच्छतीति निगमः, निगमो विकल्पस्तत्रभवो नैगमः। अभेदरूपतया वस्तुजातं संगृह्णातीति सङ्ग्रहः। सङ्ग्रहेण गृहीतार्थस्य भेदरूपतया वस्तु व्यवह्रियत इति व्यवहारः। ऋजु प्रांजलं सूत्रयतीति ऋजुसूत्रः। शब्दात् व्याकरणात् प्रकृतिप्रत्ययद्वारेण सिद्धः शब्दः शब्दनयः। परस्परेणादिरूढाः समभिरूढाः। शब्दभेदेऽप्यर्थभेदो नास्ति। यथा शक्र इन्द्रः पुरन्दर इत्यादयः समभिरूढाः। एवंक्रियाप्रधानत्वेन भूयत इत्येवंभूतः। शुद्धाशुद्धनिश्चयौ द्रव्यार्थिकस्य भेदौ। अभेदानुपचरितया वस्तु निश्चीयत इति निश्चयः। भेदोपचारतया वस्तु व्यवह्रियत इति व्यवहारः। गुणगुणिनोः संज्ञादिभेदात् भेदकः सद्भूतव्यवहारः। अन्यत्र प्रसिद्धस्य धर्मस्यान्यत्र समारोपणमसद्भूतव्यवहारः। असद्भूतव्यवहार एवोपचारः, उपचारादप्युपचारं यः करोति स उपचरितासद्भूतव्यवहारः। गुणगुणिनोः पर्यायपर्यायिणोः स्वभावस्वभाविनोः कारककारकिणोर्भेदः सद्भूतव्यवहारस्यार्थः द्रव्ये द्रव्योपचारः, पर्याये पर्यायोपचारः, गुणे गुणोपचारः, द्रव्ये गुणोपचारः द्रव्ये पर्यायोपचारः, गुणे पर्यायोपचारः, पर्याये द्रव्योपचारः पर्याये गुणोपचार इति नवविधोऽसद्भूतव्यवहारस्यार्थो द्रष्टव्यः।

उपचारः पृथग् नयो नास्तीति न पृथक् कृतः। मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्त्तते सोऽपि सम्बन्धाविनाभावः। संश्लेषः सम्बन्धः। परिणाम परिणामिसम्बन्धः, श्रद्धाश्रद्धेयसम्बन्धः,

१ वस्तुसमूहं। २ एवमित्युक्ते कोऽर्थः क्रियाप्रधानत्वेनेति विशेषणम्। ३ पुद्गलादौ। ४ स्वभावस्य। ५ जीवादौ।